2011-2020
संयुक्त राष्ट्रसंघ जैव विविधता दशक

वनस्पति वाणी

वर्ष 23 सितम्बर 2013 अंक 22

अमन्त्रं अक्षरं नास्ति, नास्ति द्रव्य मनौषधम्।
अयोग्य पुरूषोनास्ति, योजकस्तत्र दुर्लभः।।

आयुर्वेद सुभाषितम्

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
BOTANICAL SURVEY OF INDIA

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

© भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, 2013
इस प्रकाशन का कोई अंश निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की लिखित पूर्वानुमति के बिना पुनर्प्रवर्तित/रिट्रिवल पद्धति से भण्डारण या इलेक्ट्रॉनिक, मेकेनिकल फोटोकापी, रिकार्डिंग या अन्य किसी तरीके से ट्रांसमिट नहीं किया जा सकता है।

ISSN : 0975-4342

संरक्षक : **डॉ. परमजीत सिंह**
प्रधान सम्पादक : **डॉ. देवेन्द्र कुमार सिंह**
सम्पादक मण्डल : **डॉ. बी.के. सिन्हा**
डॉ. एस. एस. दाश
श्री नवीन चौधरी
श्री संजय कुमार
सहयोग : **श्री संजीव कुमार**

❋ वनस्पति वाणी में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता, प्रमाणिकता एवं व्यक्त विचारों के लिये लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं।

❋ इस अंक के प्रूफ संशोधन, मुद्रण क्रम में हिन्दी एवं प्रकाशन अनुभाग के सभी कर्मचारियों ने सक्रिय सहयोग प्रदान किया है।

आवरण चित्र

डेन्ड्रोबियम ओवेट्म

सौजन्य : डॉ. जीवन सिंह जलाल

निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, सी. जी. ओ. कॉम्पलेक्स, साल्ट लेक, कोलकाता - 700 064 द्वारा प्रकाशित एवं शिवा आफसेट प्रेस 14, ओल्ड कनाट प्लेस, देहरादून द्वारा मुद्रित।

अनुक्रमणिका

वनस्पति विविधता

1. राष्ट्रीय चम्बल वन्य जीव अभयारण्य की जैव-विविधता : बी. के. शुक्ला एवं जी. पी. सिन्हा 01
2. नेंगपुई वन्य-जीव अभयारण्य, मिजोरम की जैव विविधता – एक परिचय : दुर्गेश वर्मा, सुशील कुमार सिंह, समीरन पांडे एवं बिपिन कुमार सिन्हा 04
3. मिजोरम राज्य का एक संरक्षित क्षेत्र -पुआलरेंग वन्य जीव अभयारण्य : सुशील कुमार सिंह, सचिन शर्मा एवं रमेश कुमार 08
4. नवाबगंज पक्षी अभयारण्य की वानस्पतिक विविधता : आरती गर्ग एवं पुष्पी सिंह 12
5. वाल्मीकि बाघ अभयारण्य, पश्चिम चंपारण, बिहार की वानस्पतिक विविधता : राजीव कुमार सिंह एवं विनीत कुमार सिंह 15
6. तमिलनाडु राज्य की मैन्ग्रूव वनस्पतियां : विनोद मैना 20
7. अरुणाचल प्रदेश की पुष्पीय-पादप विविधता : आर. सी. श्रीवास्तव एवं अन्वेषा गुह मजुमदार 23
8. पूर्वोत्तर भारत के कुछ रोचक एवं महत्वपूर्ण पादप : रमेश कुमार, एन. एन. राभा एवं नईम अंसारी 27
9. भारतवर्ष में वंश लिपारिस (आर्किडेसी) : सुशील कुमार सिंह एवं जीवन सिंह जलाल 30

अपुष्पीय वनस्पति

10. माईकोराईजा – पादप समूह और कवकों के बीच एक पारस्परिक सहजीविता : रश्मि दुबे एवं नीलिमा ए. मून्नांम्बेत 35
11. जलीय पारितंत्र के आधार : शैवाल : प्रतिभा गुप्ता 38
12. मलेरिया के टीके के निर्माण में शैवालों का योगदान : प्रतिभा गुप्ता 41
13. भारत की समुद्री दीर्घ शैवाल विविधता : एम. पलनिसामी, सुधीर कुमार यादव एवं जी. वी. एस. मूर्ति 43
14. जलीय पर्णांग *सालविनिया* – एक परिचय : हिमांशु द्विवेदी, बृजेश कुमार एवं हरीश चन्द्र पाण्डे 49
15. *नेफ्रोलेपिश* – एक सदाबहार सजावटी पर्णांग : रमेश कुमार, बृजेश कुमार एवं हरीश चन्द्र पाण्डे 53

चिर परिचित वनस्पति

16. हिमालय की धरोहर ब्रह्मकमल-एक संक्षिप्त परिचय : भावना जोशी, रसानन्द कर एवं ए. ए. अंसारी 56
17. *कैरियोटा यूरेंस* – टॉडी पाम : पापिया रॉय चौधरी 61
18. गिलोय : आर. सी. श्रीवास्तव, सुबीर सेन एवं भोलानाथ घोष 62
19. सफेद मूसली (*लिलीयेसी*) -औषधीय एवं आर्थिक महत्व की वनस्पति : अर्जुन प्रसाद तिवारी एवं भोलानाथ 63
20. अंगूर के औषधीय उपयोग : महेन्द्र सिंह 67
21. दरख़्त-ए-मिसवाक: *सालवेडोरा परसिका* : राजीव कुमार सिंह, विनीत कुमार सिंह एवं यूसुफ अहमद सिद्दीकी 68
22. राजस्थान की एक उपयोगी व संकटग्रस्त वनस्पति ''पनीर बंद'' : विनोद मैना, सी. आर. जाधव एवं टी. एस. राठौर 70
23. कैर- भारतीय थार मरूस्थल की एक उपयोगी वनस्पति : चन्दन सिंह पुरोहित 72

नृ-वनस्पति

24. ओडिशा के आदिवासी क्षेत्रों में साप्ताहिक बाजार (हाट) में पेड़ पौधों तथा उनके उत्पादों का विपणन: एक सर्वेक्षण : हरीश सिंह 'भुजवान' 73
25. भारत में पाये जाने वाले औषधीय आर्किड्स : जीवन सिंह जलाल एवं जे.जयंती 79
26. सुन्दरढुंगा क्षेत्र की वानस्पतिक विविधता एवं उनके औषधीय उपयोग : आर. मणिकन्दन, अरविन्द कुमार एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव 82

27. ऊपरी गंगा रामसर साइट (ब्रिजघाट से नरोरा)
के कुछ महत्वपूर्ण औषधीय पौधे : आरती गर्ग एवं विनीत कुमार सिंह 87
28. प्रायोगिक वानस्पतिक उद्यान, मध्य क्षेत्रीय केन्द्र,
इलाहाबाद के औषधीय वनस्पतियों की संक्षिप्त जानकारी : ए. ए. अंसारी, अर्जुन प्रसाद तिवारी एवं भोलानाथ 90
29. आर्थिक दृष्टि से उपयोगी वनस्पतियाँ : संजीव कुमार 96
30. ओडिशा एवं झारखंड की कुछ अल्पज्ञात लोक-
वनस्पतियों का विवरण : ए.के. साहू 98
31. जनपद टिहरी गढ़वाल के पर्णांगों का लोक वानस्पतिक उपयोग : पुष्पेश जोशी, हरीश चन्द्र पाण्डे एवं बृजेश कुमार 100

तकनीकी परिदृश्य

32. जैव विविधता संरक्षण की नूतन होप : कोप एकादश : संजय कुमार एवं एस. एस. दाश 106
33. पादपालय : डिजिटाइजेशन व स्कैनिंग : अरविन्द कुमार एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव 111
34. औषधि क्षेत्र में नोबल पुरस्कार- 2012 : नितिषा श्रीवास्तव 113
35. एक अनोखी प्रक्रिया- स्पाल्ट : अरविंद परिहार एवं मनोज ईमानुएल हेम्ब्रम 117

वानस्पतिक विस्मय

36. अरुणाचल प्रदेश के कुरुंगकुमे जिले की पहाड़ियों में
वानस्पतिक आखेट : एस.एस. दाश एवं ए.ए. माओ 121
37. पत्थर पौधे: प्रकृति के अनमोल रत्न : परमजीत सिंह एवं नितिषा श्रीवास्तव 126
38. रीठा साहिब के मीठे रीठे : कुमार अम्बरीष 129
39. उत्तराखण्ड की पादप जैव विविधता पर घातक
खरपतवारों का ऐलीलोपैथिक प्रभाव : गिरिराज सिंह पंवार 131
40. वनस्पति विकास में खास है ''आभास'' : प्रशान्त केशव पुसालकर एवं संजय उनियाल 133
41. *ड्रैसेना ड्रैको* (एस्पैरेगेसी)-एक रोचक व बहु-उपयोगी पौधा : रसानन्द कर, भावना जोशी एवं ए. ए. अंसारी 135
42. शहद में परागकणों की भूमिका : महेन्द्र कुमार सिंघाड़िया, सुनील कुमार श्रीवास्तव एवं संदीप कुमार सिरावत 137
43. सोमुरीरी झील - लद्दाख का एक हिमाद्रि रामसर स्थल : अच्युता नन्द शुक्ला, देवराज अग्रवाल एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव 138

व्यक्तित्व

44. एम.एस. रंधावा : प्रख्यात शैवालविद् एवं कुशल प्रशासक : आर.के. गुप्ता एवं संगीता कुमारी 141
45. प्रो. करतार सिंह थिंड- एक कवक विज्ञानी : मनोज ईमानुएल हेम्ब्रम एवं अरविंद परिहार 143
46. वनस्पति विज्ञान के जनक थिओफ्रेस्टस : नवीन चौधरी 145
47. प्रोफेसर बीरबल साहनी - एक परिचय : ओंकारनाथ मौर्य 146

काव्यांजलि

48. बुरांश *(रोडोडेन्ड्रॉन)* : संजय कुमार 148
49. जिगर के टुकड़े सब्ज : ओ.पी. शर्मा 'विद्यार्थी' 149
50. जीवन संचारक प्राण है जल : भोलानाथ 150
51. एक वृक्ष : आर. के. गुप्ता 151
52. वन बचाओ : महेन्द्र कुमार सिंघाड़िया 152
53. लक्ष्य : आर. के. गुप्ता 153

पटाक्षेप

54. पर्यावरण समाचार : संजीव कुमार एवं संजय कुमार 154
55. लेखकों के लिये निर्देश 155
56. राजभाषा कार्यान्वयन में उल्लेखनीय बिन्दु 156

राष्ट्रीय चम्बल वन्य जीव अभयारण्य की जैव-विविधता

बी.के. शुक्ला एवं **जी.पी. सिन्हा**
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

राष्ट्रीय चम्बल वन्य-जीव अभयारण्य के बीहड़ का एक विहंगम दृश्य

भारत वर्ष के तीन राज्यों मध्य प्रदेश, राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश में बहने वाली चम्बल नदी के दोनों ओर 2-6 कि.मी. की चौड़ाई में फैला लगभग 5400 वर्ग कि.मी. का क्षेत्र चम्बल के बीहड़ नाम से विख्यात है। बीहड़ों की विशिष्ट पारितंत्र के संरक्षण हेतु इसके अन्तर्गत आने वाले 1235 वर्ग कि.मी. क्षेत्र को वर्ष 1979 में भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय चम्बल वन्य-जीव अभयारण्य घोषित किया गया था।

चम्बल नदी मध्य प्रदेश के इन्दौर जिले में महू की जानापाव पर्वत श्रृंखलाओं में स्थित मानपुरा नामक स्थान से निकलती है। इन पर्वत श्रृंखलाओं की अधिकतम ऊँचाई 843 मीटर है। यह नदी उत्तर प्रदेश के इटावा जिले के पचनंदा क्षेत्र में यमुना नदी में मिलने से पहले मध्य प्रदेश के भिण्ड एवं मुरैना एवं उत्तर प्रदेश के आगरा एवं इटावा में राज्यों की सीमा बनाते हुए बहती है। इसकी मुख्य सहायक नदी बनास है, जो राजस्थान की अरावली पहाड़ियों से निकलती है। चम्बल नदी का पूर्ण जल पोषक क्षेत्र 1,43,219 वर्ग कि.मी. है।

राष्ट्रीय चम्बल वन्य-जीव अभयारण्य मुख्य रूप से घड़ियालों (*गेवियेलिस गैन्गेटिका*) एवं मगरमच्छों (*क्रोकोडाइलस पॉल्युसट्रिस*) एवं गंगा-डॉलफिन (*प्लेटानिस्टा गैन्जेटिका*) के संरक्षण का क्षेत्र है, क्योंकि यहाँ नदी प्रदूषण मुक्त है, अत: यह क्षेत्र इन दोनों जीवों का प्राकृतवास होने के कारण इनका स्वच्छन्द जीवन—यापन एवं प्रजनन यहां संभव है। इन दो प्रमुख वन्य जीवों के अतिरिक्त स्तनधारियों में लकड़बग्घा, भेड़िया, चिंकारा, नीलगाय, लोमड़ी, सियार, साही, सरिसृपों में अजगर, कोबरा, करैत, गोह, गिरगिट इत्यादि वन्य-जीव भी बीहड़ों में पाये जाते हैं। जलीय जीवों में विभिन्न प्रजातियों की मछलियाँ -रोहू, अरवारी, सिंघी, मागुर, हरेन, परहिम, सौर, भुर, पथरचा, दींगर, बास, कलबास, चाल, झींगरा, पपटा, परियासी, गुघिया, सील आदि, झींगा एवं 7 प्रजातियों के कछुए तथा लगभग 250 प्रजातियों के पक्षी (तीतर, बटेर, बया, सारस, बतख, हंस, गौरैया, कबूतर, बगुला, जकाना, तोता आदि भी यहाँ पाये जाते हैं।

1. *प्रोसपिस ज्यूलिफेरा* के जंगल 2. *कैपेरिस डेसीड्यूआ*—अभयारण्य की एक प्रमुख काँटेदार झाड़ी: इसके फलों का अचार बनाते हैं 3. *साल्वाडोरा ओलियोडिस* — एक दुर्लभ औषधीय पौधा 4. *सेना युनिफ्लोरा* — एक दुर्लभ पौधा 5. *पैस्सीफ्लोरा फोयटिडा*—चारे के रूप में प्रयोग की जाने वाली एक लता

वन एवं वनस्पतियाँ- शुष्क जलवायु के कारण यहाँ पायी जाने वाली वनस्पतियाँ अधिकांशत: काँटेदार होती हैं। जल के तेज बहाव से ऊँची-नीची भूमि एवं अधिक कटाव के कारण 50-100 फीट तक गहरी होकर बीहड़ का निर्माण होता है। इन बीहड़ वनों में पाई जाने वाली प्रमुख वनस्पतियां भी अलग होती हैं।

अकेसिया निलोटिका उप प्रजाति *इंडिका, अकेसिया सेनेगल, ल्यूकेइना ल्यूकोसिफेला, प्रोसपिस ज्यूलिफेरा, प्रोसपिस साइनेरिआ, बेलनाटिस रॉक्सीब्रघाई, फ्लेकोर्टिआ इंडिका, जिजिफस माउरुसियाना, गुइडोनिआ टोमेन्टोसा, कैपेरिस डेसीड्यूआ, कैपेरिस सिपेरिआ, साल्वाडोरा ओलियोडिस, डाइक्रोस्टैकिस सिनेरेरिआ, एजाडिरेक्टा इंडिका, पोनगैमिआ पिन्नाटा, होलोपटिलिआ इन्टेग्रीफोलिआ, अल्बीजिआ लिबेक, बॉम्बैक्स सीवा, कार्डिया डाइकोटोमा, ग्रिविआ टेनेक्स, एनोजिसस पेन्डुला,* आदि हैं, झाड़ीदार/क्षुपीय पौधों में- *केसिआ पाउसिनरविया, क्लोरोडेन्ड्रम फ्लोमिडिस, लैन्टाना कमारा, लैन्टाना इण्डिका, वाइटेक्स निगुण्डो, निक्टेन्थस आरबोरट्रिसटिस, जिजिफस ओइनोपोलिआ, जिजिफस नुमुलेरिआ, टेफ्रोसिआ परप्यूरिआ, सोलेनम वर्जिनियानम्, जेट्रोफा गॉस्सिपिफोलिआ, फ्लूजिआ वाइरोसा, आर्जिमोन मैक्सिकाना* इत्यादि। ऊँचे टीलों पर *कॉम्मीफेरा वाइटिआई* नामक एक दुर्लभ औषधीय पौधा भी पाया जाता है। यहाँ की झाड़ियों एवं छोटे वृक्षों पर अनेक प्रकार की लतायें भी पाई जाती है जिनमें, *आइपोमिआ निल, आइपोमिया हेडेरिफोलिआ, आइपोमिया टरबाइनेटा, कैपेरिस जिलेनिका, एब्रस प्रिकेटेरिअस, टेराम्नस लेविएलिस, केरेटिआ ट्राइफोलिआ, कार्डियोस्पर्मम हेलिकेकावम, कॉक्यूलस हिरसुटस, इक्नोकार्पस फ्रूटिसेन्स, जिगनिमा सिल्वेस्ट्रिस, परगुलेरिआ डैमिआ, टिलोस्मा पैलिडा, पैस्सीफ्लोरा फोयटिडा, वाल्सटेनिआ गारस्नि, रिविआ हाइपोक्रेटरिफार्मिस, कॉम्मिकार्पस चाइनेन्सिस, एस्पेरेगस रेसिमोसस, कस्कुटा रिफ्लेक्सा,* आदि शामिल हैं।

नदी के कटाव एवं छायादार नम भूमि में *एजिरेटम कोनिज्वॉइडिस, इकलिप्टा प्रास्टेटा, पेन्टानिमा इंडिका, एनागैलिस आरवेन्सिस, कैन्सकोरा डिफ्यूसा, सोलानम अमेरिकानम, लिन्डनवर्जिया इंडिका, एअरवा लैनेटा, अमरेन्थस विरिडिस, जोरीनिया गिब्बोसा, कैमिलिना फास्केलाई, हेडियोटिस कोरिम्बोसा, बायोफाइटम सेन्सटिवियम* आदि शाकीय पौधे पाये जाते हैं।

वानस्पतिक विश्लेषण- राष्ट्रीय चम्बल वन्य-जीव अभयारण्य में कुल 460 प्रजातियों के पौधे पाये जाते हैं। यह पौधे 82 कुलों एवं 271 वंशों में फैले हुए हैं तथा इनका ब्यौरा तालिका संख्या-1 में दर्शाया गया है।

तालिका संख्या-1

समूह	कुलों की संख्या	वंशों की संख्या	प्रजातियों की संख्या
द्विबीज पत्री	73	214	357
एकबीज पत्री	9	57	103
कुल योग	**82**	**271**	**460**

दुर्लभ पौधे- भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा अभयारण्य की वनस्पति सम्पदा का अध्ययन के उपरान्त निम्नलिखित प्रजातियाँ जैसे *साइडा त्यागाई, कॉमीफेरा वाईटिआई, क्रोटालेरिया सेनेगेलेन्सिस, एकेसिया निलोटिका* उपजाति *क्यूप्रेसिफार्मिस, सेना यूनीफ्लोरा, सिरोपीजिया बल्वोसा, हिलिओट्रापियम यूरोपियम* प्रभेद *लासोकार्पम* एवं *सिम्बोपोगॉन पार्करांई* को दुर्लभ पौधों की श्रेणी में रखा गया है।

संरक्षण- बीहड़ों की पादप विविधता अन्य स्थानों से अलग होने के कारण इस प्रकार के पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण को विशेष नीतियों की आवश्यकता है। उचित देख-भाल न होने के कारण यहां की जैव विविधता नष्ट हो रही है। *प्रोसपिस ज्यूलिफेरा* नामक एक विदेशी प्रजाति पूरे क्षेत्र में फैल चुकी है जिसके कारण प्रचुर मात्रा में पाये जाने वाले स्थानीय पौधे जैसे - बबूल, बेल, कैथा, बेर, फालसा, इत्यादि कम हो चुके हैं। *प्रोसपिस ज्यूलिफेरा* एक ऐसा पौधा है जो तेजी से तो फैलता है ही साथ ही साथ न तो कोई जानवर इसे खाता है न स्थानीय लोगों के द्वारा उपयोग में ही लाया जाता है। इसी कारण यह पौधा मोनोकल्चर के रुप में इस क्षेत्र में फैल चुका है जिससे कि अन्य स्थानीय पौधे इस स्पर्धा में पिछड़कर अपना विकास कायम रखने में अक्षम सिद्ध हो रहे हैं। अत: प्रशासन तथा अन्य संस्थानों की सहायता से उचित कार्रवाई करके इसके प्रसार को रोकना एवं कम करना चाहिए। इसके लिए स्थानीय प्रजातियों के पौधों का प्रचुर मात्रा में रोपण एक अच्छा विकल्प है, ताकि राष्ट्रीय चम्बल वन्य-जीव अभयारण्य की जैव विविधता संतुलित और सुरक्षित रह सके।

नेंगपुई वन्य-जीव अभयारण्य, मिजोरम की जैव विविधता- एक परिचय

दुर्गेश वर्मा, सुशील कुमार सिंह, समीरन पांडे एवं बिपिन कुमार सिन्हा*

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

*आई. एस. आई. एम., कोलकाता

जैव सम्पदा विशेषकर पौधों की महत्ता आदिकाल से ही महसूस की जाती रही है। जैव सम्पदा की अनुपस्थिति हमें अस्तित्वहीन कर सकती है या कहा जाये तो इसके बिना जीवन संभव ही नहीं है। जैव सम्पदा का संरक्षण कितना आवश्यक है, इसका उल्लेख प्राचीन अभिलेखों, ग्रन्थों, पुराणों एवं संहिताओं में मिलता है। वर्तमान समय में जैव सम्पदा के संरक्षण की सार्थक कोशिश विश्व स्तर पर की जा रही है एवं अनेक जैव सम्पदा बाहुल्य क्षेत्रों को संरक्षित किया जा रहा है। हमारा देश भारत भी इसी दिशा में अग्रसर है, तथा जैव सम्पदा के स्व-स्थाने संरक्षण को बढ़ावा दिया जा रहा है। वर्तमान में जैव सम्पदा के संरक्षण के लिए 102 राष्ट्रीय उद्यान, 515 वन्य जीव अभयारण्य, 47 संरक्षण आरक्षित क्षेत्र एवं 4 सामुदायिक आरक्षित क्षेत्र घोषित हैं, जो कुल 161221.57 वर्ग कि० मी० क्षेत्रफल में फैले हुए हैं। पूर्वोत्तर भारत, विश्व के 34 उत्तप्त स्थलों (हॉट-स्पॉट) में से एक है, जो कि इंडो-वर्मा क्षेत्र का भू-भाग है। अपनी दुरूह भौगोलिक स्थिति एवं अनूठी, पादप विविधता के लिये विश्व विख्यात है। इस क्षेत्र में स्थित छह राज्यों (असम, मेघालय, मणिपुर, मिजोरम, त्रिपुरा, नागालैंड) में कुल 37 वन्य-जीव अभयारण्य हैं। मिजोरम राज्य में 08 वन्य-जीव अभयारण्य,1090.75 वर्ग कि० मी० क्षेत्रफल में फैले हुए हैं, जो यहाँ की जैव सम्पदा को स्व-स्थाने संरक्षण प्रदान कर रहे हैं। इन्हीं में से एक, नेंगपुई वन्य-जीव अभयारण्य के सन्दर्भ में एक प्रारम्भिक जानकारी देने का यहाँ प्रयत्न किया गया है।

नेंगपुई वन्य-जीव अभयारण्य दक्षिण-पश्चिमी मिजोरम के लुंगतलाई जिले में 22°21′18″-22°30′01″ उत्तरी अक्षांश एवं 91°44′30″-92°50′37″ पूर्वी देशांतर के बीच स्थित है। यह वन्य-जीव अभयारण्य, रोजर एवं अन्य (2002) द्वारा वर्गीकृत 10 जैव भूवृत्तों में से एक, उत्तर पूर्वी क्षेत्र 09 जैविक प्रांत-ब श्रेणी (बायोटिक प्रोविंस बी) के अन्तर्गत आता है। इसे शासकीय तौर पर वन्य-जीव अभयारण्य का दर्जा 1991 में दिया गया था। यह वन्य-जीव अभयारण्य समुद्र तल से 200 मी० से 1200 मी० तक की ऊंचाई पर लगभग 110 वर्ग कि० मी० में फैला हुआ है। यह क्षेत्र म्यांमार तथा बांग्लादेश के अति समीप होने के कारण भौगोलिक रूप से अति महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यहाँ का तापमान शीतकाल में 8°-24° से० और ग्रीष्मकाल में 18° - 32° से० तक रहता है, आर्द्रता दक्षिण-पश्चिमी मानसून के दौरान, सर्वाधिक 85 प्रतिशत तक रहती है। यहाँ औसतन 2558 मि० मी० वर्षा होती है। नेंगपुई नदी इस वन्य-जीव अभयारण्य से होकर गुजरती है, जिसके नाम पर ही इस अभयारण्य का नामकरण किया गया है। इस वन्य-जीव अभयारण्य के समीपवर्ती क्षेत्र में 07 गाँव हैं, जिनके ग्रामीणों का जीविकोपार्जन यहाँ की वन सम्पदा पर निर्भर है। नेंगपुई वन्य-जीव अभयारण्य में हाथी, सांबर, बार्किंग डीयर, सन बीयर, ब्लैक बीयर, जंगली सूअर, हूलोक गिब्बन, बन्दर लेपर्ड कैट, छोटी भारतीय सिवेट, कामन पाम सिवेट इत्यादि स्तनधारी जन्तु पाये जाते हैं। यह अभयारण्य अनेकों संकटग्रस्त एवं विरल जीव जंतुओं एवं पक्षियों के लिये आदर्श आश्रय-स्थल है। इस क्षेत्र के वन अधिकारियों द्वारा नेंगपुई वन्य जीव अभयारण्य के परिसर क्षेत्र में एक प्रस्तुतीकरण केन्द्र बनाया गया है। जिसमें इस अभयारण्य में पाये जाने वाले विभिन्न जीव-जन्तुओं के कंकाल तथा परि-रक्षित नमूने रखे हुए हैं।

नेंगपुई वन्य-जीव अभयारण्य एक उष्णकटिबंधीय सदाबहार व उष्णकटिबंधीय अर्द्ध-सदाबहार वन क्षेत्र है, जिसमें विभिन्न जातियों के शाक, झाड़ी, वृक्ष तथा आरोही लतायें पायी जाती हैं, इनका संक्षिप्त विवरण निम्नवत है।

शाक- *कुफिया बालसोमोना*, स्वीट ब्रूम वीड (*स्कोपैरिया डलसिस*), *रंगिया पार्वीफ्लोरा*, *लुडविगीया पार्वीफ्लोरा*, इंडियन सोरेल (*आक्जैलिस कोर्निकुलेटा*), *कोमीलिना सिक्किमेंसिस*, *पेपरोमिया पेललुसिडा*, *पेपरोमिया टेट्राफिला*, *रिचर्डसोनिया पाइलोसा*, *पाइपर हाइमीनोफिल्लम*, स्पाइरल जिंजर (*चिलोकोस्टस स्पेशियोसस*), *लिन्डेनिया रेपटेन्स*, मंडूक-पर्णी (*सेन्टेला एशियाटिका*), गोट वीड (*एजिरेटम कोनिज्वाइडिस*), वाक-पुई-थल (*बाइडेनस पिलोसा*), *स्पीलैन्थस अकमेला*, हन:-थियल (*फ्रेनियम कैपिटेट्म*), से-खुप-थुर (*बेगोनिया रॉक्सब्रघाई*), थक-सेन-हॅलो (*सोनेरिला मैकूलाटा*), *सोनिरेला खासियाना*, *स्टेरोगायने अर्जेंटिया*, अन-चि-रि (*होमालोमेना एरौमेटिका*), *एरवा अस्पेरा*, केल-हनं-तुर (*हेड्योटिस स्केन्डेन्स*), *हेड्योटिस हिस्पिडा*, खिंग-खिहा (*सिडा एक्यूटा*),

से- प (*यूरेना लोबाटा*), *टोरीनिया वैगैन्स, जस्टीसिया प्रोकमबेन्स, हिपटिस कैपीटाटा, फ्लोस्कोपा स्कैंडेंस, फोरेस्टीया मोलिसिमा, कैम्पैनूमिया पार्वीफ्लोरा* आदि।

झाड़ी- नौ-नुयर (*अरडिसिया पैनिकुलाटा*), कसावा (*मानिहोत ऐस्कुलेन्टा*), अमती (*एंटीडेस्मा डियान्ड्रम*), *रींकोंटिकम इल्लीप्टिकम, माइरिओनूरान नूटन्स, साइकोट्रिया फुल्वा,* त्लांग-सम-सुअक (*यूपेटोरियम ओडोरेटम्*), लाई-सॉ-रल (लिकूआला पेल्टाटा), थांग-टुंग (*अरेन्गा पिन्नाटा*), *ऑक्सीस्पोरम इंडिकम,* मालाबार ब्लैक माउथ (मिलास्टोमा मालाबाथ्रिकम), वा-टे-(खवि)-जू (*फ्लोगाकैन्थस ट्यूबिफ्लोरस*), रम-तिंग(*स्ट्रोबिलेन्थस कैपिटाटा*), खाम (*गोनियोथैलेमस सेस्क्युपीडेलिस*), *मेसा इंडिका, मेसा अंगसटीफोलिया,* लेन्टाना (*लेन्टाना कमारा*), पैह-ती-मै-(*फाइकस हीस्पेडिया*), क्लस्टर फिग (*फाइकस रेसिमोसा*), *जेरारडिना मैक्रोफिला,* अर-सा-रिम-नाम (*ऐलेन्जीयम चाइनेन्सिस*), *ग्रीविया मैक्रोफिला,* त्लिंगी-लेह-नगमा-इन-छव्ल-थूऐना (*सट्रकुलिया हैमिल्थोनाई*), *लैसियन्थस ट्युबीफेरस,* वा-केप (*मुस्सेंडा रॉक्सब्रघाई*) आदि आरोही जातियां पाई जाती है।

आरोही- *पैराबीना सैजीटाटा,* वाइल्ड याम (*डायोस्कोरिया बुल्बीफेरा*), कै-हा-पुई (*स्माईलैक्स मैक्रोफाइला*), *स्माईलैक्स चाइनेनसिस,* ब्लू ट्रंपेट वाइन (*थुन्बर्जिया ग्रैंडीफ्लोरा*), सांग (*स्टीमोना ट्यूबरोसा*), सतावर (*एस्परेगस रेसिमोसस*), *डायोस्कोरिया अलाटा,* लाई-किंग-तई-रुआ (*पोथोस स्कैंडेंस*), *फाइकस स्कैंडेंस, मिकानिया स्कैंडेंस, अंकैरिया पाइलोसा,* चाइह-चुन (*स्टीफैनिया रोटुन्डला*), ले-ह्वई-सेन (*कॉम्बीरेट्म फ्लैग्रोकार्पम*) आदि।

वृक्ष- खिनी (*फाइकस सेमीकॉर्डेटा*), *अकेसिया कोनसिना,* बटरफ्लाई ट्री (*बाहूनिया पुरपुरिया*) *लैजस्ट्रोमिया इंडिका,* रिबर इबोनी (*डायोस्पाइरोस मालाबारिका*), उदाल (*स्टरकुलिया विल्लोसा*), जामुन (*सिजाईजियम क्यूमिनी*), सागौन (*टेक्टोना ग्रेन्डीस*), *मेलिना अर्बोरिया,* ऑस्ट्रेलियन वैटल (*अकेशिया ऑरिकुलिफॉर्मिस*), आँवला (*फाइलैन्थस इम्बिलिका*), छलता (*डेल्लिनिया इंडिका*), आयरन वूड ट्री (*म्यूसा फेरा*), हनह-खर-पा (*मैकारेंगा डेन्टिकुलाटा*), जवंगते-नव्ह-लुंग (*मैल्लोटस रॉक्सब्रुघियेनस*) आदि यहां की प्रमुख वृक्ष जातियां है।

घास- झाड़ू घास (*थासेनोलाइना मैक्सिमा*), *डीजिटेरिया सिलिएरिस,* फै-फेक (*थेमेडा विल्लोसा*), *स्पोरोबोलस फर्टिलिस, पैस्पैलम डाइलेटेटम, पोआ एनुआ, सीटेरिया ग्लाउका* आदि।

आर्किड- *डेंड्रोबियम मोस्केटम, डेंड्रोबियम क्रेपीडेटम, लिपेरिस विरडीफ्लोरा, प्लेटेनथेरा इन्सेक्टीफर, केल-अ-बेंग* (*पेपिलियोनेंथी टेरेस*), *सिंबीडीयम एलोईफोलियम, डेंड्रोबियम दार्जीलिंगेंसिस, एनेक्टोचिलस रोक्सबर्घी, ओबेरोनिया, वांडा* जाति के पौधे प्रमुख आर्किड प्रजातियों में सम्मिलित है।

अन्य उपयोगी पेड़-पौधे-

खाद्योपयोगी पौधे: जामुन (*सिजाईजियम क्यूमिनी*), कसावा (*मानिहोत ऐस्कुलेन्टा*), *डायोस्कोरिया अलाटा,* वा-टे -(खवि)-जू (*फ्लोगाकैन्थस ट्यूबीफ्लोरस*), *मेसा इंडिका, ग्रीविया मैक्रोफिला,* पैह-ती-मै-अन (*फाइकस हिस्पीडिया*), रिबर इबोनी (*डायोस्पाइरोस मालाबारिका*), आँवला (*फाइलैन्थस इम्बिलिका*), छलता (*डेल्लिनिया इंडिका*) आदि।

काष्ठोत्पादक पौधे: अकेसिया कोनसिना, लैजस्ट्रोमिया इंडिका, सागौन (*टेक्टोना ग्रेन्डीस*), *मीलिना अर्बोरीया,* ऑस्ट्रेलियन वैटल (*अकेशिया ऑरिकुलिफॉर्मिस*), जवंगते-नव्ह-लुंग (*मैल्लोटस रॉक्सब्रुघियेनस*) आदि।

औषधीय पौधे: सांग (*स्टीमोना ट्यूबरोसा*), मंडूक-पर्णी (*सेन्टेला एशियाटिका*), ,*स्पीलैन्थस अकमेला,* अन-चि-रि (*होमालोमेना एरौमेटिका*), केल-हनं-तुर (*हेड्योटिस स्केन्डेंस*), सतावर (*एस्परेगस रेसिमोसस*), *स्टीफैनिया रोटंडीफोलिया,* वाक-पुई-थल (*बाईडेंस पिलोसा*), मधुक घास (*स्कोपैरिया डूलकिस*) आदि।

हरितोद्भिद्- हरितोद्भिद विशेषकर लिवरवर्ट एवं हॉर्नवर्ट संबंधी शोध साहित्यों के अध्ययन करने के पश्चात् यह ज्ञात हुआ कि, नेंगपुई वन्य-जीव अभयारण्य में पाये जाने वाले हरितोदभिद् के बारे में कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। इस लेख में यहाँ पर पाये जाने

1. *अंकैरिया पाइलोसा* 2. *होमालोमेना अरोमटिका* 3. *कैम्पैनुमिया पार्वीफ्लोरा*, 4. *एसप्लीनियम निडस* 5. *लाइकोपोडियेला सरनुआ* 6. *प्लेजियोकाइला जाति*, 7. *अधिपर्णी लिवरवर्ट्स*, 8. *पैलाविक्सिनिया लैली*

वाले हरितोद्भिद् पौधों के सन्दर्भ में प्रारम्भिक जानकारी प्रस्तुत की गयी है। यहाँ पर पाये जाने वाले लिवरवर्ट्स में *कोलोलिजुनिया, लिजुनिया, रेडुला* आदि अधिपर्णी जातियों की बहुलता है। अधिपादपीय जातियों मे *टाइकेन्थस, प्लेजियोकाइला, हेटेरोस्किफस, फ्रूलानिया* आदि प्रमुख वंश हैं, जो यहाँ उगते हैं। स्थलीय जातियों में *सोलेनोस्टोमा, रिक्सिया, पैलाविक्सिनिया, रिकार्डिया, मारकेंसिया लिवरवर्ट एवं फियोसेरोस, फोलियोसेरोस* हॉर्नवर्टस की जातियाँ यहां पायी जाती हैं।

पर्णोद्भिद् - यहाँ पर्णोद्भिदों की लगभग 30-40 जातियाँ अनुमानित हैं। यहाँ पायी जाने वाली जातियों को प्राकृतिक वासस्थलों के आधार पर विभिन्न वर्गो जैसे स्थलीय, लिथोफाइट एवं अधिपादप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

स्थलीय पर्णोद्भिद् : इस तरह के पर्णोद्भिद् वनों के किनारे, बहते पानी की धाराओं के पास, तथा खुले स्थानों में पाये जाते हैं। *बोलबाइटिस कोस्टाटा, टेक्टेरिया पोलीमार्फा, सिलाजिनेला मोनोस्पोरा, सिलाजिनेला वैजीनाटा, एडियेन्टम काडेटम*, कंग-रेम (*लायकोपडिल्ला सरनुआ*), दव्न-जेम (*लायगोडियम फ्लेक्सूओसम*), *सायथिया जाइर्गेसिया, सायथिया ब्रूनोनियाना* आदि मिलते हैं।

लिथोफिटिक पर्णोद्भिद्: इस तरह के पर्णोद्भिद् छायादार स्थानों पर सामान्यत: दर्रो, मासयुक्त तथा मिट्टीयुक्त चट्टानों पर उगते हैं। जैसे लुंग-पुई-सम (*एडियेन्टम ल्यूनुलेटम्*), *पाइरोसिया एडनीसेंस* आदि।

अधिपादप पर्णोद्भिद्: इस तरह के पर्णोद्भिद् पेड़ों के तनों पर पाये जाते हैं। जैसे *पाइरोसिया नुमुलैरिया, एसप्लीनियम नाइडस, ड्राइनेरिया क्वेर्सीफोलिया, ड्राइनेरिया प्रोपिन्कुआ, माइक्रोसोरियम पंक्टेटम* आदि।

संकट एवं संरक्षण- नेंगपुई वन्य-जीव अभयारण्य में पायी जाने वाली वनस्पतियाँ एवं जीव-जन्तु मिजोरम की प्राकृतिक सम्पदा हैं, जिनका संरक्षण अत्यावश्यक है। अतिक्रमणिक जातियों जैसे लेन्टाना या स्पेनिश फ्लैग (*लेन्टाना कमारा*) *मिकानिया स्कैंडेंस, हिपटिस कैपीटाटा*, वाक-पुई-थल (*बाइडेंस पिलोसा*), गोट-वीड (*एजिरेटम कोनिज्वाइडिस*) के समावेशन तथा वन सम्पदाओं के अवैज्ञानिक दोहन, जीव-जन्तुओं के शिकार, ईंधन तथा फर्नीचर आदि के लिये वृक्षों के अंधाधुंध कटान आदि, यहाँ की जैव सम्पदा के लिए प्रमुख संकट बन कर उभरा है एवं अनेकों जातियाँ खतरे का दंश झेल रही हैं। इनको उचित संरक्षण देने हेतु कारगर कदम उठाने से इस अभयारण्य में पायी जाने वाली विरल एवं संकटग्रस्त जातियों को बचाया जा सकता है। संकटापन्न जातियों के संरक्षण में आधुनिक तकनीकों जैसे ऊतक-संवर्धन आदि के उपयोग से सहायता मिल सकती है। अभयारण्य के आसपास रहने वाले ग्रामीणों जो अपनी आवश्यकता पूरी करने के लिये यहाँ के वनों पर निर्भर हैं, को इनकी महत्ता तथा इनकी जरूरत के बारे में सुशिक्षित करना संरक्षण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम हो सकता है।

मिजोरम राज्य का एक संरक्षित क्षेत्र -पुआलरेंग वन्य जीव अभयारण्य

सुशील कुमार सिंह, सचिन शर्मा एवं **रमेश कुमार**
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

पुआलरेंग वन्य जीव अभयारण्य मिजोरम के 8 वन्य जीव अभयारण्यों मे से एक, राज्य की राजधानी आईजोल से लगभग 115 किमी दूर उत्तरी भाग मे कोलासिब जिले में स्थित है। इस वन्य जीव अभयारण्य में सिल्चर के नजदीक स्थित बाघा बाजार से गुजरने वाले मार्ग द्वारा आसानी से पहुंचा जा सकता है। इस वन्य जीव अभयारण्य का नामकरण यहाँ पर मिलने वाले नर होर्नबिल के कारण हुआ। यह वन्य जीव अभयारण्य 24°06′35″ से 24°14′16.21″ उत्तरी अक्षांश और 92°50′17.6″ से 92°54′2.64″ पूर्वी देशांतर के मध्य, लगभग 50 वर्ग किमी क्षेत्र मे फैला हुआ तथा समुद्र तल से 260-750 मी. की ऊंचाई पर स्थित है। इसकी पूर्वी सीमा पर तुरियल नदी बहती है, जो कि इस क्षेत्र में विचरण करने वाले पक्षियों, जानवरों और वनस्पतियों के लिए जीवन रेखा का कार्य करती है। यहाँ समीपवर्ती क्षेत्र में 6 गांव, नॉर्थ हिमेन, थिंगथेलह, बुकपुई, पालसंग, जोहमुनलेह तथा उत्तरी खावडूंगसी है जहां के निवासी इस वन्य जीव अभयारण्य और यहाँ पर पायी जाने वाली वनस्पतियों व वन-उत्पादों पर निर्भर हैं।

यह वन्य जीव अभयारण्य रोजर एवं अन्य द्वारा वर्गीकृत 10 जीव भूवृत्तों मे से एक नॉर्थ ईस्ट जोन 09 (बायोटिक प्रोविन्स बी) के अंतर्गत आता है। यहाँ वर्षा 1900-2100 मि.मी. तक होती है। यहां मुख्यत: मिश्रित पर्णपाती वन एवं ऊष्णकटिबंधीय अर्धसदाबहार वन एवं

शुष्कपर्णपाती वन पाये जाते हैं। इन वनों में अनेकों तरह की वनस्पतियों के साथ-साथ अनेकों जीव-जन्तु जैसे होर्नबिल, तीतर, सांभर, बार्किंग डियर, जंगली सूअर, लंगूर, हूलोक, मकाक, तेंदुआ, भालू आदि भी पाये जाते है जिनके लिये यह वन्य जीव अभयारण्य आदर्श आवास स्थल है। इस अभयारण्य का वानस्पतिक सर्वेक्षण कार्य अभी तक नहीं हुआ है। एक वानस्पतिक सर्वेक्षण के दौरान सन 2010 में इस वन्य जीव अभयारण्य से पौधो के नमूने एकत्रित किए गए थे, जिनका अन्वेषण करने के पश्चात जो परिणाम निकला उसी के आधार पर प्रस्तुत लेख के माध्यम से एक प्रारम्भिक जानकारी देने का प्रयास किया गया है। यहाँ पर मिलने वाली पादप जातियों को निम्न तालिकाओं द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 1- पुआलरेंग वन्य जीव अभयारण्य में वंश कुल व जातियों की संख्या

समूह	पादप कुल	वंश	जातियां
आवृतवीजी			
द्विबीजपत्री	40	86	100
एकबीजपत्री	13	40	53
पर्णोद्भिद	21	23	35

तालिका 2- पुआलरेंग वन्य जीव अभयारण्य में आवृतवीजी पौधों के प्रमुख कुल

पादप कुल	वंश	जातियाँ
पोएसी	14	17
रूबिएसी	9	9
यूफोर्बिएसी	8	9
फैबेसी	7	9
स्टेरेसी	8	8
एरेसी	6	8
एकन्थेसी	7	7

तालिका 3- अभयारण्य में पौधों के स्वभाव के आधार पर जातियों का वितरण

स्वभाव	जातियों की संख्या
वृक्ष	19
झाडियाँ	26
शाक	75
लताएं	33

विस्तारित विवरण निम्नवत है:

वृक्ष - हनआह-कहआउ (*माइकेलिया पंडुआना*), फर-बेंग (*गार्सिनिया जैंथोकाइमस*), थिंग-ज्ञा-फू (*डाइसोजाइलम एक्सेल्सम*), *क्रप्टोनिया पेनीकुलाटा*, थिंग-साई-ड्.गल (*इक्जोरा नाइग्रिकैंस*), चाव्म-जिल (*लिगुस्ट्रम रोबुस्टम*), थिंग-कवि-लू (*वाइटेक्स पेडंकुलेरिस*), केल-ते-बेंग-थ्लेप (*एक्टिनोडफने सिट्राटा*), पेम्प्रलेक-दं-दावी (*एक्टेफिला एक्सेल्सा*), थूर-तेयन (*एंटीडेस्मा मोंटानम*), खार-पा (*मकरंगा डेंटीकुलाटा*), खार्पा (*मैलोटस पैनीकुलेटस*), तात-क्वांग (*आर्टोकारपस चपलासा*), तात-क्वांग (*आर्टोकारपस हेटेरोफिलस*), थै-पुई (*फाइकस सेमीकार्डेटा*), लैन-लाँग (*बोहेमेरिया ग्लोमेरूलिफेरा*), लाई-सा-रल (*लिकुला पेल्टाटा*) आदि।

झाड़ियाँ - *ट्राइवल्वेरिया अर्जेसिया*, बर-बेक (*डेस्मोडियम हेटेरोकार्पोन*), उइ-फावमा-रिंग (*फ्लेमेंजिया स्ट्रिक्टा*), उइ-फावमा-रिंग (*टाडेहागी ट्राईक्वेट्रम*), हरुई-वौ-बे (*फेनेरा ग्लाका*), बुई-लू-खाम (*मेलास्टोमा मालाबाथ्रिकम*), खेल-हनम-तुर (*हेडियोटिस स्कंडेंस*), वा-केप (*मुसेंडा रोक्सबर्गी*), वा-ते-जु (*माइसीटिया लांगीफोलिया*), अइ-तियांग (*नोस्टोलेक्मा खासियाना*), कव्र-पेल्ह (*साइकोट्रिया मोंटीकोला*), *सिलवियान्थेस ब्रेक्टिएटस*, फो-लेंग (*क्रोमोलिना ओडोरेटा*), हरुई-खा (*जस्मिनम नर्वोसम*), पर-अर-सि (*टेबरनेमोनटाना डाइवेरीकाटा*), सम-तव्क-ते (*सोलेनम क्रेसीपेटेलम*), तियार-रेप (*रिंकोटिकम इलिपटिकम*), वा-ते-जु (*फ्लोगाकैंथस कर्वीफ्लोरस*), रं-टिंग (*स्ट्रोबिलेंथस कैपीटाटा*), फुई-हनाम (*क्लेरोडेंड्रम ग्लेंडुलोसम*), जव्ड्.ग-ते-नंगलुंग (*एल्कोर्निया टिलिफोलिया*), भक-तेल (*ब्रिडेलिया स्टिपुलेरिस*), हरुई-पुई (*कैलेमस इरेक्टस*), जव्ड्.ग-ल-खुइह (*पैंडेनस फ्वेटिडस*), टेल्हाव्ड्.ग-नु (*टाइफोनियम ट्राइलोबेटम*) आदि।

शाक - बावरह-सै-अ-बे (*एबेलमास्कस एस्कुलेंटस*), अन-थुर (*हिबिस्कस सबडरीफा*), से-६प (*यूरेना लोबाटा*), सजुक-न्घव्ड्.घ्लप (*बिट्टनेरिया पिलोसा*), से-हप-सुयाक (*ट्रिम्फेट्टा बोगोटेंसिस*), से-मे-बव्म (*ट्रिम्फेट्टा रामबोयडिया*), से-बे-हलियांग (*डेस्मोडियम ट्राइफ्लोरम*), हॅलो-नुयर (*मिमोसा पुडिका*), से-खूप-थुर (*बिगोनिया पेराकेंसिस*), लालरुयांगा-दरणवनह (*बिगोनिया थामसोनाई*), लूम-सुयाक (*ओफियोराइजा अपाजिटीफ्लोरा*), अन-का-सा-कीर-लो (*अक्मेला पैनीकुलाटा*), वै-लैन-हॅलो (*एजीरेटम कोनीज्वाइडिस*), वक-पुई-थल (*बाइडेंस पिलोसा*), बुयार-आँका-सा (*क्रेसोसिफैलम कृपीडिवायडिस*), हनह-छाह (*होया लोबी*), पर-ड्.गो (*केंसकोरा एंड्रोग्रेंफ्वायडिस*), था-सुइह (*बोन्या रेप्टेंस*), पेम्प्रलेक-दमदवी (*स्कापेरिया डल्सिस*), आर-अव-केउ (*टोरेनिया वेगेंस*), बावल-ते-हनला-ताई (*एस्कीनेन्थस हुकेरी*), कवर-कम-पर (*एरेंथेमम स्ट्रिक्टम*), लेंग-माँ-शर (*एल्सोल्जिया स्टेकियोडस्*), पट-चौलि (*पोगोस्टिमोन पार्वीफ्लोरस*), बु-चावल (*एकरेंथस अस्पेरा*), मीतङ्ग टी-सुन-हलु (*फाइलेंथस यूरीनेरिया*), आई-चल (*अमोमम एरोमेटिकम*), आई-दु (*अमोमम मैक्सिमम*), आई-चे-पर-सें (*हेडिकियम काक्सीनियम*), ठियाल-खा (*टक्का इंटेग्रीफोलिया*), सुम-बल (*किलोकास्टस लेसेरस*), सुम-बल (*किलोकास्टस स्पिसियोसस*), दव्ड्.ग-पुई (*पोलिया सबअंबेलाटा*), अंचि-री (*होमेलोमिना एरोमेटिका*) आदि।

सेज एवं घास - *फिंब्रीस्टायलिस डाइकोटोमा, हयपोलेंट्रम नीमोरम, रयनकोस्पोरा कोलोरेटा*, दी-सुल (*अरूंडेनेला बेंगालेंसिस*), *सेंटोथीका लेपेसिया, क्रायसोपोगोन असिकुलेटस, सिर्टोकोकम पेटेंस, डिजिटेरिया सिलियरिस, डिजिटेरिया कोम्पेक्टा*, थाँग-ते (*डिजिटेरिया वायलासेंस*), *एराग्रोस्टिस एट्रोवीरेंस, ओप्लिस्मेनस कंपोसिटस, पेनिकम नोटेटम, पासपेलम कोन्जूगेटम, पासपेलम डाइलेटेटम, पोगोनेथेरम क्रिनिटम*, हनह-हरत (*सिटेरिया पामीफोलिया*), *स्पोरोबोलस डाइएंडर*, फाई-फेक (*थिमेडा विलोसा*), हमुन-फियाह (*थाइसेनोलिना लैटीफोलिया*) आदि।

1. *फेनेरा ग्लौका* 2. *पेंडेनस फोटिडस* 3. *एल्टिंजेरा लिंगुइफार्मिस* 4. *मैलोटस पैनीकुलेटस* 5. *बल्बोइटिस नुडीफ्लोरा* 6. *सीलोजिनी विसकोसा* 7. *लिकुला पेलटेटा* 8. *डाइसोजायलम एक्सेलसम* 9. *कार्डिप्टेरिस कुईकुइलोबा*

लताएं- राइ-रह-मित-तुइ-थला (*क्लेमेटिस स्माइलेसीफोलिया*), हनह-बियाल-हरुई (*सिसमपिलोस परीरा*), लालरुयांगा-बुहफाइथ-अप (*कार्डियोप्टेरिस क्विनकेलोबा*), सा-न्घर-हमर (*सिसस असामिका*), हरुई-पवल (*सिसस जैपोनिकां*), लेंग-फेक (*वाइटिस ट्यूबरकुलेटा*), हरुई-चूँ (*स्पैथोलोबस पार्वीफ्लोरस*), खंग-दिंग (*अकेसिया पिन्नाटा*), जापान हॅलो (*माइकेनिया माइक्रेंथा*), फेल-फेक (*अर्गीरिया केपेटीफार्मिस*), थियान-नु (*आइपोमिया किंगी*), जावड्.गा-तियान (*थुन्बर्जिया एलाटा*), हनह-थाक (*पाइपर एटेनुयेटम*), हनह-थाक (*पाइपर फाल्कोनरी*), हनह-थाक (*पाइपर पेडहसिलोसम*), कई-हा (*स्माइलेक्स आर्थोप्टेरा*), फूंग-ब-छिम (*डायोस्कोरिया बल्बीफेरा*), *डायोस्कोरिया हेमिल्टोनी, डायोस्कोरिया आपोजिटीफोलिया,* लाई-किंग-टाई-रुआ (*पोथास स्केंडेंस*), ठियाल-लाव्न (*रेफिडोफोरा कैलोफिला*), ठियाल-लाव्न (*रेफिडोफोरा ग्लाका*), ठियाल-लाव्न (*रेफिडोफोरा हुकेरी*) आदि।

हरितोद्भिद- इस वन्य जीव अभ्यारण्य के हरितोद्भिद विशेषकर लिवरवर्ट एवं हह्नर्नवर्ट संबंधी शोध कार्य अभी तक नहीं हुआ है। अतएव इस लेख में यहाँ पर पाये जाने वाले हरितोद्भिद पौधों के बारे में प्रारम्भिक जानकारी प्रस्तुत की गयी है। यहाँ पर पाये जाने वाले लिवरवर्ट्स मे लिजुनिएसी अधिपर्णी जातियों की बहुलता है। अधिपादपीय हरितोद्भिद मे वंश *फ्रूलानिया, प्लेजियोकाइला, सोलेनोस्टोमा* आदि की जातियां हैं जो यहां मिलती है। स्थलीय हरितोद्भिद मे बजानिया, *हेटेरोस्कायफस, नोटोस्कायफस, रिक्सिया* आदि तथा हह्नर्नवर्टो वंश *फियोसेरोस, एंथोसेरोस* की जातियां यहां पायी जाती हैं। इनकी पहचान का कार्य प्रगति पर है।

पर्णोद्भिद- पर्णोद्भिद संबंधी साहित्यों के अध्ययन करने के पश्चात यह ज्ञात हुआ है कि पुआलरेंग वन्य जीव अभ्यारण्य मे पाये जाने वाले पर्णोद्भिदों के बारे मे कोई विवरण उपलब्ध नही है। इस लेख मे यहा पाये जाने वाले पर्णोद्भिदों के बारे मे प्रारम्भिक जानकारी प्रस्तुत है। यहां पर्णोद्भिदों की कुल 35 जातियाँ एवं 23 वंश है जो 21 कुलों मे वितरित है जिनमे से 28 जातियाँ स्थलीय पर्णोद्भिद है तथा 7 जातियाँ वृक्षो पर (अधिपादप) पायी जाती है। यहां पर आमतौर पर मिलने वाली जातियों में ड्.गल-हेम (*लाइकोपाडिएला सर्नुआ*), *सिलाजिनेला वेजिनाटा, सिलाजिनेला रेपंडा, सिलाजिनेला वालीचि, सिलाजिनेला सिलियरीस,* क्वाक-सा-के *(एंजियोप्टेरिस इवेक्टां*), क्वाक-सा-के *(एंजियोप्टेरिस इंडिका*), *डिक्रेनोप्टेरेस लिनिएरिस, पायरोसया लेन्सिओलाटा, पायरोसिया मानी, माइक्रोसोरम पंकटेटम,* तुयाई-बुर (*ड्राइनेरिया प्रोपिंकुआ),* डिप्टेरिस वालिची, डाव्न-जेम (*लाइगोडियम फ्लेक्सुओसम*), डाव्न-जेम (*लाइगोडियम अल्टम*), डाव्न-जेम (*लाइगोडियम सेलिसिफोलियम*), *पिटेरोग्रेमा केलोमिलेनोस, टेरिस सूडो पेलुसिडा,* काय-रेम (*ओनिकियम सिलिकुलोसम*), *विटेरिया फ्लेक्सुओसा, माइक्रोलेपिया कोडिजेरा, लिंडसिया एन्सिफोलिया, सायक्लोसोरस मेगाफिलस,* कांग-रेम (*एस्पलीनियम निडस*), *टेकटेरिया ईम्प्रेस्सा, टेकटेरिया पोलीमोरफा, टेकटेरिया वासता, बोलबिटिस हेटेरोक्लीता, बोलबिटिस नोडीफ्लोरा,* कवक-मा-थेर (*ब्लेक्नम ओरियंटेल*), *हयमेनोफिलम एक्सर्टम,* चा-काव्क-पुई (*सायथिया ब्रुनोनियाना*), चा-कवक (*डिप्लेजियम डिलाटाटम*) आदि हैं।

अंततः यह कहा जा सकता है कि उपरोक्त वर्णित तथ्य लेखकों द्वारा किए गए अन्वेषणों के आधार पर दिये गए हैं और भविष्य में विस्तृत गहन अध्ययन से और भी बहुत सी जानकारियां मिल सकती हैं।

———

नवाबगंज पक्षी अभयारण्य की वानस्पतिक विविधता

आरती गर्ग एवं पुष्पी सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले में स्थित नवाबगंज पक्षी अभयारण्य की स्थापना 1984 में हुई थी। यह संरक्षित क्षेत्र 2.246 वर्ग मी में फैला हुआ अपनी जैव विविधता व प्राकृतिक सुन्दरता के लिए जाना जाता है। नवाबगंज पक्षी अभयारण्य उच्चवर्ती गंगा के मैदानी पारिस्थितिकी तंत्र का छोटा सा भाग है। यह अभयारण्य भौगोलिक 26°.48" से 27°. 2" उत्तरी अक्षांश से 80°3 से 81° 3 पूर्ण देशान्तर के मध्य स्थित है तथा इसकी सीमा के उत्तर पश्चिम में हरदोई तथा उत्तर पूर्व में लखनऊ जनपद की सीमायें है, दक्षिण पश्चिम में गंगा नदी, दक्षिण पूर्व में रायबरेली जनपद स्थित है।

पूर्व की कुल्ली वन झील वर्तमान में नवाबगंज पक्षी अभयारण्य के नाम से मशहूर है। कुल्ली वन झील सदियों से शिकार प्रेमियों को आकर्षित करती रही है। यहाँ राजा, महाराजा, अंग्रेज, नवाब, जमींदार तथा शिकारी अनेक पक्षियों का शिकार करने आते थे। सन 1927 में वन्य पक्षी एवं जीवों के संरक्षण अधिनियम लागू होने के कारण पक्षियों के शिकार पर नियंत्रण प्रारम्भ हो गया। इस अधिनियम में सन 1934 में पक्षियों के शिकार को प्रतिबंधित किया गया। सन 1969 में उ. प्र. सरकार ने पक्षियों की विशिष्ट प्रजातियों का बन्दी काल घोषित किया तथा 1972 में वनजीव संरक्षण अधिनियम लागू होने पर इनका संरक्षण इस अधिनियम के आधार पर किया जाने लगा। 7 अगस्त 1984 को उत्तर प्रदेश सरकार ने इस स्थान को नवाबगंज पक्षी अभयारण्य के नाम से घोषित कर दिया। इसके साथ ही नवाबगंज पक्षी अभयारण्य उत्तर प्रदेश के एक महत्वपूर्ण पर्यटन स्थल के रुप में विकसित हो गया। लखनऊ-कानपुर आदि बड़े शहरों से सड़क मार्ग से सीधा जुड़ा होने के कारण यहाँ पर्यटन क्षमता व सम्भावनायें मौजूद हैं।

शीत ऋतु में यहां स्पून विल, व्हाइट नेक्ड स्टार्क, ब्लेक नेक्ड स्टार्क, पेन्टेड स्टार्क, व्हाइट आइविस, गलासी आइविस, ओपन विल्ड स्टार्क, लिटिक ईगरेट, ग्रेहेरान, पान्ड हेरान, स्पाट बिल, पिनटेल, विजन गैडवाल, गैडवाल शावलर, कामनटील, ब्रहमनीडक कूट, काम्ब डक, लेसर व्हिसलिंगटील, काटनटील, पोचाई, डार्टर, किंग फिशट, टर्न आदि लाखों प्रवासी पक्षी ठण्डे देशों, साइबेरिया, चीन, यूरोप, तिब्बत आदि से आते हैं और ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ होते ही अपने देशों को वापस चले जाते हैं। निवासी पक्षी वर्ष भर अपना डेरा इसी क्षेत्र में जमाये रहते हैं। दिसम्बर-जनवरी के माह में पक्षी अभयारण्य अपने सौन्दर्य के चरम सीमा पर रहता है। इस अवधि में इन विदेशी मेहमानों का नजारा देखने योग्य होता है। यह अभयारण्य जैव विविधता से सम्पन्न तथा विविध वनस्पतियों और आवासी व प्रवासी पक्षी का स्थल बना हुआ है। यहाँ पर पाई जाने वाली विभिन्न वनस्पति जातियों के जलीय पादप, शाक, झाड़ी, घासें, आरोही लतायें तथा वृक्ष उपलब्ध है, जिसका संक्षिप्त विवरण निम्नवत है।

(क) जलीय पादप: जलीय पौधे को उनके उगने की दृष्टि से प्रमुख 4 भागों में बांटा गया है।

1. **जल निमग्न**- ये पौधे जल सतह के नीचे उगते हैं परन्तु उनकी जड़ें भूमि में जाती हैं या नहीं जाती हैं। यह उथले जल क्षेत्र में पैदा होते हैं। सामान्यत: *हाइड्रिला वर्टिसिलाटा, नाजस इंडिका, नाजस ग्रामीनिया, पोटामोजटन क्रिस्पस, पोटामोजिटान पेक्टीनेटस, पोटामोजिटान परफोलिएटस, यूट्रिकुलेरिया औरिया, यूट्रिकुलेरिया इक्जोलेटा, यूट्रिकुलेरिया स्टेलेरिस* आदि पायी जाती हैं।

2. **स्वतंत्र तैरते हुए**- ये पादप जल सतह के ऊपर उगते हैं, परन्तु जड़े पानी में लटकी रहती हैं तथा ये हवा के कारण पानी के बहाव के साथ-स्थान बदलते रहते हैं। इनमें मुख्यत: *एजोला पिन्नाटा, आइकोरनिया क्रेसीपेस* (जलकुम्भी), *वुल्फिया ग्लोबोसा, सालविनिया कुकुलाटा, लेम्ना परप्यूसिला* आदि पाई जाती हैं।

3. **स्थाई जल में तैरने वाले पौधे**- ऐसे पौधों की जड़ मृदा में, परन्तु पत्तियां पानी सतह के ऊपर तैरती रहती हैं। कुछ पौधे तो पूरी जल सतह को ही ढक लेते हैं। इसके अन्तर्गत *निम्फिया नौचाली, निम्फिया प्यूबेसेन्स, निम्फिया लोटस, निलम्बो न्यूसीफेरा, यूराले फेरोक्स, विक्टोरिया रेजिया, निम्फोआडस हाइड्रोफिला, निम्फोआडस इंडिका, ट्रेपा नेटन्स वैराइटी- बिस्पाइनोज, मारसीलिया माइनूटा* आदि पादप प्रजातियां पाई जाती हैं।

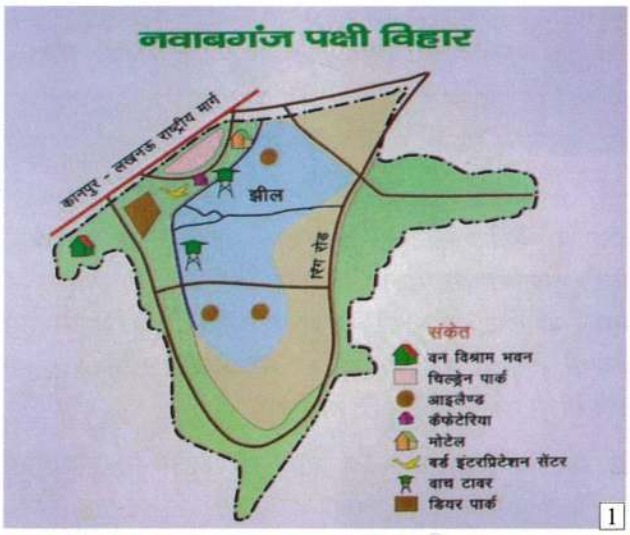

1. अभयारण्य का मानचित्र, 2. अभयारण्य का दृश्य, 3. *निलम्बो न्यूसीफेरा* 4. *ट्रापा नेटन्स* 5. *कॉक्सीनिया ग्रैन्डिस* 6. *आईपोमिआ केरीका* 7. *बेसेला एल्बा* 8. *ऑक्सेलिस डेबिल्स*

4. **अर्द्धनिमग्न**- यह पादप अपनी जड़ें और कन्द मृदा में रखते हैं तथा तने पानी के मध्य से होते हुए हवा में ऊँचाई तक बढ़ते है। इसके अन्तर्गत *सेजीटोरिया, पेस्पेलम, आइपोमिया एक्वेटिका, आइपोमिया कार्निया, टाइफा एंगुस्टीफोलिया, स्किपस आर्टिकुलेटस, स्किपस लैकुस्ट्रिस, स्क्रिपस लिटटोरेलिस, स्क्रिपस मुकरोनेटस, सैगीटेरिया गुयानेन्सिस, साइपेरस ब्रेवीफोलियस, साइपेरस एलोपेकुरोवाइडस, साइपेरस ब्रेविफोलियस, साइपेरस कोरिम्बोसा, साइपेरस डिफोरमिस, साइपेरिस नूटन्स, साइपेरस रोटुन्डस, साइपेरस ट्राइसेप्स* तथा अन्य बहुत सी घासें मुख्य हैं।

(ख) शाकीय पौधे- शाक पादपों में मुख्यत: *एजिरेटम कोनीज्वाडस, बैकोपा मोनियेरी, सेन्टेला एसिएटिका* (जल ब्राहमी), *बोराहविया डिफ्यूजा* (पुर्ननवा), *हीलिओट्रोपियम इन्डकम* (हाथीसूड़), *स्पाइलेन्थस सिलिएट, अल्टरनेनथेरा पन्जेन्स, स्पाइलेन्थस पेनीकुलेटा, सीडियम गुवाजावा* (अमरुद), *एक्लिप्टा प्रोस्ट्रेटा* (भृंगराज), *एक्लिप्टा एल्बा, रेनुनकुलुस सक्लिरेटस, ट्रिइबुलस ट्रेरेसट्रिस* (छोटा गोखरु), *वर्नोनिया साइनेरिया* (सहदेवी), *चीनोपोडियम एल्बम* (बथुआ), *यूफोरबिया हिरटा, कैनाबिस सेटाईवा, रूएलिया ट्यूबरोसा, लाइकोपरसिकॉन एस्कुलेन्टम, ऑक्जेलिस डीबिलिस, ऑक्जेलिस कोर्निकुलेटा* आदि पाई जाती है।

(ग) घासें - अभयारण्य के मुख्य घास पादपों में *ब्रेकेरिया मुटिका, डेसमोस्लेचिया बाइपिनाटा, इरेग्रोस्टिस सिलियेरिस, इरेग्रोस्टिस जैपोनिका, इरेग्रोस्टिस प्रोसेरा, इरेग्रोस्टिस गैंगेटिका, साइनोडॉन डेक्टाइलोन, पेनिकम पालूडोसम, पेनिकम पैंक्टेटम, पेनिकम स्पाइनिसेन्स, पेनिकम क्रेसगल्ली, पेस्पेलम डाइस्टिकम, सेक्केरम बेंगालेन्सिस, सेक्केरम स्पोन्टेनियेनम, सेक्केरम मुन्जा, मोलिंगो सरविआहा, पॉलिपोगान मोन्सपेलियमन्सिस, ट्रैगस रॉक्सबर्घी, विटिवेरिया जिन्जिनिवाइडस, मुलिंगो कार्विआ, स्पोरोबलस हेल्वोलुस, सेन्चरस सिलियेरिस, कोइक्स लैक्रीमा जोबी, अरिस्टिडा अदसेनिवोसिस, इलियोचेरिस अटरोपुरपुरेया, इलियोचेरिस डल्सिस, इलियोचेरिस स्टैग्निना, हाइग्रोराइजा अरिस्टाटा, इम्पेराटा सिलिन्ड्रिका, ओराइजा रुफीपोगान, पेसपेलम पॅन्क्टेटा, पेसपेलम स्क्रोबिकुलेटम, पेसपेलम वैगिनेटम, सीटेरिया वर्टिसिलाटा* इत्यादि पाये जाते है।

(घ) लतायें- *एब्रस प्रकाटौरियस* (रत्ती), *टीनोस्पोरा कोर्डिफोलिया* (गिलोय), *मोमोर्डिका चेरान्टिया* (करेला), *कुस्कुटा रेफ्लेक्सा* (अमरबेल), *कॉकसीनिया ग्रैनडिस* (कुंदरु), *पोटेन्टिला सुपाइन, माइमोसा पुदिका* (झुईमुई), *आईपोमिआ केरिका, लुफा एचिनेटा* आदि लताएँ पायी जाती है।

(च) झाड़ियां- *अर्जिमोन मेक्सिकाना* (अरण्ड), *आधाटोडा वेसिका* (अडूसा), *अबूटीलॉन इंडिकम* (कंघी), *रिसिनस कमुनिस* (अरण्डी), *कैलोट्रोपिस गिगान्टिया* (मदार), *कैलोट्रोपिस प्रोसेरा, केसिया टोरा, लेन्टाना कैमेरा, कैरिसा कोरान्डा* (करौंदा), *आइपोमिया फिस्टुलोसा, दतूरा स्टामोनियम, सोलेनम जैन्थोकार्पम, सोलेनम नाइग्रम* (मकोई), *जैन्थियम स्ट्रेमेरियम, ओसिमम सैन्कटम* आदि पायी जाती है।

(छ) वृक्ष- *अकेशिया निलोटिका* (बबूल), *अल्बीजिया लेबेक, अजाडिरेक्टा इंडिका* (नीम), *बाउहीनिया वैरिगाटा, डलबर्जिया सिसू* (शीशम), *यूकेलिप्टस अम्बेलेट, फाइकस रेलिजियोसा* (पीपल), *फाइकस बेनगालेंसिस* (बरगद), *फाइकस रेसिमुसा* (गूलर), *मोरस अल्बा* (शहतूत), *पिथोसेलोबियम डल्से, सीडियम गुवाजावा* (अमरुद), *प्रोसोपिस ज्यूलेफेरा, टर्मिनेलिया अर्जुना* (अर्जुन), *सीजियम क्यूमिनी* (जामुन), *केसिया फिशतुला* (अमलतास), *जिजीफस नुम्मुलेरिया, जिजीफस ओइनोपिला, फोइनिक्स सिल्वेट्रिस* (खजूर), *नेरियम इंडिकम* (कनेर) आदि प्रमुख वृक्ष उपलब्ध है।

संकट एवं संरक्षण- वर्तमान में नवाबगंज पक्षी अभयारण्य के ऊपर अनेक संकट जैसे वायु में बढ़ता प्रदूषण, पालतू जानवरों का चारागाह, कृषि योग्य भूमि का विस्तारण, मछली पकड़ना, घास-युक्त मैदानों का दहन आदि खतरे मंडरा रहे हैं। यह अभयारण्य बड़े-बड़े शहरों जैसे लखनऊ, कानपुर, हरदोई, रायबरेली आदि के बीच में बसा होने के कारण पर्यावरण में बढ़ता प्रदूषण यहां की जलवायु, वन्यजीव व वनस्पतियों को प्रभावित कर रहा है। कारखानों तथा वाहनों द्वारा उत्सर्जित विषैली गैसें वायुमण्डल को प्रदूषित कर रही हैं। बढ़ते हुए औद्योगीकरण तथा लगातार वन सम्पदा के दोहन से पर्यावरण का संतुलन बिगड़ता जा रहा है क्योंकि पेड़ पौधे प्रकृति का संतुलन बनाये रखने में सबसे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन संकटों की वजह से अभयारण्य का अस्तित्व खतरे में है और जल्द ही इसके समाधान हेतु कारगार कदम उठाने की आवश्यकता है ताकि इस अभयारण्य में पाई जाने वाली अनेकों प्रजातियां विरल तथा संकटग्रस्त होने से बचाई जा सकें।

———

वाल्मीकि बाघ अभयारण्य, पश्चिम चंपारण, बिहार की वानस्पतिक विविधता

राजीव कुमार सिंह एवं **विनीत कुमार सिंह**
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

भारत सरकार ने बाघों को संरक्षित करने के लिए 1 अप्रैल 1973 को "बाघ परियोजना" का शुभारंभ किया। इसके तहत विभिन्न अभयारण्यों को चिन्हित कर उनको बाघ अभयारण्यों का दर्जा दिया गया। भारत के प्रमुख बाघ अभयारण्यों में से एक वाल्मीकि बाघ अभयारण्य, बिहार में 27° 10′ - 27° 30′ उत्तरी अक्षांश एवं 83° 45′ - 84° 45′ पूर्वी देशांतर में पश्चिम चंपारण जिले में स्थित है। इसका कुल क्षेत्रफल 840 वर्ग कि.मी. है। सन् 1990 जनवरी में इसकी स्थापना हुई, जो गंडक नदी के पश्चिम एवं रायल चितवन राष्ट्रीय उद्यान नेपाल के उत्तर में स्थित है। इस क्षेत्र का धार्मिक महत्व भी है। ऐसा माना जाता है कि, महर्षि वाल्मीकि ने महान ग्रंथ "रामायण" की रचना यहीं पर की थी। इसके क्षेत्र में बड़ी लंबी-लंबी बेतों एवं घास की झाड़ियाँ पाई जाती हैं, जो बाघों के प्रजनन एवं रहने योग्य उपयोगी हैं। यह अभयारण विभिन्न प्रकार के वनों से घिरा हुआ है। जैसे आर्द्र घास के मैदान, मिश्रित शुष्क पर्णपाती वन, आर्द्र शुष्क पर्णपाती वन एवं ताजा जलीय दलदल वन, जो शाकाहारी जानवरों के लिए ऊर्जा का अति महत्वपूर्ण स्रोत है।

स्थलाकृति एवं मृदा- वाल्मीकि बाघ अभयारण्य शिवालिक हिमालय के तराई क्षेत्र में आता है, जो मुख्यत: बलुए पत्थर एवं बजरियों से भरा हुआ है। गंगा के नये एवं पुराने जलोढ़ मैदानों के कारण यहां कई झीलों एवं खाईयों का निर्माण हुआ है। बूढ़ी गंडक, छोटी गंडक एवं कोसी आदि नदियाँ मिलकर इस जलोढ़ मैदान में कई स्थलाकृतियों का निर्माण करती हैं।

जलवायु- यहां की जलवायु को मुख्यत: तीन भागों में बांटा जा सकता है। गर्मियों का मौसम देर मार्च से मई तक, बारिश का मौसम जून से अक्टूबर तक, सर्दी का मौसम - नवम्बर से शुरुआती मार्च तक होता है। अधिकतम तापमान 21 से.ग्रे. - 36 से.ग्रे. के बीच एवं न्यूनतम तापमान 4 से.ग्रे. से 15 से.ग्रे. तक होता है। सबसे अधिक वर्षा जून एवं जुलाई में होती है। आर्द्रता लगभग 83 प्रतिशत रहती है।

जनजाति- इस बाघ अभयारण्य में थारु जनजाति निवास करती है, जो एक द्रविड़ रेस है। ऐसा माना जाता है कि इनके पूर्वज कभी गंगा की घाटी में शासन करते थे। धीरे-धीरे वे उप-हिमालय क्षेत्र में बढ़े जहाँ उनका संपर्क नेपालियों एवं दूसरी जनजातियों से हो गया, जिसके कारण इनकी शारीरिक बनावट कुछ मंगोलियन रेस एवं कुछ भारतीय जैसी लगती है। इनकी भाषा मुख्यत: भोजपुरी एवं नेपाली का सममिश्रण है। इनका जीविकोपार्जन इस अभयारण्य में पाई जाने वाली विभिन्न वनस्पतियों पर निर्भर है।

बाघ अभयारण्य की पादप विविधता इस प्रकार है।

अ. पुष्पित पादप-

1. **उष्ण कटिबंधीय पर्णपाती वन**- अधिकतर क्षेत्र इन्हीं वनों से घिरा हुआ है। संपूर्ण उत्तरी भाग बालू पत्थरों के पहाड़ियों से बना है। इस क्षेत्र में मुख्यत: *शोरिया रोबस्टा, काईडिया केलीसिना, एनोजीसस लेटीफोलिया, डलबर्जिया सिस्सो, ब्यूटिया मोनोस्पर्मा, एगिल मार्मेलॉस, लेजरस्ट्रोमिया पारविफ्लोरा, बाउहिनिया मालबेरिका, बाउहिनिया परप्यूरिया, बाउहिनिया रेसिमोसा, बॉम्बेक्स सिबा, मैंगिफेरा इंडिका, स्टरक्यूलिया यूरेन्स, स्टरक्यूलिया विलोसा, टरमिनेलिया बिलेरिका, टरमिनेलिया एलाटा, टरमिनेलिया चेबुला, केरेया अरबोरिया, हालडिना कॉर्डिफोलिया, नियोलेर्माकिया कदंबा, मिट्रागाइना पार्विफ्लोरा, निकटैन्थस आरबोरट्रीसटीस, होलेरहिना प्यूबिसेंस, ट्रेमा ओरियन्टेलिस, फाइकस सेमीकारडेटा, सेलिक्स ट्रेटास्पर्मा, एलबीजिया प्रोसेरा, फाइलेन्थस एम्बलिका, साइजाइजियम क्यूमिनी, अकेसिया कटेचू, टेमरिन्डस इंडिका* आदि प्रजातियां पाई जाती हैं।

इस प्रकार के वनों की निचली सतह झाड़ियों से घिरी होती है, जैसे *कोलेब्रोकिया ओपोसिटीफोलिया, मुराया कोइनगी, कैलीकार्पा मैक्रोफिला, सोलेनम सुराटेन्से, जिजीफिस इनोप्लिया, क्लेरोडेन्ड्रम विसकोसम, लैन्टाना स्पे.,आदि। कुछ छोटी झाड़ियां जैसे डेसमोडियम*

गंगेटिकम, डेसमोडियम लेक्सीफ्लोरम, डेसमोडियम मोटोरियम, यूरेना सीनूएटा, यूरेना लोबेटा, प्लमबेगो जिलेनिका, ट्रायमफेटा रोहेमबोइडिया, केसिया ऑक्सीडेन्टालिस, केसिया सोफेरा, क्रोटेलेरिया अलविडा, क्रोटेलेरिया स्पेक्टाबिलिस, टेफरोसिया परप्यूरिया, राउलफिया सरपेन्टिना, राउलफिया टेट्राफिला, कैलोट्रोपिस प्रोसेरा, एनिसोमेलेस इंडिका आदि। नम क्षेत्रों में नाजुक छोटे पौधे जैसे *प्राइम्यूला अम्बेलाटा, बोथ्रियोस्पर्मम टिनेलम, सेन्टयूरियम सेन्टयूरिओइडस, हेमीग्रेफिस हिरटा, ऑलडेनलेडिया कोरिमबोसा, सालविया प्लेबिया, वरबेसकम चाइनेन्से* आदि।

वर्षा होने के तत्पश्चात विभिन्न पादपों, जैसे *अकालिफा इंडिका, अडेनोस्टेमा लेवेनिया, इवोलवूलस नूमूलेरियस, लिन्डरनिया सिलियेटा, लिन्डरनिया एटीपोडा, लिन्डरनिया अनागेलिस, पेपेरोमिया पेलूसिडा, रंजिया पेक्टीनाटा* आदि से वनों की निचली सतह आच्छादित हो जाती है।

बाऊहिनिया वेहलाई, डेरिस स्केन्डेन्स, मिलिसिया एक्सटेन्सा, म्यूक्यूना प्रूरियेन्स कॉमब्रिटम रॉक्सबर्गाई, सिलेस्ट्रस पेनीक्यूलेटस, रिसेन्सिया आरबोरिया, क्लीमेटिस गोरइआना, टिनोस्पोरा कार्डिफोलिया एवं *डाइओसकोरिया* स्पे.आदि कुछ बेल और लताएँ है, जो इस अभयारण्य में पाई जाती है।

तराई घास के मैदान में मुख्यत: *अरुण्डो डोनेक्स, फ्रेगमाइटिस वेलटोरिया, सिम्बोपोगॉन* स्पे., *इराग्रोस्टिस* स्पे., *सेक्रम अरुण्डिनेसियम, सेक्रम स्पानटेनियम, थिमिडा अरुनडिनेसिया, थिमिडा क्वाडेटा, थिमिडा लेक्सा* आदि जबकि *अकेसिया* स्पे., *ग्रीविया* स्पे., *टरमिनेलिया* स्पे., *कैलोट्रोपिस प्रोसेरा, कैलोट्रोपिस जाइगेन्सिया* आदि पेड़ एवं झाड़ियां मिलती हैं।

2. उष्णकटिबंधीय आर्द्र पर्णपाती वन- इस तरह के वनों में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ *शोरिया रोबस्ता, टरमिनेलिया अलाटा, टरमिनेलिया बिलेरिका, डलबरजिया सिसू, डलबरजिया लेटिफोलिया, हालडीनिया कार्डिफोलया, बाम्बेक्स सिबा, लेजरस्टोमिया पारवीफ्लोरा, एंटीडेस्मा घेसेमबिला, मेलिना आरबोरिया, मैलोटस फिलीपिनसिस, काईडिया केलीसिना* आदि पाये जाते हैं।

झाड़ियों के रुप में *ब्रेनिया रेटूसा, एनिसोमेलेस इंडिका, कोलब्रूकिया अपोसिटिफोलिया, पोगोस्टीमान बंगालेन्सिस, हिप्टीस सुआवेओलेन्स, क्लीरोडेनड्रम विसकोसम, क्लीरोडेनड्रम इंडिका, लिपिया अल्बा, बारलेरिया क्रिसटाटा, लिया क्रिस्पा, लिया मैक्रोफिला, डेममोडियम स्पे., बम्बूसा टूलडा, बम्बूसा वल्गेरिस, डेन्ड्रोकैलमस स्ट्रिकटस, कैलमस टेन्यूस* आदि। लताओं के रुप में *म्यूकूना प्रूरियन्स, स्माइलेक्स ओवोलिफोलिया, इक्नोकारपस फ्रूटिसेन्स, पिडेरिया फोएटिडा* आदि।

3. ताजा जलीय दलदलीय वन- इस प्रकार के वन प्राय: निचली सतह पर, जल जमाव वाले क्षेत्रों मे नदी के किनारे एवं झरनों के किनारे पाये जाते हैं। यहाँ पर सदाबहार पेड़ जो घासों एवं बेतों से घिरे होते है, जैसे- *बैरिंगटोनिया एक्यूटनग्यूला, साइजाइजियम क्यूमीनी, सैलिक्स टेट्रास्पर्मा, फाइकस रेसिमोसा, स्ट्रैबलस एस्पर, कैलामस टेन्यूइस, अरुन्डो डोनेक्स, वेटिवेरिया जिजेनवाइडिस, सैक्रम स्पानटेनियम* आदि।

4. जलीय पादप- जलीय पादपों में मुख्यत: *पिस्टिया स्ट्रेटिओटिस, लेमना गिब्बा, लेमना परप्यूसिला, स्पाईरोडेला पॉलीराइजा, स्पाईरोडेला पंकटेटा, ट्रेपा नेटन्स, आइकार्निया कैसिपस, सिरेटोफिलम डिमरसम, हाड्रिला वरटीसिलेटा, नाजस माइनर, पोटेमोजिटान नोडोसस, पोटेमोजिटान पेक्टिनेटस, आरटीक्यूलेरिया आऊरिया, नेकमैन्ड्रा अल्टरनिफोलिया, मोनोकोरिया वेजिनेलिस, निमफिया नोउचाली, निमफिया रुब्रा, निमफोइडस इंडिका, निलम्बो न्यूसीफेरा, आइपोमिया एक्वेटिका* आदि।

ब. अपुष्पीय पादप-

1. टेरिडोफाइट (पर्णोदिभद)- कुछ पर्णोदिभद् भी इस अभयारण्य में पाये जाते हैं, जैसे- *एडियानटम फिलीपेन्से, एजोला पिन्नाटा, ब्लेक्नम ओरियन्टाले, क्रिस्टेला एरीडा, क्रिस्टेला डेन्टेटा, क्रिस्टेला पैरासिटिका, इक्यूसिटम रेमोसिसिमम, हेलमिन्थोस्टेकियस जिलेनिका, लाइगोडियम प्लेक्सिओसम, मारसिलिया माइन्यूटा, टेरिस बाइआउरेटा, टेरिस विटेटा, सिलेजनेल्ला ब्रायोप्टेरिस, सिलेजनेल्ला सिलियारिस* आदि।

2. **ब्रायोफाइट (हरितोदिभद)**- मुख्यत: *साइथोडियम केवरनेरम, मारकेन्सिया लिनियरिस, नोटोथाइलस इंडिका, प्लेजियोकेसमा अपेन्डीक्यूलेटम, रिक्सिया बिलेरडियराई, रिक्सिया डिसकलर, रिक्सिया फ्रासटाई* आदि। मॉस-फ्यूनेरिया *हाइग्रोमेटिका, बरब्यूला कान्सट्रिक्टा* आदि।

स्थानिक पादप- *ल्यूकस हेलिक्टेरीफोलिया* एवं *ट्रैकिस्पर्मम विलोसम* पादप पश्चिम चंपारण जिले के स्थानिक पादप हैं,जो इस बाघ अभयारण्य में भी पाये जाते हैं। *टेट्रास्टीगमा अलसीकोरनी* एवं *यूरेरिया पुलकरा* इस अभयारण के दुर्लभ एवं स्थानिक पादप हैं।

दुर्लभ पादप- इस अभयारण्य के मुख्य दुर्लभ पादप है, *अब्रस पलक्षेलस, एग्रोस्टीमा सारमनटोसम, काफीया खासियाना, लोबेलिया निकोटिएनीफोलिया, नारावेलिया जिलेनिका, ओलेक्स स्केनडेन्स, टेरोस्पर्मम असेरीफोलियम, सराका असोका, ट्रिवेसिया पॉमेटा, जेन्टोलिस टोमेन्टोसा, ल्यूकस हेलिकटेरिफोलियम*।

इस बाघ अभयारण्य में वनस्पति विविधता अत्याधिक होने के कारण यहां कई प्रकार के दैनिक उपयोगी पादप भी पाये जाते हैं। इन पादपों को उनकी उपयोगिता के अनुरुप निम्न श्रेणियों में बांटा जा सकता है।

खाद्य पादप-

कन्द व प्रकन्द- *करक्यूलिगो ओरकिओइडिस, डायस्कोरिया अलाटा, डायस्कोरिया बल्बिफेरा, डायस्कोरिया पेंटाफाइला, डायस्कोरिया गेलब्रा, डायस्कोरिया प्यूब्रा, नीलम्बो नूसीफेरा*।

नई पत्तियां एवं कोमल तने- *एमरेन्थस विरीडिस, बाऊहिनिया परप्यूरिया, बाऊहिनिया रेसीमोसा, कासिया टोरा, कोकूलस हिरस्यूटस, डेन्ड्रोकेलामस स्ट्रिकटस, हिबिसकस सबडेरिफोलिया, आइपोमिया एक्वेटिका, मुराया क्योनीगी, निमफोइडिस इंडिका, ओक्जेलिस कार्निक्यूलेटा, पोलीगोनम बारबेटम* आदि।

पुष्प- *आरटोकारपस लकूचा, बाऊहिनिया परप्यूरिया, बाऊहिनिया रेसीमोसा, इंडिगोफेरा कैसीओडिस, मधुका लांगीफोलिया, मोरिंगा ओलीफेरा, नीलम्बो न्यूसीफेरा, वुडफोर्डिया फ्रूटीकोसा* आदि।

फल- *एजिल मार्मेलास, अलेन्जियम सॉलविफोलियम, एनोना रेटीकूलाटा, एनोना स्क्वायमोसा, नियोलैमार्किया कदंबा, एंटीडेसमा एसिडम, आरटोकारपस लकूचा, बोरेसस फ्लेबेलीफर, बुचनैनिया लैन्जन, कैरिसा कैरेन्डस, कासिया ऑक्सीडेन्टालिस, कासिया टोरा, कॉकसिनिया ग्रेन्डिस, डायोस्पायरस मालवेरिका, मेलिना आरबोरिया, फाइकस रेसीमोसा, फाइकस सेमीकार्डेटा, फाइकस वाइरन्स, फिनिक्स एकोलिस, फिनिक्स हूमीलिस, एम्बलिका ऑफीसिनेलिस, सोलेनम नाइग्रम, जिजिफस स्पे.*,आदि।

बीज (पकाकर या भूनकर)- *बाऊहिनिया वेहलाई, कासिया आक्सीडेन्टालिस, इलयूसिन इंडिका, ओराइजा रुफीपोगान, पैसपैलिडियम स्क्रोबिकूलेटम, सेमीकार्पस अनाकार्डियम, स्टरकुलिया यूरेन्स, विगना ट्राईलोबाटा, बुचनेनिया लेन्जन* आदि।

तेलयुक्त बीज- *बोरेसस फ्लेबलिफर, मधुका लॉगीफोलिया, रिसिनस कम्यूनिस, शोरिया रोबस्टा, अजारडिरेक्टा इंडिका, पोंगामिया पिनेटा*।

इमारती लकड़ी देने वाले पादप- इस अभयारण्य के कई पेड़ों की इमारती लकड़ी, फर्नीचर, भवन, कृषि यंत्र आदि बनाने के उपयोग में लाई जाती है, जैसे *एनोजीसस लाटीफोलिया, अजारडिरेक्टा इंडिका, डलबर्जिया लाटीफोलिया, डलबर्जिया सिस्सो, मेलीना आरबोरिया, हालडिनिया कार्डीफोलिया, मैंजिफेरा इंडिका, मित्रागाइना पार्वीफोलिया, शोरेया रोबस्ता, साइजीजियम कुमिनी, टरमिनेलिया एलाटा, अल्बीजिया लेबेक, अल्बीजिया ओडोराटिस्समा, टूना सिलियेटा* आदि।

छप्पर छाने में प्रयोग होने वाले पादप- *बोरेसस फ्लेबलीफर, डेन्ड्रोकैलमस स्ट्रिकटस, बैम्बूसा टूलडा, इहरेसिया लेविस, लेजरस्टोमिया पारवीफ्लोरा, ओरायजा सटाइवा, फीनिक्स एकुलिस, फीनिक्स हूमिलिस, फीनेक्स सिलवेस्ट्रिस, शोरेया रोबस्टा, डलबर्जिया सीसू, सैक्रम अरुणडीनेसिअम, सैक्रम आफीसिनेरम, सैक्रम स्पानटेनियम, डायोस्पायरस मोन्टाना, एपलूडा म्यूटिका, टाइफा एगंस्टाटा, अरुण्डो डोनेक्स, फ्रैगमाइटिस वैलोटोरिया* आदि।

चारे के रुप में प्रयुक्त होने वाले पादप- *डेसमोडियम मोटोरियम, डेसमोडियम पलचेलम, मिलिसिया एक्टेन्सा, अल्बीजिया* स्पे., *फाइकस* स्पे.,*सेस्बेनिया सेस्बन, बम्बूसा टूल्डा, डेन्ड्रोकैलमस स्ट्रिकटस, डलबर्जिया सीसू, बाऊहीनिया बैराइगाटा, बूटिया मोनोस्पर्मा, मोरिंगा ओलीफेरा, टिनोस्पोरा कार्डीफोलिया, अल्टरनेन्थेरा सिसेलिस* आदि।

रंग देने वाले पादप- मुख्यत: *अकासिया काटेचू, बूटिया मोनोस्पर्मा, लेजरस्टोमिया पार्वीफ्लोरा, लाऊसोनिया इनरमिस, मैलोटस फिलिपेन्सिस, निक्टेन्थस आरबॉर-ट्रिसटिस, करक्यूमा लांगा, इंडिगोफेरा अस्ट्रागेलिना, इंडिगोफेरा टिंक्टोरिया, वेन्डलैंडिया टिंक्टोरिया, वुडफोर्डिया फ्रूटिकोसा* आदि रंग प्रदान करने वाले पादप हैं।

वाद्य यंत्र बनाने में प्रयुक्त होने वाले पादप- *मैंगीफेरा इंडिका, मेलिना आरबोरिया, शोरिया रोबस्टा, टेक्टोना ग्रैंडिस, टरमिनेलिया अलाटा* आदि के लकड़ियों के उपयोग से विभिन्न वाद्य यंत्र बनाये जाते हैं।

मद्य एवं नशीले पदार्थ में प्रयुक्त होने वाले पादप- *एस्परेगस रेसीमोसस, बोरेसस फ्लेबेलीफर, फीनिक्स सिलवेस्ट्रिस, पाइपर लोंगम, मधुका लोंगीफोलिया, ओराइजा सटाइवा, क्लीरोडेन्ड्रम सिरेटम, क्रोटान रॉक्सब्रघाई, टेमारिन्डस इंडिका, कासिया आक्सीडेन्टेलिस, कैनाबिस सटाइवा* आदि।

गोंद एवं रेसिन प्रदान करने वाले पादप- *अकासिया* स्पे.,*एगिल मार्मेलास, एनोजिसस लॉटीफोलिया, बोसवेलिया सिरेटा, बूटिया मोनोस्पर्मा, बूटिया पार्वीफ्लोरा, शोरेया रोबस्टा, स्टरकुलिया यूरेन्स, मैंजीफेरा इंडिका, कार्डिया डाइकोटोमा, एजारडिरकटा इंडिका, बाम्बेक्स सिबा, बुजनैनिया लैन्जन* कुछ महत्वपूर्ण गोंद एवं रेसिन देने वाले पौधे हैं।

कीटनाशक के रुप में- *एजारडिरक्टा इंडिका, ओसिमम बेसिलिकम, ओसिमम टेनूइफ्लोरम, सिम्बोपोगॉन मार्टीनी, मुराया कोईनीगी* आदि कीटों से बचाव के लिए प्रयुक्त होते हैं।

रेशे प्रदान करने वाले पादप- *बोरेसस फ्लेबलिफर, फाइकस हिसपिडा, फाइकस रम्फी, एबुटिलान इंडिकम, हिबीसकस कैनाबिनस, मैलेक्रा कैपीटाटा, मालवेस्ट्रम कोरोमैनडेलीआनम, पैवोनिया रिपेण्डा, साइडा कार्डिफोलिया, यूरेना लोबेटा, ट्रमफेटा रोहेमबोइडिया, टायफा अंगस्टाटा, ग्रिविया स्पे.,कारकोरस स्पे.,मिलोकिया कॉरकोरिफोलिया, बाऊहीनिया परप्यूरिया, बाऊहीनिया रेसीमोसा* आदि का प्रयोग रेशे के रूप में होता है।

छतरी बनाने हेतु उपयोग होने वाले पादप- स्थानीय जन-जातियों द्वारा बारिश एवं धूप से बचने के लिए विभिन्न पौधों के पत्तियों एवं टहनियों से छतरियां बनाई जाती है। जैसे *बूटिया मोनोस्पर्मा, टेक्टोना ग्रेंडिस, बोरेसस फ्लेबेलीफर* आदि।

मछली मारने हेतु उपयोग किये जाने वाले पादप- *बैरिंगटोनिया एक्यूटेन्गूला, कासेएरिया इलिप्टिका, कासेएरिया ग्रेवियोलेन्स, काटूनारेगम स्पाईनोसा, टेफरोसिया केनडिडा* की छाल एवं पत्तियां, *डेरिस क्यूनीफोलिया* की जड़।

शिकार हेतु प्रयुक्त किये जाने वाले पादप- *कोर्डिया डाइकोटोमा* के पके फल, *स्ट्राइकनस नक्सवोमिका* के बीज, *फाइकस बेंगालेंसिस* का गोंद का प्रयोग पक्षियों एवं छोटे जानवरों को मारने में प्रयुक्त किया जाता है।

चीनी देने वाले पादप- *बोरेसस फ्लेबेलीफर, फीनिक्स* स्पे.एवं *सैक्रम आफीसिनेरम*।

कागज बनाने हेतु- *डेन्ड्रोकेलेमस स्ट्रिकटस, बोसवेलिया सैरेटा, हेलिक्ट्रस आइसोरा, हेट्रोपोगान कॉनटोरटस, इमपरेटा सिलिण डरिका, थिमेडा कॉडेटा* आदि।

टेनिन प्रदान करने वाले पादप- *अकाशिया निलोटिका, बाऊहीनिया परप्यूरिया, ब्रिडेलिया रेटूसा, बुचनैनिया लैन्जन, कासेएरिया ग्रेवियोलेन्स, कासिया फिसटुला, एम्बलिका आफीसिनेलिस, फाइकस बेंगालेंन्सिस, फाइकस रेसीमोसा, मैनिलकारा हेक्जेन्ड्रा,*

पादप विविधता को प्रभावित करने वाले कारक- कई जैविक एवं अजैविक कारणों द्वारा इस वन्य क्षेत्र का क्षरण हो रहा है जैसे- चारागाह के रुप में अत्यधिक प्रयोग की वजह से कई वन क्षेत्र घास के मैदान के रुप में तब्दील हो गये हैं। बाढ़ की वजह से भी

इस वन क्षेत्र को बहुत नुकसान सहना पड़ता है। गंडक नदी उसके साथ ही अन्य छोटी नदियाँ बारिश के मौसम में कटाव करती हुई जंगल के अंदर लगभग 1 कि.मी. तक पहुँच जाती हैं, साथ ही विभिन्न वनस्पतियों को अपने साथ बहा ले जाती हैं।

जंगल में आग लगने की वजह से शाकीय पादपों के साथ-साथ पेड़ों को भी अत्यधिक क्षति होती है। यह आग या तो बिजली गिरने से,पत्थर के टूटने से लगती है। आग की वजह से मृदा में पोषक तत्वों की कमी हो जाती है, सूक्ष्म जीवों की मृत्यु होती है, जिससे खाद्य श्रृंखला पर दुष्प्रभाव पड़ता है। मृदा क्षरण की वजह से भी पादप विविधता में परिवर्तन आया है। इसके साथ ही अत्याधिक दोहन एवं गैर-कानूनी कटाई की वजह से जंगल क्षेत्र में पेड़ों की संख्या कम होती जा रही है, साथ ही औषधीय पादपों का दोहन भी अपने चरम सीमा पर है।

वाल्मीकि बाघ अभयारण्य को संरक्षित करने की रणनीति- यह अभयारण्य वनस्पति विविधता से परिपूर्ण है, लेकिन शनैः शनैः इसमें कमी आ रही है। यह कमी प्राकृतिक एवं मानव जनित कारणों से हुआ है। इसको बचाने के लिए हमें अथक प्रयास करने होगें,जैसे- औषधीय पौधों की खेती करने के लिए व्यवसायिक फार्म लगाये जाये। वनों की उपयोगिता के प्रति आम जनता को जागरुक किया जाए। जो मानव जनसंख्या अभयारण्य के केन्द्रित क्षेत्र में निवास करती है, उन्हे दूसरे स्थानों पर विस्थापित किया जाए।

———

जल का अपव्यय, मरूस्थल को आमन्त्रण।
आप जल को बचाएं वह आपको बचाएगा।।

तमिलनाडु राज्य की मैन्ग्रूव वनस्पतियां

विनोद मैना
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, जोधपुर

'मैन्ग्रूव' शब्द की उत्पति ''मांगल'' शब्द से हुई है। सूरनाम में ''राहिजोफोरा'' नामक वृक्ष को मंगल या मेनग्रो कहते हैं। पुर्तगाली भाषा में भी मैन्ग्रूव को ''मैंगू'' नाम से पुकारते हैं। अर्थात मैन्ग्रूव ऐसे पौधों का एक समूह है, जो लवणता को सहन करने की क्षमता रखते हैं। विवीपेरी अंकुरण व न्यूमेटोफोर्स इनकी संरचना व स्वभाव के विशेष आकर्षण हैं। ये उष्णकटिबंधीय व उपउष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में तटाग्र, ज्वारीय, ज्वारनद, एवं ज्वार-नद मुखीय भागों में फैले रहते हैं। ये वनस्पतियां तेज लहरों, समुद्री ज्वार व तूफान से तटों के कटाव को रोककर स्थलीय व मैदानी वनस्पतियों के विनाश को रोकने में सहायक हैं।

तमिलनाडु राज्य का क्षेत्रफल 1,30,069 वर्ग कि.मी. है। भारतीय समुद्र तट 7500 कि.मी. लम्बा है। जिसमें तमिलनाडु तट की लम्बाई 990 कि.मी. है। रामेश्वरम व मन्नार की खाड़ी भी तमिलनाडु तटीय क्षेत्र का हिस्सा है। तमिलनाडु का पूर्वी तटवर्तीय क्षेत्र उत्तर में पुलिकेट झील से शुरू होकर दक्षिण में कन्या कुमारी के पश्चिमी तट पवार तक फैला है। जिसमें भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के अनुसार 350 वर्ग कि.मी. में मैग्रोव वन फैले हुये है। अध्ययन हेतु तमिलनाडु तट को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है- कोरोमण डल तट, कावेरी डेल्टा, ताम्रवर्णी डेल्टा, मन्नार की खाड़ी या द्विपीय वनस्पतियाँ एवं कन्या कुमारी तट।

कोरोमण्डल तट- उत्तर में चेन्नई के नजदीक पुलिकेट झील, पेरियार ज्वार नद मुख्य क्षेत्र है। इसका कुछ भाग पुदुचेरी संघशासित प्रदेश में आ जाता है। जिनमें कारियकल व पुदुचेरी मुख्य हैं। इन वायुशिफ (मैन्ग्रूव) वनों में *एबिसिनिया मरीना, राहिजोफोरा* प्रजाति तथा *एक्सोकेरिया अगालोचा* प्रमुख हैं। ये विविधता की दृष्टि से ज्यादा समृद्ध नहीं हैं।

कावेरी डेल्टा - यह लगभग 150 कि.मी. लम्बा फैला हुआ क्षेत्र है। इस क्षेत्र में पिच्चावरम् व मुत्थूपेट के सघन व समृद्धशाली मैन्ग्रूव वन सम्मलित है। तमिलनाडु में जैव विविधता के आधार पर यह क्षेत्र सबसे श्रेष्ठ मैन्ग्रूव वन क्षेत्र मिलते है। ये मैन्ग्रूव वन तमिलनाडु में अत्यधिक पर्यावरणीय व आर्थिक महत्व के हैं। यहां पर करीब 14 शुद्ध मैन्ग्रूव वनों की प्रजातियाँ पाई जाती हैं। कावेरी नदी पर कर्नाटक व तमिलनाडु में एनिकट व बाँध बना कर नदी के जल का सिंचाई व अन्य घरेलू उपयोग में लाने के कारण मीठे पानी का प्रचुर मात्रा में बहाव न होने तथा निरंतर गिरावट के कारण यह वन क्षेत्र संकुचित होता जा रहा है तथा पादप विविधता पर भी असर हुआ है। पिच्चावरम मैन्ग्रूव वनों का मुत्थूपेट मैन्ग्रूव वनों से तुलना करें तो यह अंतर स्पष्ट दिखेगा। मुत्थूपेट में *एबीसिनिया मरीना* प्रजाति ही प्रभावशाली प्रजाति है, अन्य प्रजातियाँ नाम मात्र रह गई हैं। समय रहते यदि इस विषय पर तमिलनाडु के साथ कर्नाटक राज्य की सरकार के सहयोग से कावेरी नदी में प्रचुर मात्रा में जल प्रवाह किया जाये तो यह इन वनों की रक्षा में एक महत्वपूर्ण कदम होगा। इन मैन्ग्रूव वनों में कोरोमण्डल क्षेत्र की सभी प्रजातियाँ पाई जाती हैं। *डलबरजिया स्पाइनोसा* प्रजाति का एक मात्र वृक्ष पिच्चावरम् में पाया जाना एक प्रमुख बात है और इसके संरक्षण पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

ताम्रवर्णी डेल्टा- ये मैन्ग्रूव वन टूटीकोरिन के नजदीक पलयकायल ताम्रवर्णी नदी के मुहाने व नदमुखीय क्षेत्र में फैले हैं। इन वनों में पादप विविधता कावेरी डेल्टा क्षेत्र से काफी कम है, लेकिन वन विभाग इनके विकास, संवर्धन व रोपण का कार्य बहुत ही सलीके से कर रहा है जिसमें काफी हद तक सफलता भी प्राप्त हुई है। पशुओं के चरने के कारण *प्रोसोपिस जूलिफ्लोरा* वृक्ष के प्रसार से मैन्ग्रूव वनों के विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है क्योंकि पशुओं के गोबर में *प्रोसोपिस* प्रजाति के बीज निकलते हैं जो कि वर्षाकाल में अंकुरित होकर मैन्ग्रूव वनों में फैलते जा रहे हैं, इस पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है। ।

मन्नार की खाड़ी-इस क्षेत्र में रामेश्वरम व मंडपम के अलावा 21 द्वीपों का समूह भी सम्मलित है। इनमें से सात द्वीपों में लोग निवास करते है। बाकी द्वीपों पर वन विभाग व नौ-सेना का पहरा है। इन द्वीपों में समुद्री शैवाल व मैन्ग्रूव वनों की ज्यादातर प्रजातियाँ पाई जाती है। तमिलनाडु में *सिरियोप्स तगल* मैन्ग्रूव पादप प्रजाति इन्हीं द्वीपों पर पाई जाती है। *पेम्पिस एसीडुला* व *स्कीवोला प्लूमेरी*

1. तमिलनाडु के तटीय क्षेत्रों मे मैन्ग्रूव वन 2. *साइज़ोफोरा एपिकुलेटा* में विविपेरी अंकुरण 3. *एबिसोनिया मैरिना* की न्यूमैटोफोर्स 4. मैन्ग्रूव वनो में चारागाह का दृश्य 5. मैन्ग्रूव वनक्षेत्र में *प्रोसोपिस ज्यूलिफ्लोरा* का अतिक्रमण 6. पिच्चावरम् क्षेत्र में मैन्ग्रूव वन रोपण कर संरक्षण का प्रयास

1. *ड्रोसेरा पेलटेटा* 2. *सैप्रिया हिमालयाना* 3. *जिरारडिनिया डाड्वर्सिफोलिया* 4. *नेपेन्थिस खासियाना* 5. *पेडेरिया फोटिडा* 6. *नीटम नेमोन*
7. *टेरीगोटा एलाटा* 8. *टेकसस वालिचियाना*

टेरीगोटा एलाटा (पगला गाछ)- यह स्टर्कुलिएसी कुल का लगभग 20-30 मी ऊँचाई वाला पर्णपाती वृक्ष है, जिसे आम बोलचाल की भाषा मे बुद्धा नारियल या पगला गाछ के नाम से जानते है। यह बिहार, पश्चिम बंगाल, असम अरुणाचल प्रदेश महाराष्ट्र दक्षिण भारत एवं अंडमान एवं निकोबार तथा बांग्लादेश, भूटान, नेपाल, म्यांमार तथा थाईलैंड में 700-2500 मी ऊँचाई के वर्षा वनों वाले क्षेत्रों पाया जाता है। इसकी सभी पत्तियां आकार में एक दूसरे से भिन्न, सरल, एकान्तर व सर्पिल क्रम में लगी होती है। पुष्प भूरे पीले रंग के जो पत्तियों के डंठल के नीचे लगे होते है। फल बडे (लगभग 12 सेमी व्यास वाले), गोल व सख्त होते है। इसके बीज नशीले प्रकृति के होते है, जिन्हे बंगलादेश में अफीम के प्रतिपूरक के रूप मे प्रयोग करते है।

पेडेरिया फोटिडा (गन्धबेल)-यह रूबीएसी कुल का पौधा है जिसे आमतौर पर गन्ध प्रसारणी, गन्धबेल या पादुरीलता के नाम से जानते है। इसकी पत्तियां तेल जनित गंधक योगिक (डाई मिथाइल डाई सल्फाइड) पाये जाने के कारण अति तीक्ष्ण असहनीय र्दुगंधयुकत होती है। भारत मे यह आन्ध्र प्रदेश, अरूणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालेंड, पश्चिमी बंगाल, अण्डमान निकोबार द्वीप तथा बंगलादेश, भूटान, कम्बोडिया, ताइवान, चीन, इण्डोनेशिया, जापान, मलेशिया, म्यांमार, नेपाल, सिंगापुर, कोरिया, थाईलैंड तथा वियतनाम में पाया जाता है। यह बहु-वर्षीय 5-7 मी लम्बी लता है जिसकी पत्तियां विपरीत क्रम मे लगी होती हैं। इसके फूल छोटे, हल्के गुलाबी रंग के तथा फल गोल, चमकीले, भूरे, द्विबीजयुक्त होते है। यह मार्च - जुलाई तक फूलता फलता है। यह दस्तावर तथा वीर्य वर्धक के रूप मे प्रयोग किया जाता है।

ड्रोसेरा पेलटेटा (सनडीव)- यह ड्रोसेरेसी कुल का बहु-वर्षीय, कन्दीय, कीटभक्षी पौधा है, जिसे आमतौर पर सनडीव के नाम से जानते है, यह अत्यधिक अम्लीय मिट्टी मे भी आसानी से उगता है। यह पूर्वोत्तर भारत दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों, न्यूजीलैंड व आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। यह एक कन्द वाली, बहु-वर्षीय काफी छोटे आकार की शाक है, इसकी पत्तियां गुलाबवत क्रम में व्यवस्थित तथा हरेक पत्ती एक पतला तथा अपेक्षाकृत लम्बा वृन्त धारित करती है। वृन्त का अगला भाग गोल फल का रूप धारण कर लेता है, जिस पर अनेक पिन की भांति लाल घुण्डी वाले तन्तु होते हैं। इनसे एक चिपचिपा सा पदार्थ निकलता रहता है, जो ओस की भांति चमकता रहता है। इसकी गंध से आकर्षित होकर जब कीड़े फलक पर बैठते हैं, तो चिपक जाते हैं तथा पास के तन्तु भी मुड़कर कीट के ऊपर आ जाते हैं। इस चिपचिपे द्रव्य में उपस्थित एंजाइम, कीट से नाइट्रोजन युक्त पदार्थो का पाचन करते हैं जो फलक द्वारा अवशोषित कर लिय जाते हैं। कुछ समय पश्चात् तन्तु पुन: सीधे हो जाते हैं और कीट का शेष भाग नीचे गिर जाता है। ये पौधे रक्त टॉनिक व वात विकारों के इलाज में लाभकारी हैं। भारत में यह स्वर्ण भस्म बनाने में भी प्रयोग किया जाता है।

सैप्रिया हिमालयाना- यह रेफलेसिऐसी कुल का दुर्लभ, क्लोरोफिल रहित, जड़ीय परजीवी पौधा है। ये मेजबान पौधे की जड़ों के जायलम व फ्लोयम ऊतकों से चिपके रहते हैं तथा पानी व पोषक तत्व शोषित करते हैं। यह पूर्वोत्तर भारत के अरूणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय तथा कम्बोडिया, चीन, म्यांमार, थाइलैंड और वियतनाम में 800-1450 मी. की ऊंचाई पर स्थित सदाबहार वनों में पाया जाता है। अभी हाल ही में इसे मिजोरम के तवी वन्य-जीव अभयारण्य से भी सूचित किया गया है। इसके फूल लगभग 20 से.मी. व्यास के 10 सहपत्र सहित, चमकीले लाल रंग तथा गंधक रंग की चित्ती वाले होते हैं। इसके फूल अगस्त से सितम्बर के मध्य तथा फल दिसम्बर से फरवरी तक आते हैं। इसके मुख्य मेजबान पौधे *वाइटिस* व *टेट्रास्टिग्मा* है ।

जिरारडिनिया डाइवर्सिफोलिया (बिच्छू घास)- यह आर्टिकेसी कुल का सदस्य है, जिसे आमतौर पर बिच्छु घास के नाम से जाना जाता है। इस जाति की पत्तियों के शरीर से छू जाने पर बिच्छु दंश के समान असहनीय पीड़ा होती है। इसकी पत्ती के डंक का जहर शांत करने के लिये *रूमेकस डेन्टेटस* की पत्तियों का रस बहुत ही कारगर साबित होता है, जो इसके समीप ही उगती है। यह पूर्वोत्तर भारत, नेपाल, श्रीलंका, दक्षिणी चीन, इण्डोनेशिया, थाईलैंड, यमन, अफ्रीका में 1000-2500 मी ऊंचाई पर स्थित सूखे व वर्षा वनों मे आमतौर पर नम जगहो पर नदियो के किनारे या खुले जंगलो मे पाये जाते है। इसको इसके 2-3 मी ऊंचे पौधे जिसकी पत्तियां एकान्तर क्रम में लगी, गहरी कटी तथा दांतेदार सिरे युक्त, बालों से ढकी होती है (बाल डंक के रूप में कार्य करते हैं) के द्वारा आसानी से पहचाना जा सकता है। इनका पुष्पन काल सितम्बर से नवम्बर तक है। इसके उपयोगी गुणों मे इस पौधे के तने की छाल से मजबूत, चिकने व हल्के रेशे प्राप्त होते हैं, जिससे मछली पकड़ने वाले जाल, बुनाई वाले थैले, जैकेट, माल ढुलाई के हेड बैण्ड व चटाईयां बनाई जाती हैं।

भारतवर्ष में वंश लिपारिस (आर्किडेसी)

सुशील कुमार सिंह एवं जीवन सिंह जलाल
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

अपनी विविध जलवायुवीय व विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों के कारण भारतवर्ष जैव विविधता से परिपूर्ण देश है तथा भिन्नताएं व विविधताएं जैव विविधता के हर परिप्रेक्ष्य में देखने को मिलती हैं। जहां तक पादप विविधता का संबंध है तो हमारा देश उन 17 वृहत जैव विविधता केंद्र वाले देशों में से एक है जहां की जैव विविधता सर्वोच्च है। यहां विभिन्न समूहों से संबंध रखने वाली लगभग 50000 पादप जातियां पायी जाती हैं जो कि देश के कोने-कोने में नाना प्रकार के आवासों में मिलती हैं, लेकिन हिमालयी क्षेत्रों में इन जातियों की बहुलता है। ये सभी जातियां विभिन्न वंशों व कुलों से संबंध रखती हैं। अगर हम भारत के पांच सर्वाधिक विविधता वाले कुलों की बात करें तो पाते हैं कि कुल आर्किडेसी 1200-1300 जातियों के साथ उनमें से एक है।

कुल आर्किडेसी के सदस्य अपने दीर्घ पुष्पन काल, विविध आकार के सुंदर आकर्षक पुष्पों के लिए विश्वविदित हैं। अपने इन्ही गुणों के कारण ये जनमानस को सहज ही अपनी ओर आकर्षित करते हैं और बागवानी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इस कुल की भारत में पायी जाने वाली सभी जातियां लगभग 184 वंशों से संबंधित हैं जिनमें डेंड्रोबियम, बल्बोफिलम, ओबेरोनिया, लिपारिस, सिंबीडियम आदि वंश प्रमुख हैं। इस लेख में इन्हीं वंशों में से एक लिपारिस वंश व उसकी भारत में पायी जाने वाली जातियों के बारे मे विवरण प्रस्तुत है।

वंश लिपारिस की खोज फ्रांसीसी शोधकर्ता प्रो. एल. सी. रिचर्ड ने सन 1817 में की थी। इस वंश का नामकरण ग्रीक भाषा के शब्द, "लिपेरास" जिसका हिन्दी में अर्थ है चमकीला जो कि इसकी चमकीली पत्तियों के लक्षण को इंगित करता है, के आधार पर किया गया है। इसे फाल्स त्वेब्लेड (False twayblade) के उपनाम से भी जाना जाता है। इस वंश की विश्व में लगभग 250 जातियां पायी जाती हैं जो कि मुख्यत: उष्णकटिबंधीय और शीतोष्ण क्षेत्रों मे मिलती हैं तथा ट्रापिकल एशिया में इनकी बहुलता है। ये जातियां अधिकांश रूप से अधिपादपीय व स्थलीय आवासों में पायी जाती हैं लेकिन कुछ दोनों अवस्थाओं में भी मिलती हैं। इस वंश के सदस्यों को इनके चपटे बेलनाकार कभी-कभी उर्ध्व अंडाकार आभासी कन्दों, जो कि एक भालाकार झिल्ली द्वारा ढंके होते हैं के द्वारा पहचाना जा सकता है। यह आभासी कंद तथा इन पर मिलने वाली झिल्लियाँ कुछ जातियों मे अदृश्य या अनुपस्थित होती हैं।

महत्वपूर्ण लक्षणों में चमकीली तन्तु युक्त, पतली, लंबी कभी-कभी भालाकार, मध्य नाडी युक्त, महत्वपूर्ण लक्षणों में चमकीली तन्तु युक्त, पतली, लंबी कभी-कभी भालाकार, मध्य नाडी युक्त, एकल अथवा जोड़ों में स्थित पत्तियां हैं। पुष्पक्रम आभासी कंद के आधार या शीर्ष पर आछादित रेसीम (raceme) होता है और ढेरों पुष्प धारण करता है। ये पुष्प छोटे-छोटे हरे, पीले, बैंगनी अथवा मटमैले रंग के होते हैं। मानसून का समय (जून-सितंबर) इनके पुष्पन के लिए अनुकूल है जिसमें अधिकतर जातियां पुष्पन करती हैं।

भारत में इस वंश की लगभग 49 जातियों व एक उपभेद की व्याप्ति है। सर्वाधिक लगभग 37 जातियां केवल पूर्वी हिमालय क्षेत्र (पूर्वोत्तर राज्यों सहित) में पायी जाती हैं। प्रायद्वीपीय भारत में 16 जाति तथा पश्चिमी हिमालय में 9 जातियां हैं वहीं दो जातियां *लिपारिस एट्रोसंगुइनिया* व *लिपारिस एलेगेंस* ऐसी हैं जो केवल अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में ही पायी जाती है (तालिका -1)। यहां पायी जाने वाली कुल जातियों मे से 17 जातियां: *लिपारिस एकूमिनाटा, लिपारिस असामिका, लिपारिस बेडोमे, लिपारिस बिलोबा, लिपारिस चुंथगेंसिस, लिपारिस डाल्जेली, लिपारिस डेलीकटुला, लिपारिस डोंगचिनाई, लिपारिस गैंबेलिआई, लिपारिस लीडिआई, लिपारिस प्लेटीफिला, लिपारिस रुपेस्ट्रिस, लिपारिस टाइगरहिलेन्सिस, लिपारिस टोर्टा, लिपारिस उदाई, लिपारिस वेस्टिटा, लिपारिस वलाकाडेन्सिस* भारत की स्थानिक हैं।

लिपारिस जातियों का उपयोग: वैसे तो इनके उपयोगों के बारे में ज्यादा जानकारी उपलब्ध नही है लेकिन अनेकों जातियां जैसे *लिपारिस बूटानेंसिस, लिपारिस नरवोसा, लिपारिस विरिडीफ्लोरा, लिपारिस बूटानेंसिस* आदि हैं जिनका उपयोग सजावटी पौधों के रूप में किया जा सकता है। शोधों से पता चला है कि *लिपारिस बूटानेंसिस* के पौधे यकृत संबंधी व्याधियों के इलाज में लाभकारी हैं।

भारत में वंश लिपारिस का वितरण

जाति का नाम	स्वभाव	पश्चिमी हिमालय	पूर्वी हिमालय	प्रायद्वीपीय भारत	अंडमान -निकोबार
लिपारिस एकूमिनाटा	अधिपादप	-	+	-	-
लिपारिस असामिका	अधिपादप	-	+	-	-
लिपारिस एट्रोसंगुइनिया	स्थलीय	-	-	-	+
लिपारिस एट्रोपरपुरिया	स्थलीय	-	-	+	-
लिपारिस बारबाटा	स्थलीय	-	+	-	-
लिपारिस बेडोमे	स्थलीय	-	-	+	-
लिपारिस बिलोबा	अधिपादप	-	-	+	-
लिपारिस बिस्ट्रियटा	अधिपादप	-	+	-	-
लिपारिस बूटानेन्सिस	अधिपादप	-	+	-	-
लिपारिस सीस्पिटोसा	अधिपादप	+	+	+	-
लिपारिस कंपाइलोस्टलिक्स	अधिपादप	-	+	-	-
लिपारिस कैथकरटाई	स्थलीय	-	+	-	-
लिपारिस चुंथंगेंसिस	अधिपादप एवं स्थलीय	-	+	-	-
लिपारिस कार्डिफोलिया	स्थलीय	+	+	-	-
लिपारिस डाल्जेली	स्थलीय	-	-	+	-
लिपारिस डेफेलेक्सा	स्थलीय	+	+	+	-
लिपारिस डेलीकटुला	अधिपादप	-	+	-	-
लिपारिस डिस्टेन्स	अधिपादप	-	+	-	-
लिपारिस डोंगचिनाई	अधिपादप	-	+	-	-
लिपारिस डाव्नाई	अधिपादप	-	-	+	-
लिपारिस डथियाई	अधिपादप	-	+	-	-
लिपारिस एलिगेंस	अधिपादप एवं स्थलीय	-	-	-	+
लिपारिस इलिप्टका	अधिपादप	-	+	+	-
लिपारिस गैंबेलिआई	अधिपादप	-	+	-	-
लिपारिस ग्लोसुला	स्थलीय	-	+	-	-
लिपारिस लुटियोला	अधिपादप	-	+	-	-
लिपारिस लीडिआई	अधिपादप	-	+	-	-
लिपारिस मानी	अधिपादप	-	+	-	-
लिपारिस नरवोसा	स्थलीय एवं अधिपादप	+	+	+	-
लिपारिस नरवोसा वर. *खासियाना*	स्थलीय	-	+	-	-
लिपारिस ओडोरेटा	स्थलीय	+	+	+	-
लिपारिस परपुसिला	अधिपादप	-	+	-	-
लिपारिस पेटियोलाटा	स्थलीय	-	+	-	-
लिपारिस प्लेण्टाजीनिया	अधिपादप	-	+	-	-
लिपारिस प्लेटीफिला	अधिपादप	-	-	+	-

1. *लिपारिस बिस्ट्रियटा* 2. *लिपारिस सीस्पिटोसा* 3. *लिपारिस कार्डिफोलिया* 4. *लिपारिस बूटानेन्सिस* 5. *लिपारिस सीस्पिटोसा* पुष्पक्रम
6. *लिपारिस डिस्टेन्स* 7. *लिपारिस इलिप्टका*

8. *लिपारिस लुटियोला* 9. *लिपारिस नरवोसा* 10. *लिपारिस प्लेण्टाजीनिया* 11. *लिपारिस स्ट्रिकलंडीयना* 12. *लिपारिस विरिडीफ्लोरा*

लिपारिस प्लेटीरैकिस	अधिपादप	+	+	-	-
लिपारिस पिग्मिया	स्थलीय	-	+	-	-
लिपारिस रेसूपिनाटा	अधिपादप	+	+	-	-
लिपारिस रॉस्ट्रटा	स्थलीय	+	-	-	-
लिपारिस रूपेस्ट्रिस	अधिपादप	-	+	-	-
लिपारिस सोमाई	अधिपादप	-	+	-	-
लिपारिस स्ट्रिकलंडीयना	अधिपादप	-	+	-	-
लिपारिस टाइगरहिलेंसिस	अधिपादप	-	+	-	-
लिपारिस टॉर्टा	अधिपादप	-	+	-	-
लिपारिस उदाई	स्थलीय	-	-	+	-
लिपारिस वेस्टिटा	अधिपादप	-	+	+	-
लिपारिस विरिडीफ्लोरा	अधिपादप	+	+	-	-
लिपारिस वलाकार्डेसिस	स्थलीय	-	-	+	-
लिपारिस वाकेरी	स्थलीय	-	-	+	-
लिपारिस वाइटियाना	स्थलीय	-	-	+	-
		9	37	16	2

वंश *लिपारिस* की जातियों पर संकट एवं संरक्षण : अनियंत्रित रूप से हो रहे वन संपदाओं के दोहन के कारण इनके प्राकृतिक आवास नष्ट हो रहे हैं जिसके कारण इस वंश की अनेकों जातियां संकटग्रस्त हो चली हैं। अनेकों विरल जातियों जैसे *लिपारिस एकूमिनाटा, लिपारिस असामिका, लिपारिस एट्रोसंगुइनिया, लिपारिस बारबाटा, लिपारिस बिलोबा, लिपारिस बूटानेन्सिस, लिपारिस कंपाइलोस्टलिक्स, लिपारिस डाल्जेली, लिपारिस एलिगेंस, लिपारिस रोस्ट्रटा, लिपारिस मानी, लिपारिस सोमाई, लिपारिस लीडिआई* आदि का संरक्षण आवश्यक है। इस वंश की जातियों पर मंडराते संकट को देखते हुए भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता एवं इसके क्षेत्रीय केन्द्र इनके संरक्षण के लिए कदम उठा रहे हैं और अपनी गतिविधियों में शामिल कर रहे हैं। इस संदर्भ में शिलांग स्थित पूर्वी क्षेत्रीय केंद्र द्वरा लगभग 16 जातियों का परास्थाने संरक्षण किया गया जिसमे से 10 जातियां अच्छी तरह से फलफूल रही हैं तथा अन्य को सुरक्षित करने के प्रयास किए जा रहे हैं।

———

वनस्पति वाणी अंक 22 : 35-37(2013)

माईकोराईजा - पादप समूह और कवकों के बीच एक पारस्परिक सहजीविता

रश्मि दुबे एवं **नीलिमा ए. मून्नांम्बेत**
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पुणे

शब्द माईकोराईजा कवक और पौधों की जड़ों के पारस्परिक संबध को दर्शाता है, क्योंकि यह संबंध सहजीवी है एवं दोनों जीवों के लिए लाभदायक है। कवकजाल (हाईफी) के विस्तार से वृहद-सहजीवी पौधों (माइक्रोसिम्बायोंट) के अधिशोषण में वृद्धि होती है, और उनमें पानी और पोषक तत्वों को ग्रहण करने की क्षमता बढ़ जाती है । इसके बदले कवकों को पौधों से शर्करा (कार्बोहाइड्रेट) प्राप्त होती है, जो कि उसके वृद्धि, विकास और शारीरिक कार्यो के लिये उपयोगी है। माईकोराईजा कवक मिट्टी के महत्वपूर्ण घटक होते हैं। एलबर्ट बर्नहार्ड फ्रान्क ने सन् 1885 में माईकोराईजा कवक की खोज की थी।

माईकोराईजा सहजीविता सबसे पहले *एग्लोफाईटन मेजर* के तनों में देखी गयी थी। ट्राप्पे 1977 के अनुसार लगभग 95 प्रतिशत कोष्ठकीय पौधों में यह सहजीविता पाई जाती है। पहले यह माना जाता था कि इस तरह की सहजीविता केवल वृक्षों तक ही सीमित है, लेकिन विस्तृत अध्ययन से यह पता चला है कि, फसलों की कई प्रजातियों में भी माईकोराईजल सहजीविता पाई जाती है। रेनर 1927, कैली 1950, हार्ले 1968, गर्ड्मान 1963, हक्सकेला 1971, मार्कस, कोजोलोविस्की 1973, बख्शी 1974, कुक 1977 एवं नारायण और भट्टाचार्य 1984 आदि ने माईकोराईजा पर गहन वर्णनात्मक अध्ययन किया है। माईकोराईजा को विस्तृत आकारकीय तथा संरचनात्मक अध्ययन के आधार पर तीन भागों में बांटा गया है।

1) बाह्य माईकोराइजा (एक्टोमाईकोराईजा)
2) अन्त: माईकोराइजा (एन्डोमाईकोराईजा)
3) अन्तबर्हि माईकोराइजा (ऐक्टोएन्डो माईकोराईजा)

1. बाह्य माईकोराइजा (एक्टोमाईकोराईजा)- इस प्रकार की सहजीविता में कवकों के कवक-जाल एक सुविकसित, सुगठित आच्छादन बनाकर पौधों की जडों अथवा उसके प्रकंद को पूरी तरह से ढक लेते हैं । इस आच्छादन से कुछ कवक-जाल निकलकर जड़ों की कोशिकाओं के बीच फैलकर उनकी वल्कुट तक पहुंच जाते हैं, परिणाम स्वरूप संक्रमित जड़ फुल जाती है तथा शाखित हो जाती है। इस आच्छादन को हार्टिग नोट कहते हैं, इसका नामकरण वैज्ञानिक हार्टिग के नाम पर आधारित है। कवकों जैसे *बोलाईट्स, कोर्टिनेरियस, रसूला, ट्राईकोलोमा, एन्टोलोमा, अमानीटा, केन्थ्रीलियस, गोमफीडियस, हेबलोमा, ईनोसाईब, पक्सिलस, राईजोपोगोन, स्कीलिरोडर्मा* और *सीनोकोकम* आदि बाह्य-माईकोराइजल सहजीविता में सहभागी होते हैं। पादप कुलों जैसे पाईनेसी, सालिकेसी, सीसलपीनोएडी और टीलिएसी के सदस्य इस तरह की सहजीविता में सहभागी होते हैं। कुछ वंश जैसे *पाइनस, पीसिया, सूडोस्टिगा, सीड्रस, लेरिक्स, क्वेरकस, कास्टेनीया बेटूला* आदि में एक्टो-माईकोराईजा संक्रमण पाया जाता है। एक्टो-माईकोराईजा सहजीविता बहुत ही विशिष्ट होती है, जैसे *लेसीनम* और *स्यूलस* किसी एक विशिष्ट पादप से ही सहजीविता निभाते हैं, किन्तु *अमानिटा* जैसे कवक बहुत सारे पादप समूह से सहजीविता रखते हैं। एक्टो-माईकोराईजा कवक की लगभग 20,000 - 25,000 प्रजातियां पायी जाती हैं। एक्टो माईकोराईजल बेसीडियोमाईसेटेस, लेसेरिया बाईकलर का अनुवांशिक अनुक्रम यह दर्शाता है कि, यह कवक जैव-पौष्टिकता तथा परोपजीवी दोनों तरह से अपना जीवन-यापन करता है और मिट्टी तथा जड़ों में वृद्धि करता है।

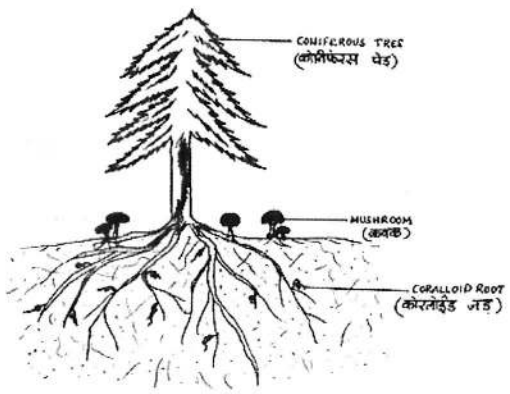

एक्टो माईकोराईजा कवक शंकुवृक्ष के बीच सहजीविता

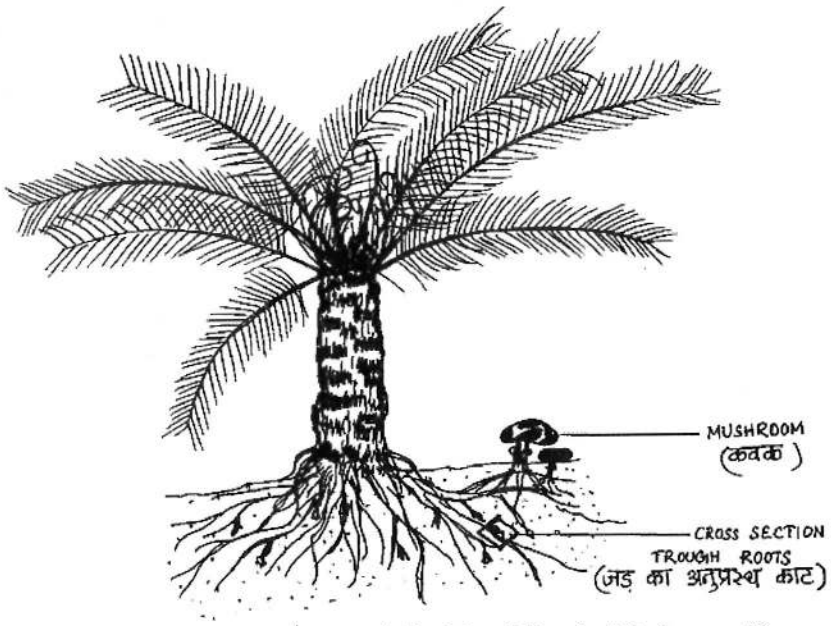

स्थूल कवक (macro fungi) और पेड़ की जड़ों में एक्टोमाईकोराईजल सहजीविता

वनों में बाह्य-माईकोराईजा कवक जड़, बाओमास में संरचनात्मक घटक के रूप में 25 प्रतिशत से अधिक अपना योगदान देता है। पिछले दशक में स्थूल (मैक्रो) कवकों का बड़े पैमाने पर अध्ययन हुआ है। हाल ही में वैज्ञानिकों ने पश्चिमी हिमालय के जंगलों में पाये जाने वाले एपिजीनस एक्टो माईकोराईजा कवक की विभिन्न प्रजातियों का वर्णन किया है जो शंकुधारी वृक्षों, *क्वार्कस ल्यूकोट्राईफोरा* और प्रभेद *फ्लोरीबुंडा , पाइनस रोक्सब्रघाइ, पाइनस वल्लीच्चियाना* और देवदार (*सिड्रस देवोदार*) से सहजीविता रखते हैं।

2. अन्त:माईकोराइजा (एन्डो माईकोराईजा)- नामानुसार इस तरह के माईकोराईजा जड़ों की कोशिकाओं को भेद कर उनके अन्दर स्थित होते हैं। यह दो प्रकार के होते है, पटयुक्त (सेप्टेट) तथा पटविहिन (असेप्टेट)।

पटयुक्त अन्त:- माईकोराइजल सहजीविता, बेसीडियोमाईसिटीज के कुछ सदस्यों जैसे राईजोक्टोनिया आदि में मिलती है। पादप समूह जैसे आर्किड, ईरीकेसी, जेनसीनिएसी, कोनिफरेसी आदि के कुछ सदस्य इस तरह की सह-जीविता में भाग लेते हैं।

आर्बिस्कुलर माईकोराईजा कवक या कोष्ठकीय आर्बिस्कुलर माईकोराईजा कवक में कवकजाल (हायफी) पटविहिन होता है। कवक के हाईफी जड़ों की कोशिकाओ के अंदर एक-कोष्ठकीय संरचना बनाते हैं, इसलिए इन्हें कोष्ठकीय आर्बिस्कुलर माईकोराईजा कवक कहते हैं । कई पादप समूहों के सदस्यों की वृद्धि या जीवन इसी तरह के माईकोराईजा पर निर्भर करता है। इनकी बाहुल्यता बीजपत्री (आवृत्तबीजी) पौधों में ज्यादा मिलती है। कुछ पादप समूहों जैसे ब्रायोफाईटा, पर्णांग (टेरीडोफाईटा) एवं अनावृत्तबीजी (जिम्नोस्पर्म) आदि की जड़ों में इसी तरह की सहजीविता पाई जाती है। कवकों की कुछ पारस्परिक सहजीविता बहुत सामान्य होती है और कुछ बहुत विशिष्ट , उदाहरण के लिए *राईझोक्टोनिया* अपने सहजीवी ऑर्किड से सामान्य सहजीविता रखता है जबकि *आर्मीलेरिया मेलिया* जापानीज ऑर्किड *गास्ट्रोडिया अलाटा* से विशिष्ट सहजीविता रखता है। नवीन शोधों के अनुसार अन्त:माईकोराईजा को आर्बिस्कुलर, ऐरिकोईड, ओर्बिट्वॉइड, मोनोट्रोपॉयड एवं ऑर्किड माईकोराईजा समूहों में वर्गीकृत किया गया है।

भारत में आर्बिस्कुलर माईकोराईजा कवक की विविधता- अभी तक कुल 102 आर्बिस्कुलर माईकोराईजल कवकों की प्रजातियां प्रतिवेदित हैं। अन्त:माईकोराइजा कवक की उपस्थिति भारत के प्राकृतिक जंगलों जैसे- पुरानी दिल्ली की पर्वत श्रेणी, हरियाणा की सरस्वती पर्वत श्रेणी, आंध्र प्रदेश के जंगली मिट्टी एवं समुद्री तट, नीलगिरी जंगल, तमिलनाडु के कोड्यार जंगल और

केरल में दर्ज की गयी है । इन कवकों की विविधता का अध्ययन तमिलनाडु के तट कोरोमंडल, सोमेश्वर के तटीय रेत टिब्बों, कर्नाटक के मंगलौर तट, गोवा के पश्चिमी घाट, पश्चिम तट के कोंकण क्षेत्रों से भी किया गया है। सेनगुप्ता और चौधरी ने पश्चिम बंगाल के गंगा के समुद्रीय डेल्टा पर पाए जाने वाले वायुशिफ (मैंग्रूव) *सुडा मारिटीमा* से जुड़ी आर्बिस्कुलर माईकोराईजा कवक का अध्ययन किया है। कोयला, लिग्नाइट एवं केल्साइट खान जैसे पारिस्थितिकीय क्षेत्रों में भी अन्त:-माईकोराइजा कवक पाए जाते हैं। इनके कुछ उदाहरण हैं, कोथागुदेम कोयले की खान, आंध्रप्रदेश की धातु प्रदूषित मिट्टी, तमिलनाडु पेट्रो-रासायनिक सिंचित खेत, औद्योगिक और मल से प्रदूषित खेत, तमिलनाडु के चमड़े के कारखाने की प्रदूषित मिट्टी और मध्य-प्रदेश की बैलाडिला लौह अयस्क स्थानों की मिट्टी आदि में भी अन्त:-माईकोराइजा कवक पाये जाते हैं ।

3. अन्त:बर्हि माईकोराइजा (ऐक्टो-ऐन्डोमाईकोराईजा) - इस तरह के माईकोराईजा में बाहरी (ऐक्टा) तथा आन्तरिक (एन्डो) माईकोराईजा दोनों के लक्षण पाये जाते हैं, अर्थात यह कवक पादप जड़ों या प्रकंद के ऊपर एक सुनिश्चित तथा सुगठित आच्छादन बनाता है और कवक का कवक-जाल पादप कोशिकाओं के बीच अन्तरकोशीकीय तथा कोशिकाओं के अन्दर अन्तरा-कोशीकीय रूप से प्रवेश करता है।

माईकोराईजल सहजीविता के उपयोग

1. अन्त: माईकोराइजा (एन्डोमाईकोराईजा)- ऐसे कवक खनिज पदार्थों जैसे कैल्शियम, आयरन, कॉपर, फास्फोरस आदि के अवशोषण में पादप जड़ों की सहायता करते हैं। अवशोषण की प्रक्रिया भौतिकीय तथा रासायनिक होती है। माईकोराईजा माईसीलिया का व्यास सबसे छोटी जड़ के व्यास से भी बहुत छोटा होता है। इसलिए वह भूमि का अधिकतम क्षेत्र घेर पौधों के लिए जल का अवशोषण सरल बना देता है।

2. रोग एवं सूखा प्रतिरोध - माईकोराईजल कवकों से युक्त पौधे म्लानी रोग और सूखा प्रतिरोधी होते हैं।

3. वनीकरण- माईकोराईजा कवक का वनीकरण में अमूल्य योगदान है। पौधों की सामान्य वृद्धि के लिए माईकोराईजा बहुत आवश्यक हैं। एक वैज्ञानिक अध्ययन के अनुसार चीड़ तथा स्प्रूस के सूक्ष्म पौधों में माईकोराईजा कवक के अभाव में नाईट्रोजन की कमी होने लगती है और वह मर जाते हैं। माईकोराईजा कवक की कमी पौधों के अनुक्रमण (प्लांट सक्सेसन) को भी बहुत प्रभावित करती है।

4. विषैलेपन के प्रति प्रतिरोधी क्षमता - ऐसे कवक अधिक अम्लीय दूषित मिट्टी से भी पौधों की रक्षा करते हैं। एक अध्ययन के अनुसार जब चीड़ के पेड़ों को *पाईसोलिटिस टिंक्टोरियस* (*Pisolithus tinctorius*) के साथ कृत्रिम रूप से संचरित (*इनोक्यूलेट*) किया गया तो दूषित मिट्टी में भी चीड़ के पेड़ों की वृद्धि तथा जीवन की क्षमता बढ़ती देखी गई । *स्युलस बोरिनस (Suillus borinus)* एक ऐसा जिंक प्रतिरोधी कवक है, जो कि *पाईनस सिलवस्ट्रिस* (*Pinus sylvestris*) की प्रतिरोध क्षमता में वृद्धि कर देता है। यह सब एक प्रक्रिया के तहत होता है, जिसमें धातु अयस्क कवक की बाहरी माईसीलियम से बंध जाते हैं जो लाभकारी पदार्थ के विनिमय को संतुलित रखती है।

———

जलीय पारितंत्र के आधार : शैवाल

प्रतिभा गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

जलीय पारितंत्र में समुद्र, झीलें तालाब, नदियां, नमभूमि आदि पारितंत्र आते हैं। ये पारितंत्र मनुष्य को बहुत सारे प्राकृतिक संसाधन देते हैं। प्रत्येक पारितंत्र में उत्पादक प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक एवं चरम उपभोक्ता सम्मिलित होते हैं। इन घटकों का संतुलन और इनका स्थायित्व ही पारितंत्र की दीर्घकालिता को बढ़ाता है। परन्तु मनुष्य द्वारा इन जल संसाधनों में रासायनिक एवं जैविक कचरों के निस्तारण से इनका प्राकृतिक संतुलन बिगड़ा है, इस संतुलन को बनाये रखने में शैवाल महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जलीय पारितंत्र में जलीय पौधे, जलीय प्राणी एवं उभयचर रहते हैं। जलीय पारितंत्र के जल की प्रकृति उसकी स्वच्छता, खारेपन ऑक्सिजन की मात्रा, प्रवाह की दर इसके भौतिक पक्ष में होती है। इसमें उपस्थित जल और पौधों की जातियाँ जलीय पारितंत्र के जैविक घटक का निर्माण करते हैं।

जलीय पारितंत्र को स्थिर और प्रवाहमान पारितंत्र में बांटा जा सकता है। जलीय पारितंत्रों की तलहटी के कीचड़ कंकड़ चट्टानी टुकड़े और मृदा की प्रकृति जैसे कारक इसकी विशेषताओं को परिवर्तित करते हैं ।

जलीय पारितंत्र को मृदुजल या अलवणीय जल, समुद्री जल या लवणीय जल में वर्गीकृत किया जा सकता है जो खारेपन के स्तर पर आधारित है। मृदुजल के जिन पारितंत्रों में जल प्रवाहमान होता है, जैसे-नदियां और नाले, तालाब, पोखर एवं झील स्थिर जल के पारितंत्र हैं। नमभूमि ऐसे पारितंत्र हैं, जिनमें विभिन्न मौसमों में जल के स्तर पर अप्रत्याशित बदलाव आते हैं। ये जलीय वनस्पतियों से भरे छिछले जल वाले क्षेत्र हैं। समुद्रीय पारितंत्र खारे होते हैं, किन्तु नदी के डेल्टा वाले क्षेत्र में खारेपन की मात्रा कम होती है। नदियों के डेल्टा के मटमैले जल वाले पारितंत्र में मैंग्रूव वन पाये जाते हैं, जो जैव-भार उत्पादन की दृष्टि से सबसे अधिक उत्पादक पारितंत्र का निर्माण करते हैं। मैंग्रूव का सबसे बड़ा दलदल गंगा नदी के डेल्टा क्षेत्र का सुंदरवन है। इन सभी पारितंत्रों में जैव-भार के दृष्टिकोण से शैवाल ही सबसे बड़े प्रारम्भिक उत्पादक हैं।

जलीय पारितंत्रों के प्रकार निम्नवत हैं-

तालाब पारितंत्र- ये पारितंत्र मुख्यत: ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक, अर्द्धनगरीय क्षेत्रों में अपेक्षाकृत कम एवं नगरीय भागों में सबसे कम पाये जाते हैं। प्राचीनकाल में भारत में लोग तालाबों-पोखरों के महत्व को जानते थे, जिसके फलत: ग्रामीण आबादी वाले क्षेत्रों के आस-पास बहुत सारे तालाब एवं पोखर देखे जा सकते थे। ये न केवल भूमिगत जल में वृद्धि के साथ-साथ क्षेत्र की जलीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे, अपितु इनके पारितंत्र से उस क्षेत्र की भौतिक एवं आर्थिक स्थिति भी संचालित होती थी। ऐसे तालाबों-पोखरों में उपस्थित शैवालों से निकलने वाली ऑक्सीजन आस-पास के क्षेत्र को शुद्ध बनाये रखती थी। इन शैवालों पर आश्रित खाद्य श्रृंखला के प्रारम्भिक, द्वितीयक, तृतीयक एवं चरम उपभोक्ता मनुष्य, स्थलीय जीवों एवं पक्षियों के भोजन के रूप में प्रयुक्त होते थे। मछलियाँ बेचकर आर्थिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति होती होती थी। तालाबों में उपस्थित शैवाल विशेषकर नील-हरित शैवाल सिंचाई के समय खेतों में पहुंचकर उनकी उपजाऊ क्षमता को और भी बढ़ाते थे। छोटे स्थाई तालाब या पोखर बड़े तालाबों की तुलना में भिन्न होते हैं। पोखरों में जल केवल वर्षाकाल एवं उसके बाद कुछ समय तक ही मिलता है, शेष समय इनमें स्थलीय पौधे उग आते हैं, जो पोषक तत्वों और नील-हरित शैवालों द्वारा संग्रहित नाइट्रोजन युक्त मृदा में अन्य स्थलीय पौधे सुन्दर, सघन एवं प्रचुर मात्रा में उगकर आस-पास के निवासियों एवं पशुओं के लिये खाने और चारे के रूप में उपलब्ध होते हैं। तालाब बड़े जल संग्रहण क्षेत्र हैं, जिनमें वर्षभर जल उपलब्ध रहता है। तालाब के जटिल पारितंत्र में शैवाल, जन्तु-प्लवक, पादप-प्लवक, प्रोटोजोन्स, डायनोफ्लेजिलेट्स कृस्टेशियन्स, मोलस्कन्स जैसे-घोंघे, सीप आदि, छोटी-बड़ी मछलियां, केंचुए, जोंक, मेंढ़क, जल पक्षी जैसे बतख,सारस, इत्यादि मिलकर कई खाद्य-श्रृंखलाओं का निर्माण करते हैं। इनके परिधीय क्षेत्रों में भिन्न प्रकार के उभयचर जन्तु एवं वनस्पतियां भी पायी जाती हैं। संपूर्ण तालाब के पारिस्थितिकीय तंत्र की आधार शिला शैवालों पर ही निर्भर है। तालाबों में सामान्यत: पाये जाने वाले शैवाल *माइक्रोसिस्टिस, मेरिस्मोपीडिया, यूलोथ्रिक्स, जिग्नीया* इत्यादि हैं।

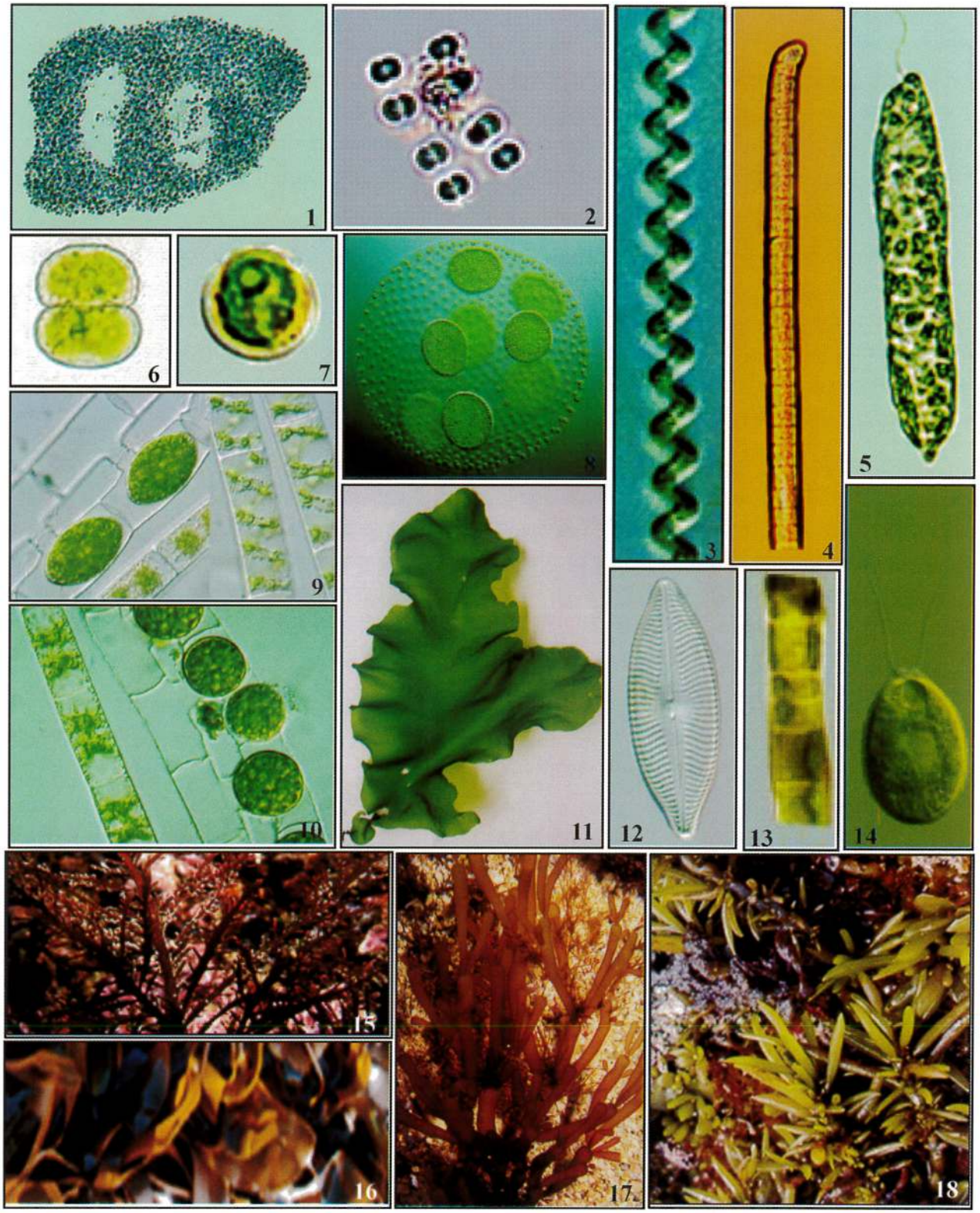

जलीय पारितंत्र के कुछ शैवाल- 1. *माइक्रोसिसटिस* 2. *मेरिस्मोपीडिया* 3. *स्पाइरूलिना* 4. *ओसिलेटोरिआ* 5. *युग्लीना* 6. *कॉसमेरियम* 7. *क्लोरेला* 8. *वोलवॉक्स* 9. *स्पायरोगायरा* 10. *जिगनिमा* 11. *अल्वा* 12. *नेवीकुला* 13. *यूलोथ्रिक्स* 14. *क्लेमाइडोमोनास* 15. *जेलीडियम* 16. *लोमिनेरिया* 17. *ग्रोसिलेरिया* एवं 18. *सरगासम*।

झील पारितंत्र - यह पारितंत्र एक विशाल स्थाई तालाब की भांति कार्य करता है। झीलों के छिछले होने के कारण उनकी तलहटी तक सूर्य का प्रकाश आसानी से पहुँच जाता है, अत: जल की सतह से लेकर तलहटी तक विभिन्न स्तरों में प्रकाश संश्लेषण संभव होता है। झीलों के पारिस्थितकीय तंत्र में अधिकतम् भाग शैवालों का ही होता है। झील के अधिकांश भाग में सूर्य का प्रकाश ऊर्जा के रूप में शैवालों में संग्रहित होकर सूक्ष्म जलीय जीवों द्वारा भोजन के रूप में उपलब्ध होता है। शैवालों द्वारा विमुक्त ऑक्सीजन झील पारितंत्र में ऑक्सीजन स्थानान्तरण को बनाये रखने एवं आस-पास के वातावरण की कार्बन-डाई-ऑक्साइड को अवशोषित कर पारितंत्र को शुद्ध रखने में महत्वपूर्ण योगदान देती है। झीलों में सामान्यत: पाये जाने वाले शैवालों में *यूग्लीना, कासेमेरियम, वॉल्वाक्स, क्लेमाइडोमोनास* इत्यादि हैं।

नदी-नालों का पारितंत्र- नदी-नाले बहते जल के महत्वपूर्ण पारितंत्र हैं। यहां के सभी जीवधारी, वनस्पतियाँ एवं जन्तु बहते जल के प्रवाह के अनुकूल ढले होते हैं। इसमें पाये जाने वाले शैवाल लम्बे, तंतुमय, आधार-लग्नीय होते हैं, जिससे वे जल के प्रवाह के साथ-साथ ऑक्सीजन और कार्बन-डाई-ऑक्साइड के संतुलन को भी बनाये रखते हैं। जिन नदियों में धीमी गति ये बहता जल होता है, उनमें नील-हरित शैवालें एवं पादप प्लवक भी पाये जाते हैं। ये सभी नदी की खाद्य श्रृंखलाओं को बनाये रखने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। नदियों का स्वच्छता स्तर एवं ऑक्सीजन स्तर उसमें पाये जाने वाली वनस्पतियों एवं जंतुओं के समुदायों पर भी निर्भर करता है। इस प्रकार के पारितंत्र में सामान्यत: *ओसिलेटोरिया, स्पाइरोगाइरा* इत्यादि पाये जाते हैं।

समुद्रीय पारितंत्र - हिंद महासागर, अरब सागर एवं बंगाल की खाड़ी भारत के समुद्रीय पारितंत्र हैं। तटीय क्षेत्रों में जहाँ समुद्र छिछला होता है और आगे जहां समुद्र गहरा होता है, वहां समुद्र के पारितंत्र में बहुत अन्तर होता है। समुद्रीय पारितंत्र में सूक्ष्म शैवालों से लेकर दीर्घ-शैवाल इसके मुख्य उत्पादक स्तर का निर्माण करते हैं, जिस पर समुद्र के असंख्य सूक्ष्म जीवों से लेकर व्हेल एवं शार्क जैसे महाकाय जीवों का जीवन निर्भर करता है। समुद्रीय पारितंत्र में असंख्य खाद्य श्रृंखलाओं एवं पारिस्थितकीय तंत्र का निर्माण होता है। इस पृथ्वी की लगभग 90 प्रतिशत ऑक्सीजन एवं सूर्य से प्राप्त ऊर्जा का अधिकतम अवशोषण इसी पारिस्थिकीय तंत्र में शैवालों द्वारा किया जाता है। इस प्रकार के पारितंत्र में सामान्यत: *अल्वा, सरगासम, जेलीडियम, ग्रेसिलेरिया, लेमिनेरिया, स्पाइरूलिना, क्लोरेलो, नेवीकुला* इत्यादि शैवाल पाये जाते हैं।

समस्त जलीय पारितंत्रों में शैवाल ही भोजन एवं ऑक्सीजन की एकमात्र आधारशिला होने के साथ ही अन्य कई रूपों में उपयोगी हैं। यह उस कामधेनु के समान हैं, जो पृथ्वी पर सबको उसकी आवश्यकताओं के अनुरूप कुछ न कुछ देने में सक्षम है। शैवालों के उपयोग असीमित हैं, हमें केवल सही ढंग से इनका उपयोग करना है। इसके लिसे आवश्यकता है, शैवालों के प्रति एक दूरदर्शी दृष्टि, गहन अध्ययन एवं अनुसंधान की ।

———

जन-जन से यह कहना है।
वृक्ष धरा का गहना है।।

मलेरिया के टीके के निर्माण में शैवालों का योगदान

प्रतिभा गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

आज शैवालों का प्रयोग मानव कल्याण के विभिन्न आयामों में किया जा रहा है, चाहे वह भोजन के रूप में हो या जैव ईंधन बनाने में, औषधियों के निर्माण में या मूल्यवान खनिजों को प्राप्त करने में। शैवालों का चिकित्सकीय उपयोग बहुत व्यापक रूप से हो रहा है। शैवाल जहाँ विटामिनों, खनिजों प्रोटिन, वसा कार्बोहाइड्रेट से परिपूर्ण सम्पूर्ण भोजन हैं, वहीं इनसे प्रतिशामक प्रति प्रदाह, क्षय रोग, कर्क रोग की दवाईयाँ भी प्राप्त की जा रही हैं। विश्व के कई अनुसंधान संस्थान आजकल शैवालों से टीका वैक्सिन बनाने के प्रयास में लगे हैं, इसी क्रम में मलेरिया के लिये वैक्सिन निर्माण भी सम्मिलित है। मलेरिया एक विश्व व्यापी रोग है, जो उष्ण कटिबन्धीय, सम उष्ण कटिबन्धीय, शीतोष्ण कटिबन्धीय भागों में विशेष रूप से फैलता है। प्रतिवर्ष लगभग 5 करोड़ लोग इस रोग से संक्रमित होते हैं और उनमें से लगभग 5 से 6 लाख लोग काल के गाल में समा जाते हैं। यह रोग मनुष्य और अन्य स्तनियों विशेष रूप से प्राइमेट्स- बंदर, चिम्पैंजी आदि का समूह और मांसाहारी- शेर, बिल्ली, भेड़िया आदि का समूह ।

मलेरिया का संक्रमण प्लाजमोडियम नामक प्रोटोजोआ से होता है। मनुष्य को संक्रमित करने वाले प्लाजमोडियम की मुख्य पांच जातियाँ हैं- 1. *प्लाजमोडियम वाइवेक्स,* 2. *प्लाजमोडियम फैल्सीपेरम,* 3 *प्लाजमोडियम मलेरी,* 4. *प्लाजमोडियम ओवेल* एवं दवा प्रतिरोधक *प्लाजमोडियम फैल्सीपेरम* ।

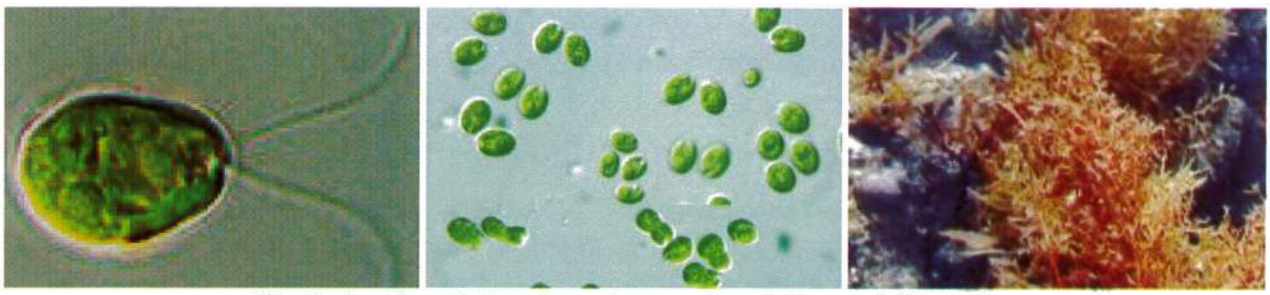

मलेरिया वैक्सीन (टीका) निर्माण एवं एनाफ्लीस मच्छर के लार्वा को नष्ट करने में प्रयुक्त शैवाल

प्लाजमोडियम एक द्विपोषी (डाइजिनेटिक) परजीवी है, जिसका जीवन चक्र दो पोषकों में पूर्ण होता है। इसका प्राथमिक पोषक मनुष्य या अन्य स्तनधारी/पक्षी व द्वितीयक पोषक मच्छर एनाफिलीस या क्यूलेक्स होता है। मच्छर से काटने पर संक्रमित मच्छर की लार के साथ प्लाजमोडियम की स्पोरोज्वाइड अवस्था जिसका आकार लगभग 12-15 x1.5 माइक्रॉन होता है, मनुष्य के रक्त में चला जाता है और रक्त प्रवाह के साथ यकृत में और फिर स्वस्थ लाल रक्त कणिकाओं में अपना जीवन-चक्र पूरा कर रोग उत्पन्न करता है। भारत में राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम चलाने व रोग उपचार में प्रतिवर्ष लगभग 250-300 रूपये व्यय होते हैं। इसके साथ-साथ रोग के कारण मानव संसाधन व मानव शक्ति भी प्रभावित होती है। जिसके कारण अपरोक्ष रूप से भी करोड़ों रूपये की धनराशि की हानि होती है। इसके साथ ही प्लाजमोडियम की एक जाति *प्लाजमोडियम फैल्सीपेरम* के दवा-प्रतिरोधी हो जाने के कारण इससे होने वाला मलेरिया अत्यन्त घातक हो गया है। इसलिये इसे रोकने के लिये वैक्सीन का निर्माण करना अत्यंत आवश्यक हो गया है। कई दशकों से बहुत से वैज्ञानिक मलेरिया के लिये सक्षम वैक्सीन बनाने के प्रयासों में लगे हैं। पिछले कुछ वर्षो में कुछ शैवालों से प्राप्त प्रोटीन का उपयोग इस दिशा में किया गया है। वैक्सीन निर्माण के लिये यह आवश्यक होता है कि, वैक्सीन में प्रयुक्त प्रतिजन या तो उसी संक्रमण की मृत या निष्क्रिय कोशिकायें हों या रचनात्मक व गुणात्मक रूप से पूर्णत: संक्रमण कर प्रोटीन के समान हो जिससे पोषक का शरीर बिल्कुल सटीक रूप से प्रभावी प्रतिरक्षी का निर्माण कर सके।

प्लाजमोडियम फैल्सीपेरम के अतिरिक्त अन्य जाति के प्लामोडियम से होने वाले मलेरिया, वैज्ञानिकों के लिये कोई समस्या नहीं हैं। प्लाजमोडियम फैल्सिपेरम की निष्क्रिय अथवा मृत कोशिकाओं से इसलिये प्रभावी वैक्सीन नहीं बन पा रही थी, क्योंकि यह मनुष्य के शरीर में विभिन्न अवस्थाओं जैसे बिजाणुज - संक्रमणकारी अवस्था, क्रिप्टोज्वाइड्स - यकृत में, क्रिपटोमीरो माइक्रोज्वाइड्स - रक्त कोशिकाओं में पायी जाती है। यह सभी अवस्थायें रचनात्मक एवं जैव-रासायनिक गुणों में अत्यधिक भिन्नता रखती हैं, अत: इन सभी भिन्न प्रकार की अवस्थाओं के लिये एक ही प्रकार की वैक्सीन सम्भव नहीं थी, इसके लिये संक्रमणकारी अवस्था स्पोरोज्वाइड्स को ही नष्ट करना एकमात्र उपाय था, किन्तु स्पोरोज्वाइड्स भी जैव रासायनिक रूप से मच्छर के शरीर व मनुष्य के शरीर में रहने के लिये अनुकूलित था। अत: सीधे इसकी प्रोटीन से भी सफल वैक्सीन नहीं बन पा रही थी। तभी वैज्ञानिकों का ध्यान प्लाज्मोडियम की रचनात्मक विशिष्टता पर गया।

इसके अनुवंशक्रम के अध्ययन से ज्ञात हुआ कि, इसका विकास आदिकाल में शैवाल से हुआ है। क्लेमाइडोमोनास और प्लाजमोडियम दोनों का ही विकास एक पक्षमाभियुक्त पूर्वज से हुआ है। इसमें एपिकोप्लास्ट नामक एक अंगक पाया जाता है, जो प्रारम्भिक शैवालों मे भी था। यह अंगक प्रकाश-संश्लेषण नहीं कर सकता, परन्तु प्लाजमोडियम की जैविक क्रियाओं के लिये अत्यन्त आवश्यक है और मलेरिया की सारी औषधियाँ इसी को नष्ट करती हैं, जिससे प्लाज्मोडियम नष्ट हो जाता है। *क्लेमाइडोमोनास रिनहार्डिटी* नामक शैवाल 10 माइक्रोमीटर वाली एक कोशिकीय द्विपक्षमाभि युक्त शैवाल के हरित लवक के जीन कूट द्वारा बनाये गये इस शैवाल से प्राप्त प्रोटीन जो *प्लाजमोडियम कैल्सीपेरम* की प्रोटीन से आकार, रचना और जैव रासायनिक गुणों में अधिक समान थी, का प्रयोग वैक्सीन निर्माण के प्रयास में किया गया। शैवाल की सहायता से जीन अभियांत्रकी द्वारा प्रोटीन पी.एफ.एस. 25 तथा पी.एफ. एस. 28 का निर्माण किया गया, जिसे प्रतिजन के रूप में चूहों में लगाया गया और उससे बने प्रतिरक्षी जो प्लाजमोडियम फैल्सीपेरम की सामान्य और औषधि प्रतिरोधी दोनो जातियां के विरूद्ध कार्य करके उनके जीवन-चक्र में व्यवधान उत्पन्न कर उन्हें नष्ट करता है। इसके पहले इस्केरेकिया कोलाई की सहायता से भी पीएफएस 25 और पीएफएस 28 बनाया गया था जिससे पीएफएस 25 प्रभावी ढंग से कार्य नही कर रहा था। जबकि पी.एफ.एस. 28 मनुष्यों में प्रत्यूर्जता (एलर्जी) उत्पन्न कर रहा था अत: उनका प्रयोग सुरक्षित नही था। साथ ही अन्य विधियों से बनायी जा रही वैक्सीन बहुत मंहगी और सामान्य जन के लिये सुलभ नहीं थी। अत: *क्लेमाइडोमोनास रिनहर्डिटी* से प्राप्त पी.एफ.एस. 25 एवं पी.एफ.एस. 28 प्रोटीन ने सस्ती जन सुलभ वैक्सीन बनाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

इसके अतिरिक्त लाल शैवाल *कैलोफाइकस सिरेटस* से एक छल्ले के आकार का रसायन ब्रोमोफाइकोलिडिस मिलता है जो लाल रक्त कणिकाओं में प्लाजमोडियम की व्यस्क अवस्था (ट्रोफोज्वाइट) के हीमोग्लोबिन के भक्षण के पश्चात् बने हीम के कण बनने से रोकता है। यदि हीम के कण नहीं बनते है तो ये ट्रोफोज्वाइट के लिये हानिकारक होते हैं और परजीवी नष्ट हो जाता है। यह रसायन औषधि प्रतिरोधी प्लाजमोडियम पर भी प्रभावी है। सारगासम स्वार्टजाई तथा कॉन्डिया डेसीफाइला नामक शैवाल एवं डाइनोफलेजिलेट में एनाफ्लीस मच्छर के लार्वा को मारने की अद्‌भुत क्षमता (95-98 प्रतिशत) पायी गयी। इस प्रकार यदि मच्छर नष्ट होंगे तो हमें किसी सीमा तक मलेरिया से छुटकारा मिल सकेगा।

शैवाल अपने आप में प्रकृति का वरदान हैं जो विभिन्न रूपों से मनुष्य की सहायता कर सकते हैं। इसे हम अनुपयोगी समझने के बजाय यदि इसके बहुआयामी उपयोगों का सम्पूर्ण लाभ उठायें तो ये शैवाल किसी भी तरह शिव से कम नहीं जो कार्बनडाइऑक्साइड रूपी गरल को पीकर हर प्रकार से हमारा, हमारी प्रकृति एवं इस पृथ्वी का उद्धार करने की क्षमता रखते हैं।

———

जल है तो कल है।

भारत की समुद्री दीर्घ शैवाल विविधता

एम. पलनिसामी, सुधीर कुमार यादव एवं जी. वी. एस. मूर्ति
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोयम्बटूर

भारत दक्षिण एशिया में स्थित एक उष्णकटिबंधीय देश है। इसकी लगभग 2 मिलियन वर्ग कि.मी. संगठित आर्थिक क्षेत्र (इक्सक्लुसिव इकोनोमिक जोन) और लगभग 7,500 कि.मी. लम्बी समुद्र तट है, जो कई बलुई एवं पथरीली समुद्र तटों, मुहानों एवं लैगून्स में विभाजित है। इनमें से भारतीय मुख्य भूमि के तट की कुल लम्बाई लगभग 6100 कि.मी. है।

हमारे देश की मुख्य भूमि पश्चिम में अरब सागर, पूरब में बंगाल की खाड़ी और दक्षिण में हिन्द महासागर से घिरी हुई है। इसके अलावा, अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूहों एवं लक्षद्वीप का समुद्री तट भी भारतीय समुद्री तट का एक अभिन्न अंग है। इन विशाल समुद्री तटों के पथरीले एवं कोरल आवास विभिन्न प्रकार के समुद्री पौधों जैसे समुद्री शैवाल, समुद्री घास एवं सदाबहार मैन्ग्रूव को एक बेहतर आवास प्रदान करते हैं।

भारतीय समुद्री तटों के प्रमुख भाग-

(1) पश्चिमी तट- यह अरब सागर का भाग है जो भारत के पश्चिमी तटीय राज्यों जैसे केरल, कर्नाटक, गोवा, महाराष्ट्र और गुजरात की तटीय सीमाओं को छूती है। इसकी वैश्विक स्थिति 8°15' - 22°22' उत्तर और 68°4' - 74°4' पूरब है। यह लगभग 3583 कि. मी. लंबी तथा 10-80 कि.मी. चौड़ी है।

(2) पूर्वी तट- यह मुख्यत: बंगाल की खाड़ी का भाग है, जो भारत के पूर्वी तटीय राज्यों जैसे तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल की तटीय सीमाओं को छूता है। इसकी वैश्विक स्थिति 8°- 22°13° उत्तरी अक्षांश और 77° 87°20' पूर्वी देशान्तर है। यह लगभग 3289 कि.मी. लंबी तथा 40-100 कि.मी. चौड़ी है।

भारतीय तट पर पाए जाने वाले समुद्री जैव विविधता संपन्न क्षेत्र- (1) मन्नार की खाड़ी (2) कच्छ की खाड़ी (3) बंगाल की खाड़ी के सुंदरवन (4) लक्षद्वीप समूह (5) अंडमान और निकोबार द्वीप समूह

मन्नार की खाड़ी - यह भारत के दक्षिण - पूर्वी तट पर स्थित कुल 21 द्वीप समूहों की एक श्रृंखला है जो विश्व मानचित्र पर 8°48' - 9°14' उत्तरी अक्षांश एवं 78°9' - 79°14' पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है। इनके अधिकांश द्वीपों पर मीठे पानी की अनुपलब्धता के कारण मानव का आवास नहीं हो पाया है। इसकी अधिकतम लम्बाई 160 कि.मी. और चौड़ाई लगभग 130 - 275 कि.मी. है।

मन्नार की खाड़ी जैव विविधता की दृष्टि से काफी सम्पन्न है एवं यहाँ लगभग 3,600 से भी अधिक प्रकार के समुद्री जीव एवं पेड़-पौधे पाए जाते हैं। यही कारण है कि, वर्ष 1986 में तमिलनाडु के तूतुकोडी एवं धनुषकोडी के बीच पाए जाने वाले सभी 21 छोटे द्वीपों को 'मन्नार की खाड़ी समुद्री राष्ट्रीय पार्क' घोषित कर दिया गया । इसी तरह वर्ष 1989 में इस पार्क (उद्यान) के 10 कि.मी. की परिधि के क्षेत्र को जैव मंडल क्षेत्र (बायोस्फेयर रिजर्व) घोषित कर दिया गया है।

कच्छ की खाड़ी- यह भारत के दक्षिण पश्चिम तट पर गुजरात राज्य में स्थित है। यहाँ लगभग 42 द्वीप हैं, जो जैव विविधताओं से भरा हुआ है। इसका क्षेत्रफल लगभग 7300 वर्ग कि.मी. है। यह अपने मुहाने पर लगभग 170 कि. मी. लम्बी एवं 75 कि.मी. चौड़ी है। जैव विविधता सम्पन्नता के कारण ही इसके 270 वर्ग कि. मी. क्षेत्रफल को वर्ष 1980 में समुद्री अभयारण्य (मरीन सेंक्चुरी) घोषित किया गया। यहाँ समुद्री शैवाल की 108 से भी अधिक जातियाँ पाई जाती है।

बंगाल की खाड़ी के सुन्दरवन- बंगाल की खाड़ी विश्व की सबसे बड़ी खाड़ी है, जो हिन्द महासागर के उत्तर पूर्वी क्षेत्र में स्थित लगभग एक त्रिभुजाकार रचना है। इसका क्षेत्रफल लगभग 2,172,000 वर्ग कि.मी. है। यह विश्व की 64 सबसे बड़ी समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र में से एक है। बंगाल की खाड़ी में स्थित सुंदरवन अपनी अद्वितीय जैव विविधता के लिए विश्व प्रसिद्ध है।

लक्षद्वीप समूह– यह देश का सबसे छोटा केंद्र शासित प्रदेश है, जो अरब सागर में 8°–12° उत्तरी और 71°– 74° पूर्व अक्षांश के बीच स्थित है। यहाँ कुल 36 द्वीपों, 12 एटोल्स, 3 प्रवाल भित्तियों (कोरल रीफ्स) और 5 जलमग्न तटें है। इसका कुल क्षेत्रफल 32 वर्ग कि.मी. है। यहाँ केवल 10 द्वीप समूह ही ऐसे है जहाँ मानव का निवास है। ये द्वीप समूह है- अगाती, अमीनी, अंद्रोत, बिट्रा, कादमत, कलपेनी, कावाराती, किलटन और मिनिकॉय।

अंडमान और निकोबार द्वीप समूह– यह बंगाल की खाड़ी में स्थित लगभग 572 द्वीपों का समूह है। इसकी वैश्विक स्थिति 6°45' - 13°41' उत्तरी और 92°12' - 93°57' पूर्वी अक्षांश के बीच है। इसका कुल क्षेत्रफल लगभग 8249 वर्ग कि.मी. है। अंडमान और निकोबार की कुल 572 द्वीपों में से सिर्फ 37 द्वीप ही ऐसे हैं, जहाँ मानव का निवास है। इनमें से 24 द्वीप अंडमान में और 13 द्वीप निकोबार में हैं। भौगोलिक दृष्टिकोण से यह मुख्यत: दो भागों में बंटा हुआ है।

(1) **अंडमान द्वीप समूह** – ये उन सभी द्वीपों का समूह है जो 10° उत्तरी अक्षांश के उत्तर में अवस्थित है। इसका कुल क्षेत्रफल लगभग 6408 वर्ग कि.मी. है।

(2) **निकोबार द्वीप समूह**– ये उन सभी द्वीपों का समूह है जो 10° दक्षिणी भाग में अवस्थित है। इसका कुल क्षेत्रफल लगभग 1841 वर्ग कि.मी. है।

भारतीय समुद्री तटों पर शैवाल विविधता– विश्व के कई अन्य समुद्री तटों की तरह भारतीय समुद्री तट भी जैव विविधताओं से संपन्न है। यहाँ लगभग 844 शैवाल जातियाँ पाई जाती है जो भारतीय पादप विविधता का एक महत्वपूर्ण भाग है। समुद्री पादप जातियों में मुख्यत: समुद्री शैवाल, समुद्री घास और मैंग्रुव्स सम्मिलित हैं। इनमें से शैवाल प्रमुख समुद्री पादप है।

समुद्री दीर्घ शैवाल, जिन्हें सी-वीड्स भी कहते हैं, मुख्यत: तीन भागों में विभाजित किए जाते हैं, हरा शैवाल (क्लोरोफाइटा), लाल शैवाल (रोडोफाइटा) एवं भूरा शैवाल (फियोफाइटा) ।

भारतीय समुद्री तटों पर पाए जाने वाले शैवालों की कुल लगभग 844 जातियाँ है, जो 217 वंशों में विभाजित है। इनमें से 136 वंश (62.67%) लाल शैवाल, 43 वंश (19.81%) हरा शैवाल, 37 वंश (17.05%) भूरा शैवाल एवं 1 (0.46%) हरा-पीला शैवाल (जेंथोफाइटा) हैं। इसी तरह, जाति स्तर पर पाए जाने वाले कुल शैवालों में 434 (51%) लाल शैवाल (रोडोफाइटा), 216 (26%) हरा शैवाल (क्लोरोफाइटा), 191 भूरा शैवाल (फियोफाइटा) (22.63%) एवं 3 (0.35%) हरा-पीला शैवाल (जेंथोफाइटा) समूह के हैं। (*संदर्भ*: ओझा, आर. एम. एट अल, 2001. *ए रिवाइज्ड चेकलिस्ट ऑफ इंडियन मरीन अल्गी*, सी एस एम सी आर आई, भावनगर)।

भारतीय समुद्री तटों पर सामान्य रूप से पाए जाने वाले कुछ प्रमुख समुद्री दीर्घ शैवाल निम्न हैं-

हरा शैवाल (क्लोरोफाइटा)- भारतीय समुद्री तटों पर पाए जाने वाले कुल 844 समुद्री दीर्घ शैवालों मे से कुल 216 जातियाँ हरे शैवाल समूह (क्लोरोफाइटा) से संबंधित हैं। इनमें से कुछ प्रमुख हरे समुद्री दीर्घ शैवाल जो सामान्य रूप से भारतीय समुद्री तटों एवं मुख्यत: तमिलनाडु, केरल तथा गुजरात के तटों पर पाए जाते हैं, वे निम्नलिखित हैं ।

शैवाल का वानस्पतिक नाम	**कुल**
अल्वा फेसिएटा	अल्वेसी
अल्वा लाक्टुका	अल्वेसी
अल्वा रेटिकुलाटा	अल्वेसी
अल्वा रिजिडा	अल्वेसी
इंटेरोमार्फा कम्प्रेसा	अल्वेसी
इंटेरोमार्फा प्रोलिफेरा	अल्वेसी
इंटेरोमार्फा फ्लेक्सुओसा	अल्वेसी
कीटोमार्फा एंटेनिना	क्लैडोफोरेसी
कीटोमार्फा क्रासा	क्लैडोफोरेसी

क्लैडोफोरा वागाबुंडा	क्लैडोफोरेसी
क्लाडोफोरोप्सिस जवानिका	बूडलीएसी
वालोनियोप्सिस पाकीनिमा	वालोनिएसी
ब्रायोप्सीस पेन्नाटा	ब्रायोप्सीडेसी
ब्रायोप्सीस प्लुमोसा	ब्रायोप्सीडेसी
कालार्पा पेल्टाटा	कालार्पेसी
कालार्पा रेसीमोसा	कालार्पेसी
कालार्पा टाक्सीफोलिया	कालार्पेसी
एक्रोसाइफोनिया ओरिएंटालिस	एक्रोसाइफोनिएसी

लाल शैवाल (रोडोफाइटा)– भारतीय तटों पर पाई जाने वाली इस प्रकार की संख्या कुल शैवालों की आधी संख्या से भी अधिक है। इसकी लगभग 434 जातियाँ पाई जाती हैं। इनमें से कुछ सामान्य रूप से पाई जाने वाली लाल शैवाल निम्न हैं ।

शैवाल का वानस्पतिक नाम	**कुल**
जेलिडियम माइक्रोप्टेरम	जेलिडिएसी
जेलिडियम पुसिलम	जेलिडिएसी
ग्रासिलेरिया कॉर्टीकाटा	ग्रासिलेरिएसी
ग्राटिलोपिया लिथोफीला	हैलीमेनिएसी
ग्राटिलोपिया फिलिसिना	हैलीमेनिएसी
ग्राटिलोपिया इंडिका	हैलीमेनिएसी
एम्फिरोआ एन्सेप्स	कोरलिनेसी
एम्फिरोआ फ्राजिलीसिमा	कोरलिनेसी
हिप्निया मस्किफोर्मिस	सिस्टोक्लोनिएसी
हिप्निया वेलेंसी	सिस्टोक्लोनिएसी
जेलिडियोप्सिस रेपेन्स	लोमंटरिएसी
जेलिडियोप्सिस वेरिएबिलिस	लोमंटरिएसी
सेन्ट्रोसेरस क्लावुलेटम	सेरामिएसी
सेरामियम क्रुसीएटम	सेरामिएसी
पॉलीसाइफोनिया प्लाटिकार्पा	रोडोमेलेसी
एकेंथोफोरा स्पेसिफेरा	रोडोमेलेसी
पोरफाइरा कन्याकुमारियेंसिस	बंगीएसी
एस्परागोप्सिस टैक्सीफोर्मिस	बोन्नेमेंसोनिएसी

भूरा शैवाल (फियोफाइटा)– इस शैवाल की अधिकतर जातियाँ समुद्री पानी में पायी जाती हैं। कुछ जातियाँ जैसे *प्ल्युरोक्लाडिया, बोडोनेल्ला* इत्यादि मुख्यत: मीठे पानी में होतीं हैं। भारतीय तटों पर इसकी लगभग 191 जातियाँ पाई जाती हैं, जो कुल शैवालों की संख्या का लगभग एक चौथाई है। इनमें से कुछ सामान्य रूप से पाए जाने वाले भूरे शैवाल निम्न है ।

शैवाल का वानस्पतिक नाम	**कुल**
एक्टोकार्पस सिलीकुलोसस	एक्टोकार्पेसी
डिक्टियोटा डाईकोटोमा	डिक्टियोटेसी
लोबोफोरा वेरिगेटा	डिक्टियोटेसी
पेडिना टेट्रास्ट्रोमेटिका	डिक्टियोटेसी

1. *ग्रासिलेरिया कॉर्टीकाटा*, 2. *एस्परागोप्सिस टैक्सीफोर्मिस*, 3. *ग्राटिलोपिया इंडिका*, 4. *हिप्निया मस्किफोर्मिस*, 5. *एकंथोफोरा स्पेसिफेरा*, 6. *लौरेंसिया पपिलोसा*, 7. *डिक्टियोटा डाईकोटोमा*, 8. *लोबोफोरा वेरिगेटा*, 9. *पेडिना जिम्नोस्पोरा*, 10. *हाइड्रोक्लाथ्रस क्लाथ्राटस*, 11. *कूनोस्पोरा बाईकनालीकुलाटा*, 12. *सर्गासम टेनेरीमम*

1. *अल्वा लाक्टुका*, 2. *कालार्पा पेल्टाटा*, 3. *बोर्गेसेनिया फोर्बेसी*, 4. *वालोनियोप्सिस पाकीनिमा*

पेडिना बोरेयाना	डिक्टियोटेसी
पेडिना जिम्नोस्पोरा	डिक्टियोटेसी
स्टोकोस्पर्मम मार्जिनेटम	डिक्टियोटेसी
रोसेंविन्गिया इंट्रीकाटा	स्काईटोसाईफोनेसी
सर्गासम सिनेरियम	सर्गासेसी
सर्गासम टेनेरीमम	सर्गासेसी
सर्गासम स्वर्टजी	सर्गासेसी
सर्गासम वाईटी	सर्गासेसी
सर्गासम पोलीसिस्टम	सर्गासेसी
सर्गासम इलिसीफोलियम	सर्गासेसी
टर्बीनेरिया ओर्नाटा	सर्गासेसी
कूनोस्पोरा बाईकनालीकुलाटा	कूनोस्पोरेसी

कुछ आर्थिक महत्व वाले समुद्री दीर्घ शैवाल– अन्य स्थलीय पौधो की भांति समुद्री दीर्घ शैवाल भी आर्थिक दृष्टिकोण से काफी लाभदायक है, अत: इन शैवालों के आर्थिक महत्व को हम निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं–

भोजन के रूप में– प्राचीन काल से ही समुद्री तटों पर बसे मानव अपने भोजन के लिए समुद्री दीर्घ शैवालों का उपयोग करते आये हैं। कई शैवाल विटामिन ए, सी, डी, ई एवं अन्य पोषक तत्वों के अच्छे स्रोत हैं। भोजन के रूप में प्रयोग किये जाने वाले प्रमुख समुद्री दीर्घ

पर्णांग *सालविनिया* आवश्यकता अनुसार, अपने जीवन चक्र को एकवर्षीय, द्विवर्षीय, या बहुवर्षीय कर सकता है, *सालविनिया* की इन्हीं क्षमताओं के कारण ही इसका विस्तार अत्यधिक तेजी से होता है। *सालविनिया* का मुख्य पौधा बीजाणुउद्भिद् और शाखित होता है। इसका पौधा प्रकन्द और पत्तियों में बंटा होता है, इसमें जड़ नहीं पायी जाती। परन्तु जड़ की तरह की संरचनायें अवश्य पायी जाती हैं, वास्तव में ये जड़ न होकर पत्तियां ही होती हैं।

इसका प्रकन्द जल की सतह पर तैरने में सहायक होता है। प्रकन्द पत्तियों से घिरा होता है, सामने से देखने पर हमें केवल पत्तियाँ ही दिखाई देती हैं। पत्तियाँ 3 के समूह में नोड से निकलतीं हैं। समूह के तीन पत्तियों में से 2 पत्तियाँ जल की सतह के ऊपर होती हैं और तीसरी पत्ती जल की सतह के नीचे होती है। यह जलमग्न पत्ती बाह्य आकार में बाकी दो पत्तियों से भिन्न होती है। जलमग्न पत्ती धागों के समान होती है। इन धागों में बहुसंख्यक, रोम पाये जाते हैं, ये रोम बहुकोशिकीय होते हैं। इनका मुख्य काम पानी और पोषक पदार्थों का अवशोषण करना होता है। जलमग्न पत्ती जल-संतुलन का काम भी करती है। 3 के समूह की बाकी दो पत्तियाँ जल के सतह के ऊपर पायी जाती हैं, इन्हें तैराक सहायक पत्तियाँ कहते हैं। ये पत्तियाँ हरी, अर्धचन्द्राकार होती हैं। इन पत्तियों की ऊपरी सतह पेपिलोज और रोम से भरी होती है, ये रोम पत्तियों को भीगने से बचाते हैं। नयी कलिकाओं की उत्पत्ति जलमग्न पत्ती और तैराक सहायक पत्ती के बीच में होती है।

तैराक सहायक पत्तियों की पर्णमध्योतक कोशिकाओं के बीच में रिक्तिका पायी जाती है। इन रिक्तिकाओं में वायु भरी होती है, जो कि पादप को जल की सतह पर तैरने में सहायता करती है। इस प्रकार के पर्णमध्योतक को लैकुनैट पर्णमध्योतक कहते हैं। प्रकन्द की बाह्य त्वचा पतली भित्ती वाली कोशिकाओं की बनी होती है। इसके ऊपर एक पतली उपचर्म की परत होती है। बाह्य त्वचा के नीचे बल्कुट की परत होती है। बल्कुट मृदूतक कोशिकाओं का बना होता है। इन कोशिकाओं के बीच में भी रिक्त स्थान होता है जिसमें वायु भरी होती है, इसका संवहन संपूल बर्हि:पोषवाही नालरम्भ होता है ।

***सालविनिया* का जीवन चक्र**- *सालविनिया* में जनन मुख्य रूप से दो प्रकार का होता है-

1. **कायिक जनन**- इस प्रकार के पर्णांगों में जनन मुख्यत: कायिक प्रवर्धन विधि द्वारा होता है, इस विधि में इसका प्रकन्द विलग्न परतों के कारण कई छोटे-छोटे भागों में टूट जाता है, ये भाग वृद्धि करके एक पूर्ण पादप का विकास करते हैं।

2. **लैंगिक जनन**- कायिक जनन के अलावा इसमें लैंगिक जनन भी पाया जाता है। यह एक विषम बीजाणुक पर्णांग होता है। इसमें दो तरह के बीजाणु पाये जाते हैं, आकार में बड़े बीजाणु को गुरूबीजाणु तथा आकार में छोटे बीजाणु को लघुबीजाणु कहते हैं। ये बीजाणु अलग-अलग बीजाणुधानियों में विकसित होते हैं। जिन्हें क्रमश: लघुबीजाणुधानी और गुरूबीजाणुधानी कहते हैं। ये बीजाणुधनियां अलग-अलग बीजाणु फलिकाओं में पायी जाती हैं। बीजाणु, फलिकायें, जलमग्न पत्तियों के आधार भाग में गुच्छों में निकलती है, अर्थात बीजाणु फलिकायें एक-संधित अक्ष के चारों ओर उत्पन्न होती है। सभी बीजाणु फलिकायें दिखने में एक समान होती हैं। लघुबीजाणुफलिकायें आकार में बड़ी और गुरूबीजाणुफलिका आकार में छोटी होती है। गुच्छों में जन्म लेने वाली पहली बीजाणु फलिका गुरूबीजाणुफलिका होती है। दोनों प्रकार की बीजाणुफलिकाओं के आधार भाग में वायु कोष्टक पाये जाते हैं।

गुरूबीजाणुधानी में 8 गुरूबीजाणु मातृ कोशिकायें पायी जाती हैं। जिससे 32 गुरूबीजाणु बनते हैं। परन्तु 32 गुरूबीजाणु में से 31 नष्ट हो जाते हैं, केवल एक ही गुरू बीजाणु पूर्ण विकसित होता है। लघुबीजाणुधानी में 16 लघुबीजाणु मातृ कोशिकायें होती हैं जिनसे 64 लघुबीजाणु बनते हैं।

गुरूबीजाणुधानी परिपक्व होने पर अंकुरित होकर प्रोथैलस का निर्माण करती है, जिसमें आगे चलकर स्त्रीधानी में एक अण्ड कोशिका बनती है, जिसे कशाभिक पुमणु निषेचित करता है। निषेचन के फलस्वरूप भ्रूण का निर्माण होता है, जो विकसित होकर वयस्क बीजाणुद्भिद् पादपकाय का निर्माण करता है।

पर्णांग *सालविनिया* के महत्व- *सालविनिया* के लाभदायक एवं हानिकारक दोनों प्रकार के महत्व होते हैं।

***सालविनिया* के हानिकारक प्रभाव-**

***सालविनिया* एक खरपतवार रूप में** - प्राय: पर्णांग *सालविनिया* को एक खरपतवार के रूप में जाना जाता है। क्योंकि *सालविनिया* की वृद्धि बहुत तेजी से होती है, इसकी तेज वृद्धि का मुख्य कारण इसका कायिक जनन है, यदि इसे अनुकूल वातावरण मिलता है, तो यह दो-तीन दिन में ही दोगुनी वृद्धि कर लेता है। इसका प्रकन्द 300 मिली. मी. तक वृद्धि कर सकता है। *सालविनिया* की प्रजातियों में से सबसे तेज वृद्धि करने वाली प्रजाति, *सालविनिया मोलेस्टा* है। यह प्रजाति गर्म क्षेत्रों में बहुत तेजी से वृद्धि करती है। स्थिर जल में इसकी वृद्धि, बहते पानी की तुलना में ज्यादा होती है इसकी सघनता 30000 पादप प्रति मीटर^2 तक हो सकती है। इसका जीवभार दो दिन में दोगुना हो सकता है। *सालविनिया* की तेज वृद्धि के कारण, यह जल की सतह के ऊपर एक परत बना देता है, जिससे अन्य जलीय जीव जन्तुओं के आवास क्षेत्र में कमी हो जाती है, जिससे इनकी मृत्यु भी होने लगती है। अत: जलकायों में कार्बनिक पदार्थो की अधिकता और जल की कमी होने लगती है, जिसे सुपोषण कहा जाता है।

स्वास्थ्य और सुरक्षा में जोखिम - *सालविनिया* की जड़ (जलमग्न पत्ती) बहुत ही सघन होती है, जो कि जीव जन्तुओं के पैरों में फंस सकती है, जिससे उनके डूबने का जोखिम होता है। इसके अलावा सालविनिया मानवों एवं पशुओं में रोग पैदा करने वाले वाहक (वेक्टर) और रोगाणुओं के लिये प्रजनन एवं आवास स्थल का काम करता है।

जलाशयों के जल स्तर में कमी - इसकी वाष्पोत्सर्जन की दर अत्यधिक होती है, जिसके कारण गर्मियों में वाष्पोत्सर्जन के कारण पानी की हानि ज्यादा होती है, जिससे जलाशयों के पानी के स्तर में कमी आ जाती है।

पानी की गुणवत्ता में कमी - अपनी तेज वृद्धि के कारण *सालविनिया* जल की सतह के ऊपर एक चटाई के रूप में एक मोटी परत बना लेता है। जिसके कारण सूर्य की किरणें जल की सतह के नीचे नहीं जा पाती और जलमग्न पादपों की मृत्यु होने लगती है। इन मृत्त जीवों के अपघटित होने के कारण जल में जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि हो जाती है। ये जीवाणु ऑक्सीजन का अत्यधिक उपयोग करते हैं, जिसके फलस्वरूप जैविक आक्सीजन की मांग बढ़ जाती है, जो इस बात का संकेत है कि जल प्रदूषित हो गया है।

वन्य-जीवों के निवास का विनाश - इस पर्णांग के कारण जलीय और अर्द्धजलीय जीव-जन्तुओं की गतिविधियों और उनके प्रजनन में बाधा उत्पन्न होती है, साथ ही साथ उनके आवास में भी कमी हो जाती है जिससे जीव-जन्तु और पादपों की मृत्यु होने लगती है। इस कारण *सालविनिया* मछली उद्योग को अत्याधिक प्रभावित करता है।

खरपतवार *सालविनिया* का नियंत्रण -

नियंत्रण की तीन प्रमुख विधियाँ है - 1. यांत्रिक नियंत्रण, 2. शाकनाशी नियंत्रण, 3. जैविक नियंत्रण

1. **यांत्रिक नियंत्रण**- यांत्रिक विधि में हम सालविनिया को नदी,नालों, तालाबों, झीलों तथा विभिन्न प्रकार के जलकायों से निकालने के लिये विभिन्न प्रकार की यांत्रिक उपकरणों का प्रयोग करते हैं। छोटे जल स्रोतों में सालविनिया को हाथों के द्वारा भी निकालते हैं। यांत्रिक नियंत्रण तब कारगर सिद्ध होता है, जब सालविनिया का संक्रमण छोटे स्तर पर होता है।

2. **शाकनाशी नियंत्रण**- शाकनाशी के द्वारा भी इस प्रकार के खरपतवार पर नियंत्रण किया जा सकता है। शाकनाशी का प्रयोग करते वक्त हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हम इसका प्रयोग कहाँ कर रहे हैं, और वहां का जलीय वातावरण कैसा है। सालविनिया के नियन्त्रण के लिये कुछ पंजीकृत शाकनाशी सल्फोनेट, डिक्याट, वाट्राल आदि हैं।

3. **जैविक नियंत्रण**- इस विधि में हम विभिन्न प्रकार के जीवों का प्रयोग करके सालविनिया की वृद्धि को नियंत्रित करते हैं, इस विधि में प्राय: विशेष प्रकार के कीट सालविनिया वेविल का प्रयोग करते हैं। इसका वैज्ञानिक नाम *क्रिटोबागोअस सालविनिया* है, *सालविनिया* का जैविक नियंत्रण करने में वाले कुछ अन्य जीव *क्रिटोबागोअस सिल्गुलरिस, पाइला ग्लोबोसा* आदि है

***सालविनिया* के उपयोग** - हम लोग *सालविनिया* को एक खरपतवार के रूप में ही जानते हैं, परन्तु आजकल *सालविनिया* एक उपयोगी पौधा भी बन गया है।

फाईटोरिमीडिएशन– *सालविनिया* फाईटोरिमीडिएशन के द्वारा दूषित जल में से हानिकारक तत्वों तथा यौगिकों को अवशोषित करके पानी की गुणवत्ता को बढ़ता है।

जल के शुद्धिकरण में: *सालविनिया* दूषित जल में से से उच्च भार वाले धातुओं को अवशोषित कर लेता है। उच्च भार वाले धातुओं को अवशोषित करने के लिये इसमें फाइटोचीलैटिन नामक विशेष प्रकार के यौगिक पाये जाते हैं।

सालविनिया की प्रजातियों में भारी धातुओं को दूर करने की क्षमता का विवरण निम्नलिखित है–

प्रजाति	**उच्च भार वाले धातु**
सालविनिया मिनिमा	As, Pd, cd, Cr
सालविनिया आरिकुलेटा	Hg
सालविनिया नेटेन्स	Ni, As Cu

किण्वक के उत्पादन में – विभिन्न प्रकार के किण्वक उत्पादन में *सालविनिया* का प्रयोग किया जाता है, जैसे सैलूलोज किण्वक के उत्पादन में इसका महत्वपूर्ण योगदान है।

जैव–इथनॉल उत्पादन में – *सालविनिया* के प्रयोग द्वारा कम खर्च में जैव इथनॉल का उत्पादन किया जा रहा है। सालविनिया के प्रयोग के द्वारा इसके उत्पादन में खर्च में 40% की कमी आयी है।

कागज उत्पादन में – कागज उत्पादन में प्राय: *सालविनिया मोलेस्टा* का उपयोग आजकल किया जा रहा है। *सालविनिया मोलेस्टा* के सूखे पौधों को चावल के भूसे के साथ उपयोग में लाते हैं। इस प्रकार से जिस कागज का निर्माण होता है, वह निम्न श्रेणी का होता है। इस निम्न श्रेणी कागज का प्रयोग हम लोग पैकेजिंग और अखबार में करते हैं।

अमीनो अम्ल के उत्पादन में – *सालविनिया* की वृद्धि बहुत तेजी से होती है, बायोटैक्नोलॉजी में इसके इस गुण का प्रयोग स्वतंत्र अमीनो अम्ल के उत्पादन में करते हैं।

सूक्ष्मजीव निवारक क्षमता – *सावलिनिया* में सूक्ष्मजीवनिवारक पदार्थ पाये जाते हैं जो कि गोजातीय जानवरों के स्तनों में सूजन पैदा करने वाले जीवाणुओं *स्टाफिलोकोकस आउरेअस, स्टाफिलोकोकस अगाटाक्टिस* को नष्ट कर देते हैं। ये सूक्ष्मजीवनिवारक पदार्थ पादप के अर्क में होता है जो कि मुख्यत: *सालविनिया ओरिकुलेटा* से निकाला जाता है।

सजावट के रूप में – सजावट के रूप में *सालविनिया* का प्रयोग मछलीघरों में किया जाता है, जिससे मछलीघरों की सुन्दरता में वृद्धि के साथ ही साथ मछलीघरों की आक्सीजन की आवश्यकता भी पूरी होती है।

जैव सूचक के रूप में – *सालविनिया* की कई जातियों को जैवसूचक के रूप में भी प्रयोग में लाते हैं जैसे *सालविनिया ओरिकुलेटा* को कैडमियम का जैव सूचक माना जाता है।

प्रतिआक्सीकारक के रूप में – *सालविनिया* की कुछ जातियों में प्रतिआक्सीकारक तत्व पाये जाते हैं । ये प्रति आक्सीकारक तत्व हमारे शरीर के लिये बहुत ही उपयोगी होते हैं । इनके द्वारा ही हमारी कोशिका में डी0एन0ए0 के पुन: निर्माण की क्षमता बनी रहती है। जिससे कोशिका की आयु में वृद्धि होती है।

जैव प्रदूषक कार्बन टेट्राक्लोराइड (CCl_4) से बचाव में– CCl_4 का प्रयोग औद्योगिक कारखानों में विलायक के रूप में किया जाता है। यह यकृत को हानि पहुंचाने वाला यौगिक है। *सालविनिया* में पाये जाने वाला यौगिक, नेटन्सनिन जो कि एक डाइबेंजोल ग्लाईकोसाइड होता है, CCl_4 के प्रभाव को निष्क्रिय कर देता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि *सालविनिया* केवल खरपतवार न रहकर एक उपयोगी पर्णांग भी बन गया है, अत: जिन क्षेत्रों में *सालविनिया* का पौधा खरपतवार के रुप में पाया जा रहा है, वहाँ इसका उपयोग उन्मूलक के रूप में कर सकते हैं।

———

नेफ्रोलेपिश - एक सदाबहार सजावटी पर्णांग

रमेश कुमार, बृजेश कुमार एवं **हरीश चन्द्र पाण्डे**
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

जैव विविधता का अर्थ जीवों में पाई जाने वाली विभिन्नताओं और उसके भौगोलिक वितरण से है। पादप विविधता में विकसित, अल्प-विकसित और अविकसित पादप शामिल हैं, विकास के बढ़ते क्रमानुसार इन्हें थेलोफाइटा, हरितोद्भिद, पर्णोद्भिद्, आवृतबीजी और अनावृतबीजी श्रेणियों में रखा गया है। हर समूह के पादपों की अपनी-अपनी महत्ता है, लेकिन जैव विविधता में पर्णोद्भिद् पादपों का महत्वपूर्ण योगदान है। ये पादप पारिस्थितिक तंत्र के अभिन्न घटक हैं। पर्णांगों के अन्तर्गत आने वाले पादप जड़, तना व पत्तियों में विभेदित होते हैं। इनमें फूल, फल व बीज का अभाव होता है, परन्तु वास्तविक संवहन पूल होते हैं, इसलिए इन्हें संवहनीय क्रिप्टोगेम भी कहते हैं, ये पादप विकास के क्रम में सबसे पहले संवहनीय एवं धरातलीय पादप हैं, इनके संवहन तंत्र में एघा (कैम्बीयम) का अभाव होता है अत: इनमें द्वितीयक वृद्धि नहीं पाई जाती है, इसलिए अधिकतर पर्णांग शाकीय होते हैं। (कुछ अपवादों जैसे *सायथिया, एन्जीयोप्टेरिस* आदि को छोड़कर)

पर्णांग के जीवनवृत में दो अवस्थायें पाई जाती हैं मुख्य पादप बीजाणुद्भिद् होता है, जो जड़ तना और पत्तियों में विभेदित रहता है, यह द्विगुणित और दीर्घ जीवन काल वाला होता है। बीजाणुओं को धारण करने वाली बीजाणुधानियां भी इसी मुख्य पादप में होती है। इन बीजाणु धानियों में अगुणित बीजाणु बनते हैं, जो आगे विकसित होकर पादप की दूसरी अवस्था युग्मकोद्भिद् बनाते हैं, जिसे प्रोथैलस कहते हैं। इसी युग्मकोद्भिद् अवस्था में जननांगों, पुंधानी और स्त्रीधानी का विकास होता है। पुंधानी से नर युग्मक तथा स्त्रीधानी से मादा युग्मकों का निर्माण होता है, जो कि अगुणित होते हैं। इन युग्मकों के संयोजन से द्विगुणित भ्रूण बनता है, जो आगे विकसित होकर बीजाणुद्भिद पादप बनाता है। भारत में पर्णांगों की सबसे अधिक विविधता हिमालय पर्वत श्रृंखलाओं एवं पश्चिमी तथा पूर्वी घाटों में है, क्योंकि ये नम एवं छायादार भूमि में उगते हैं। पर्णांगों में सरंचनात्मक विभिन्नता भी पाई जाती है, जिसके कारण इनमें आवासीय भिन्नता भी होती है। ये भूमि पर, पेड़ों पर, चट्टानों पर, दलदली भूमि में या पानी में भी हो सकते हैं। पर्णांगों के 13,600 जातियां विश्वभर में पायी जाती है, जिसे 90 कुलों एवं 318 वंशों में बांटा गया है। पर्णांग उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों से लेकर शीतोष्ण क्षेत्रों तक विस्तृत हैं। भारत की जैव विविधता में पर्णांगों के लगभग 34 कुलों तथा 144 वंशों व 1100 जातियों का योगदान है।

इन 34 कुलों में एक महत्वपूर्ण कुल है *नेफ्रोलेपडेसी*, इसमें *नेफ्रोलेपिश* वंश के अन्तर्गत आने वाली जातियों का औषधीय, खाद्य और सजावटी मूल्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। इन्हें सदाबहार सजावटी पर्णांगों के रूप में भी जाना जाता है।

नेफ्रोलेपिश वंश की स्थापना 'स्कॉट (Schott)' नामक वैज्ञानिक ने की थी तथा *नेफ्रोलेपिश* वंश का यह लेख 1834 में प्रकाशित हुआ था। *नेफ्रोलेपिश* एक यूनानी शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ है *नेफ्रोस* - वृक्क, *लेपिश* - पैमाना अर्थात वृक्क (Kidney) जैसा। इन पर्णांगों को वृक्क जैसा इसलिये कहते हैं क्योंकि इनकी बीजाणुधानी का आवरण वृक्कनुमा होता है। इस वंश के पादप शाकीय होते हैं तथा प्रकन्द, वृन्त तथा पत्रकों में विभेदित होता है।

विश्वभर में *नेफ्रोलेपिश* की लगभग 30 प्रजातियां पाई जाती हैं, लेकिन भारतवर्ष में केवल 7 प्रजातियां ही पाई जाती हैं (चन्द्रा, 2000), इन प्रजातियों का भारत में वितरण निम्नवत है -

नेफ्रोलेपिश ऑरिकुलेटा	-	उत्तराखण्ड
नेफ्रोलेपिश बाईसिरेटा	-	पश्चिमी हिमालय
नेफ्रोलेपिश रेडीकेन्स	-	उत्तराखण्ड, मणिपुर एवं असम
नेफ्रोलेपिश कोर्डीफोलिया	-	सम्पूर्ण भारतवर्ष में

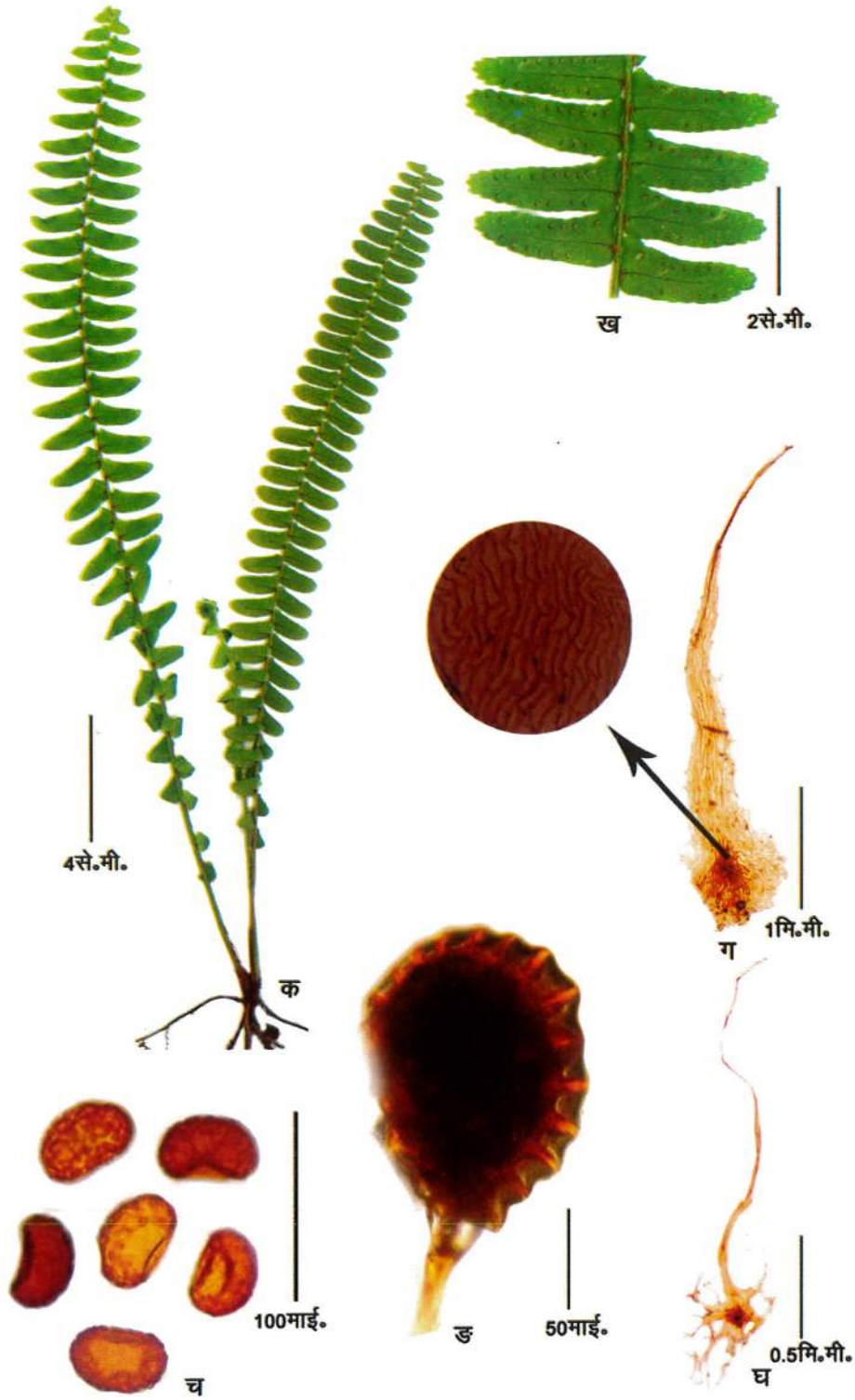

क–च *नेफ्रोलेपिश ऑरिकुलेटा* (लि.) ट्राईमेन : क सम्पूर्ण पादप; ख–बीजाणु धानी का फलक पर वितरण; ग–प्रकन्द शल्क; घ–वृन्त शल्क; ङ–बीजाणु धानी; च–बीजाणु ।

नेफ्रोलेपिश डिलिकेटुला - उत्तराखण्ड, असम एवं केरल
नेफ्रोलेपिश हिरसुटुला - उत्तराखण्ड, मध्यप्रदेश, मणिपुर लक्ष्यद्वीप, केरल एवं असम
नेफ्रोलेपिश मल्टीफ्लोरा - केरल, कर्नाटक एवं तमिलनाडु

आर्थिक महत्व - *नेफ्रोलेपिश* के अर्न्तगत आने वाली विभिन्न जातियों के आर्थिक औषधीय महत्व निम्नलिखित हैं ।

1. भोज्य पदार्थ के रूप में - *नेफ्रोलेपिश ऑरिकुलेटा* और *नेफ्रोलेपिश बाईसिरेटा* के प्रकन्दों पर कंदनुमा सरंचनायें पाई जाती हैं, जो कि मांसल होती हैं तथा कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, कैल्शियम और जल से भरपूर होती है, जिनको जनजातियाँ खाने और जंगलों में प्यास बुझाने का कार्य करती हैं। इस कंद को उबालकर और सुखाकर लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

नेफ्रोलेपिश बाईसिरेटा का प्रकन्द स्टार्च से भरपूर होता है, जिससे फ्रेडरिक हेनरिक नामक वैज्ञानिक ने आटा बनाया है जिसका प्रयोग भोज्य पदार्थ के रुप में होता है, तथा इसके प्रकन्द से सब्जियां भी बनाई जाती हैं।

2. सजावटी पादप के रूप में - *नेफ्रोलेपिश* की प्रजातियों को सजावटी पादप के रूप में काम लिया जाता है क्योंकि इस पादप की पत्तियां तलवारनुमा तथा आकर्षक तथा मनमोहक होती हैं। इस पादप को घर के बाहर व अन्दर दोनों तरफ गमलों में लगाया जा सकता है तथा इन्हें गमलों में लगाकर लटकाया भी जा सकता है। प्रकन्द पर स्थित कंदों में 85 प्रतिशत जल की मात्रा होती है जो संग्रहित रहती है तथा पानी की कमी होने पर इन कंदों से पानी की पूर्ति होती है, इस कारण ये पर्णांग हमेशा हरे-भरे रहते हैं, इसलिए इन्हें सदाबहार सजावटी पर्णांग कहते हैं।

3. औषधीय महत्व - *नेफ्रोलेपिश आरिकुलेटा* के सम्पूर्ण पादप रस त्वचा सम्बंधी अनेक रोगों में उपयोगी है। इस पादप के प्रकन्द के रस से रक्त परिसंचरण को नियमित तथा हृदय धड़कन को भी नियंत्रित किया जा सकता है एवं प्रकन्द के रस को अनेक मानसिक विकारों में काम लिया जाता है, जैसे यादाश्त बढ़ाने में। कंद के रस से पाचन संबंधी पेट विकार को कम किया जा सकता है। इसकी पत्तियों से जुकाम, बुखार तथा कफ को कम किया जा सकता है क्योंकि इसके रस में जीवाणु रोधक क्षमता होती है। रस को रक्तमेह (Hematuria) को ठीक करने में प्रयुक्त किया जाता है। पत्रकों को पीसकर घावों पर लगाया जाता है तथा इसके रस को पीलिया रोग के निदान में प्रयुक्त किया जाता है।

बहुत सी जनजातियों में महिलायें इसके प्रकन्द के रस को मासिक चक्र की अनियमितता को कम करने, पूर्ण बांझपन (Total Sterility) तथा गर्भ-निरोधक के रूप में काम लेती हैं। साथ ही गर्भवती महिलायें प्रकन्द के रस को प्रसव के समय होने वाली पीड़ा को कम करने के लिये भी लेती हैं।

नेफ्रोलेपिश कोर्डीफोलिया के प्रकन्द मूत्रवर्धक के रूप में उपयोगी है। इसका रस मूत्र में K^+ (पोटोशियम आयन) और सोडियम आयन (Na^+) की मात्रा को बढ़ा देता है, जिससे वृक्क की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। इसके सम्पूर्ण पादप का जलीय घोल जीवाणु रोधक व कवक रोधक होता है अर्थात इसमें जीवाणु व कवक नहीं पनपते। यह सजावटी पर्णांग होने के साथ साथ इसके अनेक औषधीय व खाद्य महत्व भी हैं इसलिए इसका समुचित संरक्षण भी जरूरी है। शहरीकरण और अत्यधिक औद्योगीकरण के कारण जंगल लगातार कट रहे हैं, जसके कारण इन पर्णांगों पर बुरा असर पड़ा है अत: उन जगहों पर औद्योगीकरण कम होना चाहिये जो पर्णांग बाहुल्य हैं।

यह पर्णांग औषधीय महत्व का होने से इसका अत्यधिक दोहन हुआ है, परन्तु संरक्षण कम होने के कारण ये दिनोंदिन कम होते जा रहे हैं, इसलिये उनका स्व-स्थाने (in-situ) एवं परास्थाने (ex-situ) दोनों प्रकार का संरक्षण जरूरी है। लोगों में इसकी महत्ता के बारे में जागरूकता अभियान चलाकर इसे संरक्षित किया जा सकता है।

हिमालय की धरोहर ब्रह्मकमल-एक संक्षिप्त परिचय

भावना जोशी, रसानन्द कर एवं **ए. ए. अंसारी**
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

भारत के राष्ट्रीय पुष्प कमल की तरह दिखने वाली एस्टरेसी कुल की एक जाति *साउसूरिया ओबोवैलेटा* जो कि उत्तराखण्ड राज्य का "राज्य पुष्प" है। इसे हिन्दी में ब्रह्मकमल, कौल, कनवाल; पंजाबी में वीम-कनवाल और संस्कृत में स्थल-पद्म कहा जाता है। यह हिमालय की अत्यधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में मिलता है। ब्रह्मकमल दो शब्दों ब्रह्म + कमल से मिलकर बना है।

साउसूरिया संसार के दूसरे सबसे बड़े पादप कुल एस्टरेसी का एक बहुत ही महत्वपूर्ण वंश है। इसका नाम एक स्विस दार्शनिक हारेस बेनेडिक्ट डे सौसर (1740-1799) के नाम पर रखा गया है। इसकी विश्व में 410 जातियाँ पायी जाती हैं, जो भारत के हिमालयी क्षेत्रों के साथ-साथ मध्य एशिया, यूरोप और उत्तरी अमेरिका के आर्कटिक क्षेत्रों में वितरित हैं। भारतवर्ष में इस वंश की 60 जातियाँ पायी जाती हैं, जिसे तालिका में प्रस्तुत किया गया है।

प्राकृतवास में ब्रह्मकमल (*साउसूरिया ओबोवैलेटा)*

तालिका :- भारतवर्ष में साउसूरिया की पाई जाने वाली जातियों का विवरण

वनस्पतिक नाम	प्रचलित नाम	उपयोग	वर्तमान स्थिति	प्राकृतवास	वितरण
साउसूरिया एबनार्मिस	-	-	दुर्लभ	भारत	भारत, तिब्बत, नेपाल
एस. एन्डरसोनाई	-	औषधीय	दुर्लभ	एशिया	भारत, तिब्बत
एस.एफिनिस	गंगामूला	औषधीय	–	हिमालयी क्षेत्र	चीन, जापान, आसाम
एस. अल्बीसेन्स	प्रिया	औषधीय	–	हिमालयी क्षेत्र	भारत, नेपाल, पाकिस्तान अफगानिस्तान
एस. एन्ड्रीयलेओइडिस	-	-	दुर्लभ	हिमालयी क्षेत्र	पश्चिमी हिमालय,पाकिस्तान
एस. एस्टर	-	-	दुर्लभ	तिब्बत	पश्चिमी हिमालय, चीन
एस. एटकिन्सोनाई	-	औषधीय	दुर्लभ	हिमालयी क्षेत्र	पश्चिमी हिमालय
एस. अरीकुलेटा	थीमरा	औषधीय	दुर्लभ	तिब्बत	भारत
एस. बोडीनीयेरी	-	-	–	भारत व चीन	भारत, नेपाल,चीन,भूटान
एस. ब्रैक्टीएटा	छोटा दोदा	औषधीय	दुर्लभ	हिमालयी क्षेत्र	भारत, चीन
एस. कैण्डोलियाना	-	-	दुर्लभ	हिमालयी क्षेत्र	भारत, भूटान
एस. सीरैटोकारपा	पशका	औषधीय	–	हिमालयी क्षेत्र	भारतीय हिमालय
एस. क्लाक्री	-	औषधीय	दुर्लभ	हिमालयी क्षेत्र	भारतीय हिमालय
एस. कोनिका	-	औषधीय	दुर्लभ	हिमालयी क्षेत्र	भारत, भूटान
एस. कास्टस	कुथ	औषधीय	अतिसंकटापन्न	हिमालयी क्षेत्र	भारत

एस. क्रिसपा	-	-	दुर्लभ	चीन	तिब्बत, नेपाल, म्यानमार, भूटान, थाईलैण्ड,वियतनाम,चीन
एस. डेल्टोईडिया	-	-	प्रचुर	हिमालयी क्षेत्र	भूटान, भारत, नेपाल, तिब्बत, चीन, पाकिस्तान
एस. डिप्सेनजेन्सिस	-	-	दुर्लभ	काराकोरम पर्वत	भारत, तिब्बत, चीन
एस. डानकाह	-	-	दुर्लभ	भारत, नेपाल	भूटान, भारत, चीन
एस. फैस्टुओसा	-	-	दुर्लभ	हिमालयी क्षेत्र	भारत, तिब्बत, चीन, म्यानमार
एस. फारेस्टाई	-	औषधीय	दुर्लभ	चीन	भारत, नेपाल, चीन
एस. गिलेसीआयी	-	-	दुर्लभ	अफगानिस्तान	भारत, अफगानिस्तान
एस. ग्लैबरेटा	-	-	दुर्लभ	साईबेरिया	भारत, साईबेरिया
एस. ग्लैसिएलिस	-	औषधीय	-	तुरकिस्तान	भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, कज़ाक्स्तान, तुरक्स्तान
एस. ग्लैन्डुलीजेरा	-	-	दुर्लभ	हिमालयी क्षेत्र	भारत, चीन, पाकिस्तान
एस. नैफलोडिस	युलियाग	औषधीय	-	हिमालयी क्षेत्र	भारत, तिब्बत, नेपाल, चीन, पाकिस्तान, अफगानिस्तान
एस. गासीपीफोरा	फीनीकँवल	औषधीय	अतिसंकटापन्न	हिमालयी क्षेत्र	भारत, तिब्बत, नेपाल, चीन, भूटान
एस. ग्रैमीनीफोलिया	गूग्गी	औषधीय	दुर्लभ	हिमालयी क्षेत्र	भारत, तिब्बत, नेपाल, भूटान
एस. हेटरोमेला	बतुला	औषधीय	प्रचुर	हिमालयी क्षेत्र	भारत, नेपाल, भूटान, पाकिस्तान, अफगानिस्तान
एस. हीरैसीआईडिस	-	-	-	हिमालयी क्षेत्र	भारत,नेपाल, तिब्बत, चीन, भूटान
एस. हूकेरी	-	-	दुर्लभ	हिमालयी क्षेत्र	भारत, तिब्बत, चीन, भूटान
एस. जैसीया	-	-	दुर्लभ	हिमालयी क्षेत्र	भारत, तिब्बत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान
एस. कैटोचीटी	-	-	दुर्लभ	चीन	भारत, तिब्बत, चीन, भूटान
एस. लानीआना	-	औषधीय	दुर्लभ	भारत	भारतीय हिमालय
एस. लियोन्टोडोन्टोआइड्सि	-	-	-	हिमालयी क्षेत्र	भारत, तिब्बत, नेपाल
एस. मेडूसा	-	औषधीय	दुर्लभ	चीन, मंगोलिया	भारत, तिब्बत, नेपाल, चीन, पाकिस्तान, मंगोलिया
एस. नेपालेन्सिस	नेपालसार्वट	-	दुर्लभ	नेपाल	भारत, तिब्बत, नेपाल, चीन, भूटान
एस. निमबोरम	-	-	-	भारत	भारत, तिब्बत, भूटान
एस. नीशियाओकी	-	-	दुर्लभ	भूटान,नेपाल	भारत, नेपाल, भूटान
एस. आब्सक्योरा	-	-	दुर्लभ	हिमालयी क्षेत्र	भारतीय हिमालय
एस. पैचीन्यूरा	-	-	दुर्लभ	चीन	भारत, नेपाल, भूटान, थाईलैण्ड, चीन, म्यानमार
एस. पैन्टिन्जियाना	-	-	दुर्लभ	भारत	भारतीय हिमालय
एस. पीपेटेथेरा	-	-	प्रचुर	हिमालयी क्षेत्र	भारत, नेपाल
एस. पालीस्टाईकोइण्डस	-	-	-	हिमालयी क्षेत्र	भारत, नेपाल
एस. रूफीनरविस	-	-	दुर्लभ	कोरिया	पश्चिमी हिमालय, कोरिया
एस. रायली	-	औषधीय	दुर्लभ	हिमालयी क्षेत्र	भारत, नेपाल
एस. सुल्टजाई	-	औषधीय	दुर्लभ	हिमालयी क्षेत्र	भारत, चीन, पाकिस्तान

एस. सिम्सोनियाना	जोगी बादशाह	औषधीय	संकटापन्न	हिमालयी क्षेत्र	भारत, तिब्बत, नेपाल, चीन, भूटान, पाकिस्तान
एस.स्टीला	-	औषधीय	दुर्लभ	चीन	भारत, तिब्बत, चीन, भूटान
एस. स्टोलिक्ज़की	-	-	दुर्लभ	हिमालयी क्षेत्र	भारत, तिब्बत, नेपाल, चीन, पाकिस्तान
एस. स्ट्रेचियाना	-	-	दुर्लभ	साईबेरिया	भारत, नेपाल, साईबेरिया
एस. सुबुलेटा	-	-	दुर्लभ	हिमालयी क्षेत्र	भारत, तिब्बत, चीन, पाकिस्तान
एस. सुधाँसुई	-	औषधीय	दुर्लभ	भारत	भारत
एस. सुगु	-	औषधीय	दुर्लभ	भारत	भारत, नेपाल
एस. थामसोनाई	-	-	दुर्लभ	हिमालयी क्षेत्र	भारत, तिब्बत, पाकिस्तान
एस. थोरोल्डाई	-	-	दुर्लभ	हिमालयी क्षेत्र	भारत, तिब्बत, चीन, पाकिस्तान
एस. ट्राइडकटायला	-	-	दुर्लभ	हिमालयी क्षेत्र	भारत, नेपाल, तिब्बत, भूटान
एस. यूनीफ्लोरा	-	-	दुर्लभ	हिमालयी क्षेत्र	भारत, नेपाल, भूटान,चीन
एस. वरनीरीलोइण्डस	-	-	दुर्लभ	हिमालयी क्षेत्र	भारत, तिब्बत, नेपाल, भूटान, चीन
एस. याकला	-	-	दुर्लभ	हिमालयी क्षेत्र	भारत, तिब्बत, नेपाल, भूटान

वितरण- यह हिमालयी मूल का पौधा है। भारत में यह सिक्किम, असम, कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, अरूणाचल प्रदेश व उत्तराखण्ड के साथ ही पाकिस्तान, तिब्बत, नेपाल, म्यांमार, भूटान, साइबेरिया, तुर्कीस्तान, जापान, अफगानिस्तान, वियतनाम, थाइलैण्ड तथा चीन में पाया जाता है। उत्तराखण्ड प्रदेश के उच्च हिमालयी क्षेत्र 3800- 4000 मीटर की ऊँचाई पर सहस्त्रताल, रूपागली, चमोली, टिहरी गढ़वाल, उत्तरकाशी, खतलिंग, केदारनाथ, बद्रीनाथ, वासुकीताल, हेथनी, गंगोत्री, तुंगनाथ, वसधुरा, हेमकुण्ड, आदि कई स्थानों पर इसका प्राकृतवास है।

निवास (प्राकृतवास)- यह अधिकांशत: घास के मैदान, नदियों के किनारों के पास की पहाड़ी ढ़लानों, नम चट्टानों तथा जंगलों में मिलता है।

वानस्पतिक वर्णन- यह 16-60 सें॰मी॰ लम्बा, बहुवर्षीय, सुगन्धित शाक है। इसका प्रकन्द भूरे रंग का तथा इसकी पूरी सतह रोमों से ढकी होती है। इसका तना 4-14 मि॰मी॰ व्यास का सीधा व अरोमिल होता है। तने के आधारीय भाग से निकलने वाली पत्तियाँ 7-20 सें॰मी॰ लम्बी, 3-6 सें॰मी॰ चौड़ी, सवृन्ती के साथ साथ रोमिल ग्रन्थियाँ भी पायी जाती हैं। पत्तियों के उपांत सूक्ष्म क्रुकची और शीर्ष कुठांग्र होता है। तने के पास से निकलने वाली पत्तियाँ अवृन्ती जो कि देखने में आधारीय पत्तियों की तरह होती हैं, ऊपर के भाग में छोटी हो जाती हैं। सबसे ऊपर वाली पत्तियों के पास मुण्डक पुष्पक्रम पाया जाता है। पुष्पक्रम शीर्ष पर अर्धगोल 6-15 सें॰मी॰ लम्बा तथा 1-1.5 सें॰मी॰ व्यास का, पीला, दीर्घवृन्तीय या लटवाकार-दीर्घयात, झिल्लीदार, रोमिल या ग्रंन्थिल रोम से युक्त जिसके किनारे सूक्ष्म क्रुकची और शीर्ष कुठाग्र होते हैं। ये रोम पौधे के अधिक ऊँचाई पर पाये जाने के कारण सूर्य से निकलने वाली पराबैंगनी किरणों एवं कम तापमाान को सहन करने में भी मदद करते हैं। फिलेरीज़ चार पंक्तियों में व्यवस्थित रहती हैं। इसके पुष्प बड़ी नौका के आकर के हल्के पीले रंग के पुष्पीय पत्तियों (ब्रैक्ट्स) से ढके रहते हैं। पेपस भूरे रंग का, बाहरी पंक्ति में व्यवस्थित, खुरदुरा, 5 मि॰मी॰ तथा आन्तरिक 1.2 मि॰मी॰ लम्बा होता है। पुष्पक नीले रंग का 1.8 सें॰मी॰ लम्बा तथा पीछे की नलिका 8 सें॰मी॰ सपालि होती है। फल एकीन 5 मि॰मी॰ का दीर्घायत होता है।

पुष्पकाल-अगस्त से सितम्बर तक साल में एक बार ही होता है। पुष्प की एक विशिष्टता है कि वे रात्रि में खिलते हैं तथा सुबह होने तक पूरे वातावरण को सुगंधमय बना देते हैं।

धार्मिक आस्थायें - कुछ पौराणिक कथाओं में भी ब्रह्मकमल के महत्व का विवरण मिलता है।

- रामायण कथा के अनुसार जब लक्ष्मण मूर्छित हो गए थे, तो संजीवनी बूटी ने उन्हें पुन: जीवन दान दिया था। इस पर देवगणों ने खुश हो कर ब्रह्मकमल के पुष्पों की वर्षा की थी, इसलिए इसे देव-कमल भी कहा जाता है, जो कि इस धरती पर पाया जाता है।
- एक और प्रचलित कथा के अनुसार, जब पाण्डव पाण्डुकेश्वर में ठहरे हुए थे, तो द्रौपदी ने अलकनंदा नदी में तैरते हुए कमल सदृश फूल को देखा और महाबली भीम को इसके अदृश्य होने से पहले लाने को कहा। द्रौपदी के कथानुसार भीम ने ब्रह्मकमल को एकत्रित करके द्रौपदी की इच्छा पूरी की। द्रौपदी ने इन पुष्पों से ब्रह्मा जी की आराधना की। उसी समय से यह पुष्प त्रिदेवों के पूजन में प्रयुक्त होता है। इसका वर्णन कुछ उत्तराखण्ड के लोक गीतों में इस प्रकार है -

"स्वर्ग उत्तराखंड भूमि,
ओ नयन फूल जैसो फूल ब्रह्म कमल"

अर्थात् ''उत्तराखण्ड की भूमि स्वर्ग की तरह है जिस पर एक अद्‌भुत अति सुंगन्धित पुष्प ब्रह्मकमल का निवास है।'' इसका गुणगान शास्त्रों में कुछ प्रकार लिखा गया है ।

" अजास्तनाम कन्दासु साक्षीरासुयसपिनी,
अजामहौषधी शंख कुन्देन्दु पण्डुरा "

स्थानीय लोगों से मिली जानकारी के अनुसार उत्तरांखण्ड में भगवान बद्रीविशाल की पूजा में ब्रह्मकमल के एक या दो पुष्प चढ़ाये जाते हैं। इसी प्रकार सितम्बर-अक्टूबर माह के दौरान नंदा अष्टमी के दिन इसके पुष्पों को माँ नंदा को अर्पण करते हैं फिर यही पुष्प प्रसाद के साथ बांटे जाते हैं।

औषधीय गुण-

- ब्रह्मकमल को सुखाकर कैंसर की दवा के रूप में उपयोग किया जाता है।
- इसकी पत्तियों को पानी में मिलाकर पीने से थकान दूर हो जाती है।
- पुरानी खाँसी काबू में हो जाती है।
- इसके पुष्पों को सुखाकर घी में तलने के बाद शरीर पर मलने से गठिया रोग दूर हो जाता है।
- भोटिया जनजाति के लोग गाँव में रोग व्याधि ना हो, इसलिए ब्रह्मकमल के पुष्पों को घर के दरवाज़ों पर लटका देते हैं।
- भोटिया जनजाति इसकी पत्तियों को सुखाकर, इसमें आधा चम्मच नमक के साथ पानी में घोलकर काढ़ा तैयार करते हैं। इस काढ़े की कुछ बूंदें कटे, घाव, फोड़े, फुन्सियों पर तीन दिन तक सुबह व शाम प्रयोग करने पर आराम मिल जाता है।
- इसकी जड़ या पत्तियों का 200 मि0ली0 काढ़ा तैयार करके इसमें देवदार के तेल की 2-3 बूंदें मिलाकर दिन में एक बार छ: माह तक छाती पर मलने से हृदय संबन्धित बीमारियाँ दूर हो जाती हैं। इसी मिश्रण को हड्डी के टूटने पर लगाने से दर्द में आराम मिलता है।
- इसके बीजों का चूर्ण बनाकर इसे पूरी रात पानी में भीगा रहने देते हैं। इस मिश्रण को छानकर लगातार एक महीने तक उपयोग करने पर दिमाग सम्बन्धी बीमारियों से निजात मिल जाती है।
- तिब्बत में यह "शान-हान-डीयू-गू" औषधीय के रूप में जानी जाती है, जो कि लकवा में उपयोग की जाती है।

अन्य व्यवहारिक महत्व -

- इसके फूलों को गर्म कपड़ों के साथ रखने पर यह कीड़े मकोड़ों से कपड़ों की सुरक्षा करते हैं।

- इसके फूलों को धूप बत्ती बनाने के साथ ही इनमें से आवश्यक तत्वों को निकालकर इत्र तथा सुगन्धित तेल बनाने में उपयोग किया जाता है।
- भारतीय डाक विभाग ने इस पुष्प के सम्मान में एक डाक टिकट भी जारी किया है।

वर्तमान स्थिति और भविष्य- विभिन्न संस्थानों के सर्वेक्षण के नतीजों से यह निष्कर्ष निकला है कि आज यह पौधा खतरे की कगार पर आ चुका है । इसके साथ ही वैज्ञानिकों ने इसके दुर्लभ श्रेणी में आने के कारण भी बताए हैं। जो निम्न प्रकार हैं -

- ग्लोबल वार्मिगं से पहाड़ों की बर्फ पिघलने के कारण इस पौधे की वृद्धि के लिए उचित वातावरण नहीं मिल पा रहा है जिसकी उसे आवश्यकता है ।
- लोग शोध के लिए पर्वतारोहण की कठोर यातनाओं से लड़कर भी इसको तोड़कर अपने साथ ले आते हैं। जिससे इसकी संख्या लगातार कम होती जा रही है।
- बहुत से धार्मिक और औषधीय कार्यो में उपयोग हेतु लोग लगातार इस पौधे को जड़ से उखाड़ रहे हैं ,जिस कारण से इसकी अगली संतति के लिए बीज उपलब्ध नहीं हो पाते।

इसके मूल स्थान से इस तरह लगातार शोषण ने आज इस पौधे को हिमालय की वादियों में दुर्लभ कर दिया है । इसी के सदंर्भ में जागरूकता लाने के लिए तथा खत्म होने से बचाने के लिए कई विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों, कुछ जनजातियां छोटे पैमाने पर, नंदा देवी जैव आरक्षित क्षेत्र (2000-3500 मीटर) और लाहौल घाटी के ठंडे रेगिस्तानों में खेती द्वारा संरक्षण के कार्य में लगे हुए हैं। ये लोग ऊतक संवर्धन, जर्मप्लाज्म संरक्षण तथा इसके बीजों की मद्द से इस प्राकृतिक अनमोल धरोहर को सुरक्षित रखने का हर संभव प्रयास कर रहे हैं। इसी तरह की पहल हिमाचल प्रदेश की किन्नौर जाति के लोग एक त्योहार के रूप में करते हैं, जिसे फूलायच या फूलों का त्यौहार कहते हैं यह लोक-महोत्सव तब मनाया जाता है जब इन फूलों की संख्या अधिक होती हैं। । इस त्योहार में लोग डागर (*साउसूरिया ओबोवैलेटा*) व लार्कस्पर (*डेलफिनियम वेस्टीटम*) को अपने पूर्वजों की पूजा में उपयोग करते हैं। इसमें काण्डा गाँव के सभी लोग अगस्त माह में एकत्रित होते हैं। फूलायच त्योहार से पहले कोई भी फूलों को तोड़ता है तो उसे घोर दण्ड दिया जाता है। वे वर्ष भर ब्रह्मकमलों को फलने फूलने देते हैं इस तरह अपने पूर्वजों के आस्था के प्रतीक को धरती से विलुप्त होने से रक्षा भी करते हैं।

केरियोटा यूरेंस - टॉडी पाम

पापिया रॉय चौधरी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

ताड़ अर्थात पाम के अनेक वंशों में एक बहुत छोटा वंश है केरियोटा। इस वंश की लगभग 15 जातियां भारत, म्यांमार, श्रीलंका, मलेशिया, उत्तरी आस्ट्रेलिया में उगतीं हैं। भारत में *केरियोटा यूरेंस* के वृक्ष पूर्वी एवं पश्चिमी घाटों के नम वन क्षेत्रों तथा छोटा नागपुर, ओडिशा, उत्तरी बंगाल एवं असम में पाये जाते हैं। *केरियोटा यूरेंस* का अर्थ इसके फलों में पाये जाने वाले तीखे रसायन की प्राप्ति पर आधारित है।इसे कई नामों से जाना जाता है जैसे- फिशटेल पाम, जैगरी पाम, वाइन पाम, सैगो पाम आदि। ऐरेकेसी कुल के इन वृक्षों में मात्र एक बार ही पुष्पन होता है, जो चिर स्थाई प्रकृति का होता है। वृक्ष के शिखर पर आने वाले पहले पुष्पक्रम 2-2.5 मी. लम्बे होते हैं। एक वृक्ष पर पूर्ण पुष्पन के पश्चात् पुष्पक्रम का आकार घोड़े की पूंछ के जैसा हो जाता है। 3-3.5 मी. लम्बे, गाढ़े हरे रंग के पत्तों के साथ उजले फूलों के गुच्छे मनोहारी होते हैं, जिनमें 3-3 बाह्यदल तथा 3-3 पंखुड़ियाँ होती हैं। ऊपर से नीचे तक फूल-फल लगने की अवधि लम्बी होती है। वस्तुत: केरियोटा में फूल- फल का लगना इनके अन्त का सूचक होता है एवं इस प्रकार के वृक्षों को 'मोनोकार्पिक' कहा जाता है। *केरियोटा यूरेंस* का वृक्ष जैसे-जैसे बड़ा होता है, पुराने पत्ते गिर जाते हैं । गिरने वाले पत्ते तने पर एक वलयाकृति छोड़ जाते हैं।

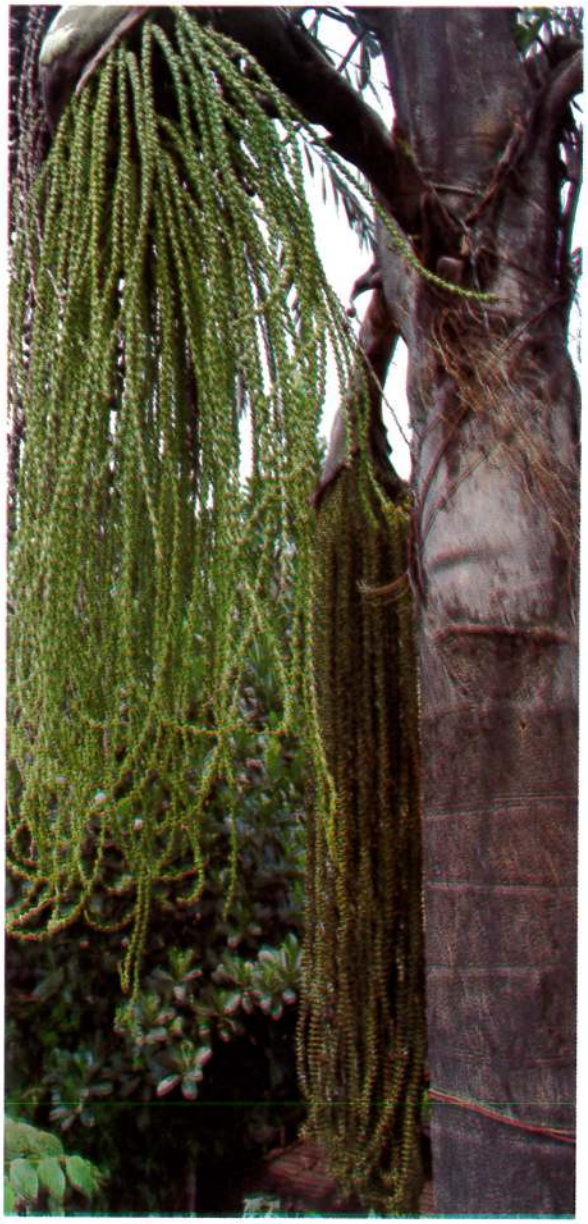

केरियोटा यूरेंस का वृक्ष एवं पुष्पक्रम

उपयोग- श्रीलंका एवं भारत के तटवर्ती ग्रामीण भागों में यह चीनी एवं गुड़ का विकल्प है। फूलों से निचोड़े गये सुगंधित-स्वादिष्ट रस से विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ बनाये जाते हैं, पेय के रूप में 'टॉडी' बहुत पसंद किया जाता है। फूलों से बनाये गये दलिया का स्थानीय चिकित्सक औषधि के रूप में उपयोग करते हैं। *केरियोटा यूरेंश* के तने एवं पत्तियों से प्राप्त रेशों का उपयोग रस्से, झाड़ू, ब्रश, टोकरी, मछली पकड़ने का जाल आदि के निर्माण में किया जाता है। कई स्थानों पर लोग भवन निर्माण के अति साधारण कामों में इसके काष्ठ का भी प्रयोग करते हैं। द्विपिच्छकी पत्तों के कारण ये मनोरम होते हैं।

छोटे-बड़े उद्यानों में भी केरियोटा के वृक्षों को सजावट के लिये लगाया जाता है। दक्षिण भारत के लोकप्रिय पर्व 'पोंगल' में इसका उपयोग सजावट के लिये किया जाता है। इस प्रकार अब तक अनुपयोगी समझे जाने वाला केरियोटा वृक्ष हमारे दैनिक जीवन के विभिन्न कार्यों में प्रयुक्त किया जाने लगा है।

———

गिलोय

आर. सी. श्रीवास्तव, सुबीर सेन एवं **भोलानाथ घोष**
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

गिलोय एक अत्यन्त महत्वपूर्ण औषधीय पौधा है। यह एक आरोही वनस्पति है, जो विभिन्न पौधे पर आरोहित अवस्था में पाई जाती है। नीम के पेड़ पर लिपटी गिलोय आयुर्वेद में अधिक प्रभावी मानी जाती है। इसकी पत्ती हृदयाकार होती है तथा फूल हरापन लिए सफेद होते हैं। गिलोय के पके फल चमकते लाल रंग के होते हैं,जो डालियों पर गुच्छों में लटकते हैं। इसकी शाखाएं हरापन लिए सफेद तथा खुरदरी होती हैं। गिलोय का वैज्ञानिक नाम *टिनोस्पोरा कार्डीफोलिया* है। यह पादप-कुल *मेनिस्पर्मेसी* का सदस्य है।

गिलोय की आरोही लता

आयुर्वेद में गिलोय को शीतलक माना जाता है। इसका उपयोग करने से पुरानी खांसी, पुराना बुखार, पित्त-विकार, अर्श तथा औरतों के हाथों, पैर के तलवों की जलन आदि में बहुत लाभ होता है। पुरानी खांसी, विषम ज्वर रोग के पश्चात कमजोरी लगना, मियादी बुखार आदि रोगों में गिलोय के साथ अन्य पादप औषधियां मिलाकर सेवन करने से शीघ्र ही रोग का निदान होता है।

मूत्र-विकार में गिलोय सत्व को बंग भस्म तथा ताजे आंवले के रस अथवा कच्ची हल्दी के रस के साथ सेवन किया जाता है।

हथेली एवं पैरों के तलवे की जलन में गिलोय सत्व के साथ सितोपलादि चूर्ण, प्रवाल पिष्ठी मिलाकर चंदन के शरबत या मक्खन-मिश्री के साथ सेवन किया जाता है। मियादी बुखार में भी गिलोय-सत्व को चंदनादि लौह के साथ पित्तविकार आदि रोगों में गिलोय सत्व के साथ च्यवनप्राश, प्रवाल-पपर्टी तथा सितोपलादि चूर्ण मिलाकर मुलहेठी (*ग्लाईकोराईजिया ग्लेब्रा*) एवं वासक सिद्ध (*जस्टीसिया अढ़ाटोडा)* की जड़ मिश्रित गाय के दूध के साथ पिलाया जाता है।

इस उपयोगी आरोही को इसकी शाखाओं को काट कर जमीन में लगाने से नई पौध सुगमता से तैयार की जा सकती है।

पेड़ घटते जाये इंसान बढते जाये।
आबादी की ज्वाला जंगल जलाये।।

सफेद मूसली (*लिलीयेसी*) -औषधीय एवं आर्थिक महत्व की वनस्पति

अर्जुन प्रसाद तिवारी एवं **भोलानाथ**
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

परिचय – सफेद मूसली *लिलीयेसी* कुल का बहुवर्षीय पौधा है, जो वर्षा प्रारंभ होने पर वृद्धि करता है। वर्षा समाप्त होने पर इसके पत्ते व ऊपरी हिस्सा सूख जाता है तथा शीत व ग्रीष्म काल में भूमिगत रहकर इसके आधार की कलियां प्रसुप्त अवस्था मे रहती हैं। इसके मूल में भोजन संचित रहता है जो वर्षा प्रारम्भ होने पर कलियों की वृद्धि हेतु संचित भोजन उपलब्ध कराता है। वर्षा प्रारंभ होने से ही इसमें पुष्प वृन्त का उद्‌भवन होता है तथा जुलाई – अगस्त में इसके वृन्त में पुष्पन की प्रक्रिया के साथ ही फल पक कर बीज भी बनते रहते है। इस प्रकार इनकी वृद्धि प्राकृतिक रूप से प्रति वर्ष होती रहती है। इसका प्रवर्द्धन बीज से भी होता है, जो बीज पक कर भूमि में बिखर जाते हैं, वर्षा प्रारम्भ होने पर प्राकृतिक रूप से उगते रहते हैं। इसकी अंकुरण क्षमता लगभग 30–40 प्रतिशत होती है। इसके बीज बहुत छोटे, काले रंग के प्याज के बीज के समान होते है। इन बीजों को एकत्रित करके भी पौधे तैयार किए जा सकते है, परन्तु यह पौधे प्रांरभ में बहुत कमजोर होते हैं, तथा जो पौधा अलैंगिक व क्लोनल विधि से इसकी मूल के अक्ष से कली के साथ पृथक करके लगाया जाता है उसका पौधा प्रांरभ से ही मजबूत होता है। भारत की प्रान्तीय भाषाओं में सफेद मूसली को हिन्दी एवं मराठी में सफेद मूसली, गुजराती में धोली मूसली, तेलगू में स्वेथ मूसली तथा मलयालम में से धीवली आदि नामों से जाना जाता है। विश्व में सफेद मूसली की 175 जातियां अनुमानित हैं तथा भारतवर्ष में चार जातियां पाई जाती हैं। औषधीय गुण वाली प्रमुख जातियों में 1. *क्लोरोफाइटम बोरीविलियानम* बेकर 2. *क्लोरोफाइटम लेक्सम* रॉबर्ट ब्राउन 3. *क्लोरोफाइटम अरून्डोनेसियम* बेकर 4. *क्लोरोफाइटम ट्यूबरोसम (रॉक्सबर्ग)* बेकर सम्मिलित हैं।

1. *क्लोरोफाइटम बोरीविलियानम* बेकर

क्लोरोफाइटम बोरीविलियानम जातियों का औषधीय महत्व सबसे अधिक है। यह जाति सामान्यत: मध्य प्रदेश में सागौन के वनों में बहुतायत से पाई जाती है। इसकी जड़ों की मोटाई प्राय: एक समान, बेलनाकार होती है तथा नीचे की ओर क्रमश: पतली होती जाती है तथा गुच्छे में आधार पर संलग्न रहती है। इसकी लम्बाई 10–15 सें.मी. होती है तथा इसमें अधिक खाद अथवा कम्पोस्ट खाद देने पर ये 20–25 से.मी. तक लम्बी हो जाती है। इसका उपयोग बल, वीर्य एवं पुरूषत्व वर्द्धक तथा स्वास्थ्य वर्द्धक औषधि के रूप में होता है। विश्व बाजार में इसकी सर्वाधिक मांग है।

2. *क्लोरोफाइटम लेक्सम* रॉबर्ट ब्राउन

इस जाति के मूल भी आधार से गुच्छे के रूप में निकलते है परन्तु प्रारंभ मे ये धागे के समान पतली होती है और अंत में ये एकाएक फूल जाती है तथा छोर पर पुन: धागे के समान पतली हो जाती है। इन फूली हुई जड़ों पर झुर्रियां होती है। यह जाति भी मध्य प्रदेश के सीधी, सहडोल, अमरकंटक के जंगलों में अधिक पाई जाती है।

3. *क्लोरोफाइटम अरून्डोनेसियम* बेकर

इस जाति के मूल भी *लेक्सम* जाति के समान ही होती है परन्तु इसके मूल का फूला हुआ हिस्सा चिकना होता है। उसमें *लेक्सम* जाति के सदृश्य झुर्रियां नहीं होती तथा उसकी तुलना में मूल का आकार बड़ा होता है। यह जाति मध्य प्रदेश के सीधी, शहडोल, अमरकंटक के साल वृक्ष के जंगलों में अधिक पाई जाती है।

4. *क्लोरोफाइटम ट्यूबरोसम* (रॉक्सबर्ग) बेकर

इस जाति के मूल भी आधार से गुच्छों के रूप में निकलती है परन्तु आधार से निकलकर ये धागे के समान पतली होती है। इस पतले हिस्से की लम्बाई *अरून्डोनेसियम* एवं *लेक्सम* जाति की तुलना में अधिक होती है तथा अंत में फूला हुआ हिस्सा दोनो प्रजातियों की तुलना में अधिक बड़ा होता है तथा इनकी सतह चिकनी, पर्ण लम्बे व अन्य जातियों की तुलना में चौड़े होते है।

भूमि, मिट्टी एवं जलवायु - सफेद मूसली की उपरोक्त जातियों के उत्पादन हेतु उपयुक्त जल निकास वाली हल्की, रेतीली, दोमट, लाल भूमि अच्छी मानी गई है। अधिक उपजाऊ मिट्टी में इसकी उपज अधिक होती है, लेकिन यह जल भराव सहन नहीं कर सकती तथा पथरीली मिट्टी में जड़ों की वृद्धि कम हेाती है। यह पहाड़ों के ढलानों तथा अन्य ढालू भूमि में भी होती है।

यह वर्षा ऋतु की फसल है तथा समशीतोष्ण जलवायु वाले वन क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से पाई जाती है। इसको 800 से 1500 मि.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में वर्षा पर आधारित फसल के रूप में उगाया जा सकता है।

अक्ष/ डिस्क/बीज - सफेद मूसली की डिस्क या अक्ष में जो कलियां होती है उन्हीं को प्रवर्धन व बढ़ोत्तरी के लिए प्रमुख रूप से उपयोग करते है। वानस्पतिक प्रवर्द्धन की विधि द्वारा बहगुणन होता है। इसकी जड़े गुच्छे में होती है जो अक्ष (परिवर्तित तना) में जुड़ी रहती है। इन जड़ों को इस प्रकार पृथक करते है कि जड़ के साथ अक्ष का हिस्सा भी लगा रहे जिसमें कम से कम एक कलिका हो। इसको रोपने पर एक पौधे का निर्माण हो जाता है। यदि डिस्क को एक साथ लगाते है तब एक ही स्थान पर अनेक पौधे निकलेगें। इसे लगभग 1.90 लाख डिस्क/हैक्टर लगाना आवश्यक है, क्योंकि प्रति हैक्टर लगभग 2400 वर्ग मी. क्षेत्र नालियों के रूपमें निकल जायेगा।

यह बीज के द्वारा भी उगाई जा सकती है। इसके लिये 10 क्विंटल प्रति हैक्टर डिस्क की आवश्यकता होती है। इतना अधिक एक बार खरीदने में अधिक खर्च आयेगा। अत: प्रथम बार केवल 1/4 एकड़ या 100 मी. 1.0 मी. क्षेत्र में रोपाई किया जाय तथा उसके बाद लगभग 6 क्विंटल जो नये पौधे तैयार हो उनको पुन: अगले वर्ष रोपने हेतु उपयोग करें। यदि खर्च अधिक वहन न कर सके तब उसमें से लगभग 6 क्विंटल जड़ों को निकाल कर तथा सुखा कर बिक्रय कर दिया जाय एवं 3 क्विंटल डिस्क को एक एकड़ (4000 वर्ग मीटर) क्षेत्र में रोपण के काम में लिया जाय।

खाद एवं खेत की तैयारी - सफेद मूसली के उत्पादन हेतु अधिक से अधिक मात्रा में खाद दे सकते है। जितना अधिक खाद दी जायेगी, उतना ही अधिक मूल की उपज प्राप्त की जा सकती है। सामान्यत: 20 से 30 टन गोबर की खाद प्रति हैक्टर देकर अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। भारतीय उत्पादक मित्तल मूसली फार्म के अनुभव के अनुसार पांच वर्ष में एक बार 150 ट्रैक्टर ट्राली खाद प्रति हेक्टर देने पर अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है। किन्तु ध्यान रखा जाय कि गोबर की खाद पूर्ण रूप से सड़ी होना चाहिये तथा भुरभुरी हो, क्योंकि कच्ची खाद डालने से मूल में सड़न/गलन रोग का प्रकोप हो जाता है तथा पौधे मर जाते हैं। इसलिये खाद को ग्रीष्म ऋतु में खेत में समान रूप से डालकर खेत की तैयारी कर लेना सर्वोउत्तम होता है।

रबी की फसल काटने के बाद ग्रीष्म ऋतु में खाद डालने के बाद एक बार मोल्ड बोल्ड प्लाऊ विधि से खेत की जुताई कर लेना चाहिये। जुताई करने के बाद 2 बार कल्टीवेटर चलायें, जिससे खरपतवार एवं उनकी जड़ें ठीक प्रकार से सूख जायें। उसके बाद डिस्क हैरो 2 बार चलाकर खेत की मिट्टी भुरभुरी कर देना चाहिये तथा पाटा चलाकर खेत को समतल कर देना चाहिये। उसके बाद 2 मी. चौड़ी तथा 10 मी. लम्बी एवं 20 से.मी. ऊँची क्यारियां (सीड बेड) बनाये। एक क्यारी मे से दूसरे के बीच में 50 से.मी. का अंतर रखे। जिससे निराई करते समय क्यारी में न जाना पड़े। क्यारी मे बैठकर निराई करने से मृदा दब जाती है व मूल की वृद्धि प्रभावित होती है। क्यारियों के बीच में 20 से.मी. का अंतर छोड़ने से एक प्रकार की नाली बन जायेगी जो वर्षा ऋतु में जल निकास का कार्य करेगी। वर्षा समाप्ति पर ये नालियां सिचाई करने में भी सहायक रहेंगी। इन नालियों का क्षेत्रफल लगभग 2400 वर्ग मी. प्रति हेक्टर से कम हो जायेगा।

रोपण का समय एवं विधि - मानसूनी वर्षा प्रारंभ होने पर जून या जुलाई में इसकी रोपाई करना आवश्यक है। शीत या ग्रीष्म ऋतु में यह सुसुप्ता अवस्था में रहती है। अत: इन ऋतुओं में इसे नहीं लगाना चाहिये। जून में यह प्रसुप्ति से जागृत हो जाती है तथा प्रसुप्ति कलिकायें मूल में संचित भोज्य पदार्थ का उपयोग करके वृद्धि करने लगती हैं। वर्षा ऋतु प्रारंभ होते ही पत्तियां निकल आती है व पौधा वृद्धि करने लगता है। इनका प्रसुप्ति काल समाप्त होते ही भंडारित डिस्क की कलियों की वृद्धि प्रारंभ हो जाती है। जिसे उनके रोपण का समय समझना चाहिये।

डिस्क को 20 से.मी. कतारों से कतारों की दूरी पर तथा 20 से.मी. डिस्क की दूरी पर लगाना आवश्यक है। यदि प्रत्येक मूल को पृथक कर के लगाया जाता है तब एक मूल से दूसरी मूल का अंतर 10 से.मी. रखें। ध्यान रहे कि रोपने की गहराई उतनी ही हो जितनी मूल की लंबाई हो। जो अक्ष का भाग मूल से संलग्न रहता है, वह भूमि की ऊपरी सतह के बराबर हो तथा उसको मृदा से ढ़कना नहीं चाहिये। केवल मूल ही मृदा के अंदर रहे। लगाते समय क्यारी में कुदाली से 5-6 से.मी. गहरी लाइनें 20 से.मी. के अंतर से बना लें। मूल या पूरी डिस्क लगाने के बाद उसके चारों तरफ मिट्टी भरकर दबा दें। डिस्क भी पूरी तरह मिट्टी के अंदर न हो उसका अक्ष व प्रसुप्त कलिकायें भूमि की सतह पर हों।

सिंचाई एवं निराई-गुड़ाई - रोपने के बाद यदि वर्षा नहीं होती है तब सिंचाई की आवश्यकता होती है अन्यथा इसकी फसल को सिचाई की आवश्यकता नहीं होती। सितम्बर में यदि वर्षा न हो तब अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में एक सिंचाई करने हेतु खेत में खुला पानी दे सकते हैं। यदि स्प्रिंकलर के द्वारा सिंचाई की जाय तब अधिक उपयुक्त रहेगा। इसके लिये ड्रिप सिंचाई विधि से भी लाभ होगा

क्लोरोफाइटम ट्यूबरोसम 1. पूर्ण पौधा 2. पूर्ण पुष्पित पौधा 3.4. जड़

तथा पानी की बचत भी होगी। सामान्य वर्षा होने पर इसकी सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। असामान्य वर्षा व कम वर्षा होने पर दो बार सिंचाई की आवश्यकता सितम्बर के मध्य या अक्टूबर माह में होती है।

इसकी फसल निराई-गुड़ाई से अधिक प्रभावित होती है तथा इसका उत्पादन। अत: इसकी निराई-गुड़ाई 30 दिन व 45 दिन की अवस्था पर अवश्य करना चाहिये। निराई-गुड़ाई हैंड हो या खुरपी से सावधानी पूर्वक किया जाय, जिससे पौधों की जड़े प्रभावित न हों।

फसल की खुदाई, प्रसंस्करण एवं सुखाना - सफेद मूसली की खुदाई दिसम्बर से जनवरी माह तक, लगभग 6-7 माह के बाद की जाती है। इस समय इसकी पत्तियां सूख जाती है भूमि के अंदर मूल व डिस्क प्रसुप्त हो जाती है। इस समय मूल का छिलका अपने आप निकलने लगता है। खुदाई के 2 दिन पहले स्प्रिंकलर से हलकी सिंचाई करने से खुदाई करने में आसानी होती है। फसल की खुदाई कुंदाली या फोर्क के द्वारा की जाती है।

मूसली की खुदाई करने के बाद उसकी सफाई करना आवश्यक है। यदि मिट्टी मूसली में लगी है तो उसको पानी से धोकर साफ कर लिया जाय। उसके बाद मूसली को डिस्क से तोड़कर पृथक कर लें। बाद में मूसली के ऊपरी सतह से छिलके को निकालें। ध्यान रहे कि छिलका चाकू या कांच के टुकड़े या खुरदरे पत्थर आदि से घिसकर साफ करें व सूखने के लिये धूप में डाल दिया जाय। साफ करने के बाद मूसली को सफेद नये कपड़े अथवा पालीथीन पर सुखाना चाहिए, अन्यथा मूसली का रंग सफेद नहीं होगा तथा उसका रंग मटमैला या पीला हो जायेगा। जिससे बाजार में उसका मूल्य कम हो जायेगा। अत: सफाई व सुखाई का कार्य सावधानी पूर्वक करना आवश्यक है। मूसली में फफूंद आदि का आक्रमण नहीं होना चाहिए। उन छोटी मूसली को डिस्क सहित छाया में रेत के अंदर भंडारित कर अगले वर्ष की फसल रोपने के काम में लिया जाय।

उत्पादन विपणन एवं भण्डारण - ताजा सफेद मूसली का उत्पादन 15 से 40 क्विंटल प्रति हैक्टर होता है तथा सूखी मूल का उत्पादन 4-8 क्विंटल प्रति हैक्टर तक होता है। ताजी सफेद मूसली के मूल का बाजार भाव 50-100 रूपये प्रति कि.ग्रा. तथा शुष्क मूल का बाजार भाव 800-1000 रूपये प्रति कि.ग्रा. अनुमानित है तथा प्रति हेक्टेयर 1 लाख से 5 लाख रूपये शुद्ध लाभ प्राप्त हो सकता है।

1. प्रसंस्कृत की हुई शुष्क मूल (जल 8-9 प्रतिशत) को पालीथीन की थैलियों या नायलान की बोरियों में बन्द करके शुष्क स्थान में बेचने हेतु रखा जाना चाहिए।
2. बीज रोपने हेतु 1-2 छोटी मूल सहित डिस्क का भण्डारण रेत में छायादार कमरे में करते हैं। यदि खेत में ही खुदाई करते समय डिस्क के साथ संलग्न एक या दो छोटी मूसली को छोड़ दिया जाय तो पृथक रूप से भंडारण की आवश्यकता नहीं होती है। वे शीत व ग्रीष्म काल में खेत में ही पड़ी रहकर अगले वर्ष बीज का काम करती है। बीज हेतु भंडारित की गई डिस्क सहित मूल पर सिंचाई नहीं करना चाहिए।

अंगूर के औषधीय उपयोग

महेन्द्र सिंह
वनस्पति विज्ञान विभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

अंगूर *वाइटिश विनीफेरा* (वाइटेशी) अथवा 'द्राक्षा' मानव जाति के लिए प्रकृति के बहुमूल्य उपहारों में से एक है। यह अत्यधिक उपयोगी फलों में से एक है। यह स्वादिष्ट, पोषक और आसानी से पचने वाला फल है। अंगूर की कई किस्में भारत में पाई जाती हैं, जो आकार, रंग, सुगन्ध और स्वाद में भिन्न होती हैं।

माना जाता है कि अंगूर, काकेशिया और उसके आसपास के क्षेत्रों में उत्पन्न हुआ, जहाँ से यह धीरे-धीरे उष्ण क्षेत्रों-पश्चिमी एशिया, दक्षिण यूरोप, अल्जीरिया और मारकोस में क्रमिक रूप में फैला, भारत में भी यह बहुत पहले पहुँच चुका था। अब इस फल को दक्षिण यूरोप, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रिका, दक्षिण अमेरिका और मध्य पूर्व के देशों में व्यापक पैमाने पर उत्पन्न किया जाता है। अंगूर की खेती प्राचीन समय से ही होती आ रही है। मानव द्वारा उगाई जाने वाली अति प्राचीन फलों की बेलों में से यह एक है। ''बाइबल'' में भी इस फल के कई सन्दर्भ मिलते हैं। मिश्र के कई हजार वर्ष पुराने शिलाखण्डों में अंगूर की नक्काशी पाई गई है।

वर्णन - अंगूर काष्ठीय लता है। इसके तने में ठोस लकड़ी होती है। पत्र गोल, बड़े, अनीदार, हरे या बैंगनी रंग मिश्रित होते हैं। लता लाल रंग की मटमैली होती है। इस पर पुष्प सर्दी के बाद एवं गर्मी से पूर्व आते हैं। फल गुच्छों में लगते हैं। कच्चे रहने पर ये हरे, पकने पर श्वेत, हरित पीत हो जाते हैं। सूखने पर यही मुनक्का हो जाता है। छोटे किस्म के अंगूर सूख कर किशमिश के तौर पर प्रयोग किया जाता है।

औषधीय उपयोग - अंगूर में ग्लूकोज़ पर्याप्त मात्रा में होता है, जो उदय और शरीर के महत्वपूर्ण अवयवों को उचित प्रकार से कार्य करने के लिए आवश्यक ऊर्जा ग्लूकोज के उपापचय (मैटाबोलिज्म) पर निर्भर है, अत: अंगूर आसानी से घुलनशील होने के कारण शरीर को तेजी से शक्ति प्रदान करता है। अंगूर की कुछ किस्मों में ग्लूकोज की मात्रा 15-25 प्रतिशत तक होती है। हल्के हरे 100 ग्राम अंगूर में लगभग आर्द्रता 79.2 प्रोटीन, वसा 0.3, खनिज 0.6, रेशा 2.9 और कार्बोहाइड्रेट 16.5 प्रतिशत रहता है। इसके प्रति 100 ग्राम गूदे में कैल्सियम 20 मि0ग्रा0, फास्फोरस 30 मि0ग्रा0, लोहा 0.5 मि0ग्रा0 और विटामिन सी-1 मि0ग्रा0 रहता है।

गुर्दे की बीमारी - अंगूर में आर्द्रता और पोटेशियम लवण की मात्रा अधिक होने से यह मूत्र-वर्धक होता है। इसमें अल्ब्यूमिन और सोडियम क्लोराइड की मात्रा कम होने से गुर्दे की बीमारी में इसका महत्व बढ़ जाता है।

दमा- अंगूर दमे में उपयोगी समझा जाता है। डा. ओल्डफिल्ड के अनुसार अंगूर और इसका रस दमे के उपचार में बहुत उपयोगी है।

बदहजमी- बदहजमी में अंगूर उपयोगी है यह हल्का आहार है, जो थोड़े समय में ही अपचन दूर कर गर्मी में राहत पहुँचाता है।

हृदय रोग- अंगूर हृदय रोग में बहुत लाभकारी है। यह हृदय को स्वस्थ रखता है , हृदय-शूल और हृदय संबंधी विकारों में उपयोगी है। हार्ट-अटैक में अंगूर का रस बहुत उपयोगी होता है। यह हृदय के दर्द और तीव्र धड़कन को नियंत्रित कर हृदयाघात से बचाता है।

कब्ज - अंगूर में सेल्यूलोज, शर्करा और कार्बनिक अम्ल होने के कारण इसका जुलाब देना होता है। यह आंत को साफ रखने के साथ-साथ पुरानी कब्ज को भी दूर करता है।

मिरगी- लगभग 500 ग्राम ताजा अंगूरों का रस दो से तीन महीने दिन में तीन बार सेवन करने से अत्यधिक लाभ मिलता है। यूरोपीय एवं यूनानी चिकित्सक पुराने समय से इसका उपयोग उपचार में करते रहे हैं।

यकृत (लीवर) की गड़बड़ी - यह ग्लाइकोजन और पित्त के स्राव को उद्दीप्त कर यकृत की अनियमितताओं में बहुत लाभकारी है।

सिरदर्द/माइग्रेन - पके अंगूरों का रस माइग्रेन यानी आधासीसी के लिए बहुत उत्तम उपचार है।

———

दरख़्त-ए-मिसवाकः *सालवेडोरा परसिका*

राजीव कुमार सिंह, विनीत कुमार सिंह एवं यूसुफ अहमद सिद्दीकी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

पीलू (*सालवेडोरा परसिका*) सालवेडोरेसी कुल का एक छोटा, सदाहरित लगभग 10-20 फीट ऊँचा एवं 4-6 फीट घेरा वाला वृक्ष है। इसकी काण्ड छोटी टेढ़ी-मेढ़ी एवं शाखाएं बहु, पुष्कल, दुर्बल नीचे झुकी हुई कभी-कभी भूमि को स्पर्श करती हुई होती हैं। पत्तियाँ विपरीत, चमड़े सदृश, अंडाकार, आयताकार 1-2 इंच लंबी होती हैं। पुष्प अक्षीय 2-5 इंच लम्बे, बहुविभक्त मंजरियों में छोटे, सवृन्त, हरिताभ पीत होते हैं। फल लगभग 1/6 इंच व्यास के गोलाकार अंगूरनुमा चिकने, पकने पर लाल, सूँघने पर सरसों सी गंध। फल को मसलने से तीक्ष्ण गंध आती है। फल मीठे होते हैं एवं खाये जाते है। पीलू का रसीला फल एक अत्यंत लाभकारी औषधि भी है। अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाला यह फल रेगिस्तान के 'रसाल' के रुप में जाना जाता है। इसके वृक्ष को जाल कहते है।

पीलू की जाल मार्च-अप्रैल माह में फलने-फूलने लगती है, भाव प्रकाश निघन्टू ने इस वृक्ष की चर्चा में कहा है कि-

पीलू गुर्डफलः स्रंसी तथा शीतफलोऽपि चा
पीलू श्लेष्मसमीरहनं पित्तंल भेदि गुल्मनुत।
स्वादु तिक्तु च यत्पीलु तन्नात्युष्णं त्रिदोषहत।।

अर्थात पीलू एक मीठा, रसीला होने के साथ शीतलता प्रदान करने वाला, पित्त, गुल्म नाशक जो स्वाद में तिक्त, वीर्य उष्ण एवं त्रिदोषों को हरने वाला फल है।

उत्पत्ति स्थान- भारत में यह वृक्ष उत्तर एवं उत्तर पूर्वी राज्यों को छोड़कर सारे शुष्क एवं अर्द्धशुष्क राज्यों में पाया जाता है- जैसे राजस्थान, बिहार, कोंकण, पंजाब एवं गुजरात। विश्व में यह अरब देशों में बहुतायत मिलता है।

गुणकर्म- इसका रस तिक्त, गुण लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, त्रिदोष प्रभाव-कफवात नाशक है।

रसायनिक संघटन- फल में शर्करा, रज्जक द्रव्य, वसा, क्षार तत्व, मूल में सालवेडोरिन क्षार, प्रभूत मात्रा में राल, रज्जक द्रव्य होते हैं। जड़ की छाल में क्लोराइड लवण होते हैं। इसके साथ ही इसमें ट्राई मिथाइल अमीन एवं कुछ मात्रा में रेसिन, टेनिन एवं सपोनिन भी होते हैं।

औषधीय उपयोग- गर्मियों के दिनों में इसका सेवन करने से शरीर में ताजगी, स्फूर्ति एवं शीतलता बनी रहती है तथा मस्तिष्क को ठंडक और ताजगी पहुँचाती है। फल के सेवन से लू के प्रकोप से बचा जा सकता है। सूखे फलों को तेज गर्मी के शिकार व्यक्ति को भिगोकर पानी पिलाने पर गर्मी उतर जाती है, यदि गुलाबजल में भिगोकर इसका उपयोग किया जाए तो यह अधिक गुणकारी सिद्ध होता है। इस वृक्ष के जड़ की छाल को पीसकर घाव पर लगाने से घाव भर जाता है।

अनियमित मासिक धर्म से पीड़ित महिलाओं को इसकी जड़ उबालकर पिलाने से मासिक धर्म नियमित हो जाता है। पीलू कफ शामक है। अतिसार, गर्भाशय शोथ, बवासीर, खुजली एवं अन्य चर्म रोगों में भी इसका उपयोग औषधि के रुप में किया जाता है। दाँतों की सफाई के लिए इसे एक उत्तम दातून माना गया है। इसके रेशे बहुत मुलायम तथा मजबूत होते हैं। इसके पत्ते मल भेदक, गुल्मनाशक हैं। इसकी जड़ों के क्वाथ को गोनोरिया में दिया जाता है। तिल्ली के दर्द में जड़ का रस आराम देता है। तने की छाल को उदर विकारों में प्रयोग किया जाता है। पत्तियों को सेंक कर टयूमर (गाँठ) एवं अर्श में उपयोग किया जाता है। फल, गठिया, बाई, पेट विकार, पथरी एवं मूत्रक होता है। सर्पदंश में बीज को पीसकर उसका लेप लगाते हैं। ज्वर में फल का प्रयोग करते हैं।

प्रयोग- आमवात, अर्श, अर्बुद में पत्तों को गर्मकर बांधते हैं। कास में पत्र का चूर्ण देते हैं। अर्श में रोगी को केवल पीलू के फल पर रखे एवं तक्रपान करावें लगभग 2 सप्ताह तक। आमवात में बीजों का तेल लगाते हैं। प्रलाप में इसकी छाल का क्वाथ देते हैं। पत्तियों के रस को स्कर्वी रोग में दिया जाता है।

सालवेडोरा परसिका

आर्थिक उपयोग- इसके टहनियों का उपयोग दंतमंजन बनाने में होता है। पत्तियों को सब्जियों की तरह खाया जाता है। अफ्रीका में नई कोपलों एवं पत्तियों को चटनी एवं सलाद के रुप में लिया जाता है। इसकी पत्तियाँ रेगिस्तान के हवाईजहाज ऊँटो के चारे के रुप में प्रयोग होती है। इसके फल खाने योग्य होते है। इसकी लकड़ी सफेद, मुलायम एवं चमकदार होती है इसमें आसानी से दीमक नहीं लगते। इसलिए मिस्रवासियों द्वारा इससे ताबूत बनाये जाते हैं।

———

राजस्थान की एक उपयोगी व संकटग्रस्त वनस्पति ''पनीर बंद''

विनोद मैना, सी. आर. जाधव एवं **टी. एस. राठौर***
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, जोधपुर
*शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

पनीर बंद पादप प्रजाति को आंग्लभाषी इंडियन रेन्नेट, चीज मेकर व वेजिटेबिल रेन्नेट के नाम से पुकारते हैं। इसका वानस्पतिक नाम *विथानिया कोगुलेंस* है। यह सोलेनेसी कुल का द्विबीजपत्री पौधा है। इस पौधे का नाम ''पनीर बंद'' इसके सरल फलों में एक चमत्कारिक गुण की मौदूजगी के कारण दूध को स्कंदित कर पनीर के रूप में जमाने के गुणों के कारण प्रयुक्त किया गया है। संस्कृत में इसके लिये तुरंगी गंधा, कामरूपनी, पुन्या व बाजीकरी इत्यादि नाम प्रयुक्त किये गये हैं। राजस्थान में यह जैसलमेर, बाड़मेर, नागौर, जोधपुर में अल्पसंख्या में पाया जाता है। भारत के अलावा पाकिस्तान के सिन्ध, पंजाब व बलूचिस्तान में पाया जाता है। अफगानिस्तान के सूखे व रेतीले इलाकों में भी यह उपलब्ध है।

पनीर बंद (*विथानिया कोगुलेंस*) के पौधे

भारत वर्ष में प्राय: इसकी दो प्रजातियां पाई जाती हैं। *विथानिया सोमनीफेरा* इसकी दूसरी प्रजाति है, इसे भी अश्वगंधा के नाम से जानते हैं और यह प्रजाति बहुत प्रचलित होने के साथ ही औषधि के रूप में आयुर्वेद में उपयोग की जा रही है। जबकि *विथानिया कोगुलेंस* को बहुत कम लोग जानते हैं।

रसायनिक गुण- रसायनिक गुणों के आधार पर दोनों प्रजातियों में काफी हद तक समानता है। बिथानोलाइड नामक एल्कोलाइड दोनों में पाया जाता है। बिथानिया-ए रसायन बिथानिया सोमनीफेरा में और कोएगुनिर-2 के साथ बिथाफेरिन-ए, बिथानिया कोगुलेंस में पाये जाते है। इन रसायनों की वजह से इस पौधे में प्रतिकवक और प्रतिजैविक गुण पाये जाते हैं।

संरचना- यह एक शख्त, खड़ी, बहुवर्षीय धूसर-हरे रंग वाली, बिना काँटों की झाड़ी है। इसकी औसतन ऊँचाई 60-120 से. मी. होती है। इसका तना व शाखायें काष्ठीय,पत्तियाँ सामान्यत: भालाकार, दीर्घायत दोनों ओर से धूसर, अपाती घनरोमों से आच्छादित, आधार पुष्ट वृन्त में संकीर्ण, पुष्प पीत वर्ण, कक्षस्थ सीमाक्षी, पुष्य गुच्छों में पाये जाते हैं। सरसफल गोलाकार, लाल अथवा लाल भूरे रंग व चिकने होते हैं, बाह्यदलपुँज से ढ़के हुये; बीज भूरे, कर्णाकार, अरोमिल तथा गूदा भूरा, वमनकारी एवं गंधयुक्त होते हैं।

पुष्पन व फलन- आमतौर पर पुष्पन नवम्बर माह से अप्रेल माह तक होता है, और फल प्राय: जनवरी माह से पकने शुरू हो जाते हैं।

उपयोगिता-इस पौधे में पाये जाने वाले गुणकारी रसायनों के कारण इसकी उपयोगिता औषधि के रूप में व घरेलू दोनों में है। इसमें रस-तिक्ता व कसाय वीर्य - उष्ण, गुण-लघु स्निग्ध, विपाक-कटु आर्युवेदिक साहित्य राज निघण्टु व भाव प्रकाश में दिये गये श्लोकों से इस वनस्पति के औषधीय गुणों पर प्रकाश डाला गया है।

अश्वगन्धा कटुष्णा स्यातिक्ता च मदगन्धिका।
बल्या बातहरा हन्ति कासश्वा सक्षय व्रणान।। (राजनिघण्टु)

अर्थात: अश्वगंधा कटुउष्णा, तिक्ता, कसैली, लघु स्निग्ध, मद के समान गंध वाली बलदायी, शारीरिक क्षय से मुक्त करने वाली वनस्पति है।

अश्वगंधानिल श्लेष्माश्वत्र शोध क्षमा पहा।
बल्या रसायनी तिक्ता कषायोष्णाऽति शुक्रला।। (भाव प्रकाश)

अश्व की गंधयुक्त के क्षय का अंत करने वाली बलदायक रसायनों से युक्त तीखी, कसैली, उष्मा को हरने वाली शुक्राणुओं को मजबूत करने वाली एक मात्र वनस्पति है।

उल्लेखित दोनों श्लोकों के भावार्थ से मालूम होता है कि इस वनस्पति के गुण समान रूप से दोनों ही शास्त्रों में व्यक्त है। इन्हीं गुणों के कारण इस वनस्पति को वात, पित, कफ नाशक, दर्द निवारक, कृमिनाशक, मूत्रल, दमा, रक्त शोधक, रक्तचाप नियंत्रक, वीर्य वर्धक, बिंदु मूत्र कुच्छ तथा शरीर को बलिष्ठ बनाने में उपयोगी है।

व्यवसायिक व घरेलू उपयोगिता - इस पौधे के सरस व सूखे फलों में दूध को स्कंदित करने जैसे गुण भी मौजूद हैं। इसके फलों से दूध को पनीर के रूप में जमाने का चलन आमतौर पर पाकिस्तान, बलूचिस्तान, सिन्ध तथा उत्तर पश्चिम भारत में था। सूखे या ताजा सरस फलों को कुछ दूध के साथ रगड़ते हैं और फिर बाकी गर्म दूध में मिला देते हैं जिससे दूध थक्केदार, पनीर के रूप में जम जाता है। यह क्रिया फलों में मौजूद परिपक्व की वजह से होती है। इसी कारण इसे पनीर बंद कहते हैं।

सन् 1883 में सर्वप्रथम डॉ हुकर ने सर्जन मेजर एटचिसॉन की सलाह पर एक वैज्ञानिक परीक्षण किया। इस पौधे के कुछ सूखे फलों का चूर्ण बनाकर पानी में भिगोकर निथार कर एक द्रव्य बनाया और उसका एक टेबिल चम्मच एक गैलन गर्म दूध में मिला दिया जिससे मात्र आधा घंटे में चमत्कारिक रूप से दूध पनीर के रूप में स्कंदित हो गया जो ज्यादा गुणकारी, स्पंजी व अच्छी सुगंध वाला था। इस प्रक्रिया के लिये औसतन तापमान 45^0-60^0 तक होना चाहिये। इसके बाद डॉ. ली ने कई प्रयोग किये और वे एक सक्रिय किण्वक बनाने में सफल हुये। उनकी परेशानी ये थी कि एक वर्ण रहित रेन्नेट बनाना चाहते थे। क्योंकि पनीर में सफेदी लाने हेतु उन्होने कई प्रयोग किये क्योंकि किण्वक को रंग रहित करने या गर्म करने पर गुणों व सक्रियता पर असर पड़ता था।

अंत में वे इसके बीजों से एक उत्तम किस्म का किण्वक बनाने में सफल हुये। वेजिटेबिल रेन्नेट से बना पनीर जन्तु रेन्नेट से बने पनीर से उत्तम व प्राकृतिक गुणों से भरपूर व अच्छी सुगंध वाला होता है।

संकटग्रस्त होने के कारण व उपाय - इसके प्राकृतिक वास की भूमि का ज्यादातर नाश व उपयोग कृषि, खनन, आवास व औद्योगिकीकरण व आबादी वाले क्षेत्रों में बदलने के कारण और भारत विभाजन के कारण ज्यादातर इसकी उपलब्धता का ज्यादातर हिस्सा पाकिस्तान में जाने से भारत में इसकी उपलब्धता बहुत ही सीमित क्षेत्र में रह गयी है। राजस्थान में इस प्रजाति की उपलब्धता पर बहुत प्रभाव पड़ा है। इसके अलावा उपयोग व अवैज्ञानिक रूप से दोहन के तरीकों के कारण यह प्रजाति संकट से गुजर रही है। राजस्थान व पंजाब व हरियाणा में इसकी घटती जनसंख्या की वजह बढ़ती सिंचित कृषि भी है क्योंकि इस वनस्पति के लिये रेतीली व शुष्क जलवायु उत्तम है। लेकिन थार भारत मरूस्थल का काफी भाग सिंचित खेती में तब्दील हो चुका है।

समय रहते यदि हमने इसके संरक्षण व संवर्धन के विषय में कोई ठोस कदम न उठाये तो निश्चित रूप से यह प्रजाति भारत भूमि से लुप्त हो जायेगी। हमें चाहिये सर्वेक्षण द्वारा इस प्रजाति की उपलब्धता संबंधी आँकड़े एकत्रित किय जाये, प्राकृतिक प्रजनन में कमी के कारणों का पता लगाया जायेक्योकि यह पौधा एकलिंगी है। व्यवसायिक रूप में दोहन संबंधी आँकड़ों के आधार पर इसके संरक्षण की प्रक्रिया शुरू की जाये। इसी कड़ी में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शुष्क अंचल क्षेत्रीय केन्द्र जोधपुर द्वारा इसे संरक्षण हेतु संकटग्रस्त वनस्पतियों की सूची में शामिल किया। आफरी जोधपुर ने भी इसकी व्यवसायिक उपयोगिता के आंकलन हेतु एक प्रोजेक्ट शुरू किया है। आशा है कि इन प्रयासों से इस वनस्पति के संरक्षण में मदद मिलेगी।

इस बात की पुष्टि एस.जी. जोशी द्वारा लिखित पुस्तक में वर्णित अश्वगंधा का तात्पर्य *विथानिया कोगुलेंस* डुनेल से ही है। क्योंकि इस पुस्तक में शास्त्रों में वर्णित पौधों का ही उल्लेख किया गया है और उन्होनें इसी प्रजाति को अश्वगंधा बताया है तथा *विथानिया सोम्नीफेरा* प्रजाति को अपनी पुस्तक में शामिल नहीं किया है।

कैर- भारतीय थार मरूस्थल की एक उपयोगी वनस्पति

चन्दन सिंह पुरोहित
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, गंगटोक, सिक्किम

कैर एक मरूस्थलीय झाड़ी है, जिसका वानस्पतिक नाम *कैपेरिस डेडुिआ इडज्यु* है तथा यह केपेरिडेसी कुल का पादप है। कैर को विभिन्न भारतीय लोक-भाषाओं में विभिन्न नामों से जाना जाता है, जैसे राजस्थान में कैर, उत्तर-प्रदेश में करील, गुजरात में केर, हरियाणा में टीन्ट, दिल्ली व पंजाब में देल्ला तथा महाराष्ट में नेप्ती नाम से जाना जाता है।

वितरण- यह एक मरूस्थलीय झाड़ी है, जो भारत, पाकिस्तान तथा कुछ एशियाई देशों में पाई जाती है। राजस्थान में यह बीकानेर, जोधपुर, बाड़मेर, चुरू, नागौर, हनुमानगढ़, सीकर, जैसलमेर, श्री-गंगानगर, जालोर, झुन्झुनु आदि क्षेत्रों में बहुतायत में पायी जाती है।

आवास- यह सूखे, मरुभूमि क्षेत्रों जैसे पहाड़ों की तलहटी व बंजर भूमि में उगने वाली झाड़ी है ,जो मुख्यत: 300 से 1200 मीटर की ऊंचाई पर उगती है। यह मुख्यत: उथली मिट्टी, जो कि खारे पानी के द्वारा सिंचाई से प्रभावित हो या फिर स्थिर रेत के टीलों में आसानी से बढ़ती है। कैर के साथ मुख्यत: आक *(केलाट्रापिस प्रोसेरा)*, हिंगोटा *(मेटिनस इमार्जिनाटा)*, बोरटी *(जिजिपस न्युमुलेरिया)*, खेजड़ी *(प्रोसोपिस सिनेरिया)*, मीठा जाल *(साल्वेडोरा अह्लियोइडिस)*, धोकड़ा *(एनोजिसस पेन्डुला)*, इत्यादि वनस्पतियाँ पाई जाती है।

आकारिकीय पहचान- यह एक झाड़ीनुमा छोटा वृक्ष है, जो 4-5 मीटर ऊंचाई का होता है। इसमें मूसला जड़ होती है व वयस्क पादप में यह 4 मीटर तक लंबी होती है। इसकी शाखाओं पर पत्तियां केवल वर्षाकाल के समय ही देखी जा सकती हैं, जो बहुत छोटी लगभग 2 मि.मी. आकार की होती हैं, बाकी समय इसकी शाखाएं पत्तीविहिन ही रहती हैं। कैर की छोटी पार्श्व शाखाओं पर लाल अथवा पीले रंग के फूल लगते हैं। जिनके दलपुंज पर लाल धारियां होती है, डंठल पतला व 12 मि.मी. लंबा होता है। इसके फल छोटे, बेरी, अनेक बीजों युक्त, थोड़े नुकीले हरे रंग के होते है, जो पकने पर लाल हो जाते हैं।

इसमें पत्तियों के स्फुटन के आधार पर फूल वर्ष में तीन बार, जून-जुलाई (गर्मी के समय), अक्टूबर (सर्दी-पूर्व के समय) व जनवरी-फरवरी (शीतकाल के समय) आते हैं। इसमें फलों का निर्माण मार्च माह में होता है ।

उपयोग- इस पादप के विभिन्न भागों के निम्न उपयोग है ।

- इसके फलों का आचार बनाते हैं, जो कि मधुमेह-रोधी माना जाता है। फलों का उपयोग सब्जी के रूप में भी किया जाता है।
- जड़ का उपयोग वात रोगों एवं अंतर ज्वर के उपचार में करते हैं।
- पारंपरिक चिकित्सा पद्धति में छाल का उपयोग खांसी, दमा और सूजन में करते हैं, जड़ों का उपयोग बुखार में तथा कलिकाओं का उपयोग जले भाग के उपचार करने में किया जाता है।
- राजस्थान में इस फल का उपयोग यहां की प्रसिद्ध सब्जी 'पचकुटा' बनाने में किया जाता है। इस सब्जी को केर के सुखे फल के साथ सांगरी, खेजड़ी की सूखी फली *(प्रोसोपिस सिनेरिया)*, गुंदा का फल *(कोर्डिया ग्राफ्फ)*, कमल की डंडी *(निलुम्बो न्यूसिफेरा)*, कुमट बीजों (*अकेशिया सेनेगल*), काचरी का सूखा फल *(कुकुमिस मिलोकाचरी)* तथा अमचूर को मिलाकर बनाया जाता है । यह राजस्थान की प्रमुख सब्जियों में से एक है।
- इसकी शाखाएं व पत्तियों का उपयोग चारे के तौर पर करते हैं व इसकी लकड़ी अच्छी जलाऊ होने के कारण इसका उपयोग भट्टों में ईंटों को पकाने में भी किया जाता है।
- इसकी लकड़ी पर दीमक का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, इसलिए इसका उपयोग ऊंट व बैल-गाड़ियों के पहियों को बनाने में, कृषि औजारों को बनाने में एवं तेल मिलों के औजारों को बनाने में करते है।

वनस्पति वाणी अंक 22 : 73-78(2013)

ओडिशा के आदिवासी क्षेत्रों में साप्ताहिक बाजार (हाट) में पेड़ पौधों तथा उनके उत्पादों का विपणनः एक सर्वेक्षण

हरीश सिंह 'भुजवान'
केन्द्रीय वनस्पति प्रयोगशाला, हावड़ा

ओडिशा राज्य के विभिन्न जिलों में आदिवासियों की 62 मुख्य जातियाँ सदियों से निवास करती हैं। इनमें से मुख्य खोन्ड, गोन्ड, सन्थाल, कोळा, मुन्डा, शबर, परोजा, ओराँव, किसान, भोट्ट्डा, भुइयाँ, भूमिज, कोया, भूमिया, बिन्झाल आदि जन जातियाँ इस राज्य के मयूरभंज, सुन्दरगढ़, क्योन्झार, कोरापुट, मालकान्गिरी, कालाहान्डी, नवरंगपुर, बाँलनगीर, अंगुल, कान्धामल, एवं सम्बलपुर जनपदों के सुदूर वर्ती वन क्षेत्रों में रहते हैं। ये लोग सदियों से इन जंगलों में उपलब्ध पेड़-पौधों के विभिन्न भागों का उपयोग अधिकतर अपनी पेट की भूख मिटाने के लिए तथा अपने व अपने घरेलू जानवरों के रोगों के उपचार के अतिरिक्त, रहने के लिये घर, पहनने के लिये वस्त्र, गृहस्थी एव कृषि में उपयोग होने वाले उपकरण, सामग्री, औजार, रस्सियाँ बनाने, प्राकृतिक रंग प्राप्त करने तथा धार्मिक एवं मांगलिक कार्यों में, पूजा-पाठ में, मन्दिरों व घरों को सजाने के लिए करते आ रहे हैं। इन दैनिक जीवन की वस्तुओं के अलावा उन्हें भविष्य के लिये कुछ अतिरिक्त आर्थिक धनराशि की भी आवश्यकता होती है, जिसे पुरुष आदिवासी लोग आजकल विभिन्न सरकारी एवं गैर-सरकारी विभागों में श्रमिक के रूप में कार्य कर कमाते हैं तथा महिलायें भी मछलियाँ, शहद तथा अन्य वन उत्पाद एकत्र कर उन्हें बेच कर अतिरिक्त आय अर्जित करतीं हैं।

साप्ताहिक बाजार या साप्ताहिक हाट का इन आदिवासियों के जीवन में एक प्रमुख स्थान है। क्योंकि इन्हें अपने दैनिक जीवन की जरूरत की अधिकतर वस्तुयें इन्हीं हाटों से मिलती हैं। इसीलिये ये लोग उस हाट का सप्ताह भर तक इन्तजार करते रहते हैं। इन साप्ताहिक हाटों का लगने का दिन व स्थान पूर्व निर्धारित होता है और इन बाजार में कुछ बड़े व्यवसायी प्रत्येक दिन एक हाट से दूसरे हाट में अपने समान को बेचने के लिये भ्रमण करते रहते हैं। किन्तु साधारणतया स्थानीय आदिवासी लोग उनके द्वारा एकत्रित, निर्मित सामान का विपणन अपने नजदीकी हाटों में ही करते हैं। आदिवासियों द्वारा इन हाटों में अधिकतर खाने के विभिन्न किस्म के अनाज, दालें, तेल, मसाले, घरेलू एवं जंगली सब्जियाँ, घरेलू एवं जंगली फल, फूल, जड़ी -बूटियाँ, जंगली मशरूम, पत्तियों से निर्मित खाने की प्लेट, कटोरियाँ, दाँत साफ करने के दाँतून, चावल से बनी बीयर (हान्डीया), हान्डीया बनाने की दवाईयाँ (बाकरा), लकड़ी से बनी चारपाई, कुर्सी, मेज, सजावटी सामान, कृषि संयन्त्रों के हत्थे, झाड़ू, बरसाती, बाँस से बनाई गयी अनेक प्रकार की टोकरियाँ, चटाईयाँ, मछली पकड़ने के जालियाँ, पंखे, आदि का क्रय-विक्रय किया जाता है।

लेखक ने सन् 2006 से 2012 तक ओडिशा राज्य के मयूरभंज, सुन्दरगढ़, अंगुल तथा बाँलनगीर जिलों के अनेक आदिवासीय साप्ताहिक बाजारों का भ्रमण कर पाया कि इन क्षेत्रों के आदिवासी लोग नजदीकी जंगलों से एकत्रित वनस्पतियों के विभिन्न उपयोगी भागों जैसे जड़, कन्द, पत्ती, तना, लकडी, छाल, फल व बीज को या तो उन्हें सीधे हाट मे बेच देते हैं या उनसे कुछ बहुमूल्य सामाग्री तैयार करने के पश्चात उन्हें अधिक दामों में बेचा जाता है। इन आदिवासीय साप्ताहिक बाजारों के भ्रमण के दौरान इन वनस्पतियों के बेचे जाने के दर को भी अंकित (रिकार्ड) किये गये ताकि उनके होने वाली अतिरिक्त सम्भावित आय का भी अनुमान लगाया जा सके। इन आदिवासीय साप्ताहिक बाजारों में बिकने वाले वनस्पतियों के स्थानीय नामों के साथ उनकी वैज्ञानिक पहचान करने के उपरान्त उनके सही वानस्पतिक नामों को अंग्रेजी के अक्षरो में, उनके बेचने के दर को भारतीय रूपयों में तथा प्रयोग की विधि को विस्तृत रूप मे निम्न प्रकार से वर्णित किया जा रहा है:

1. बच्छ, देवनाशन (*Acorus calamus*) के जड़ों को औषधि, कीटनाशक एवं भूत-प्रेत भगाने के लिए 10 रुपये प्रति जड़ की दर से बाँलनगीर व अंगुल जिलों में बेचा जाता है।
2. नालीखोडा, नोटिया साग (*Amaranthus tricolor*) की ताजी हरी पत्तियों को उन्हें सब्जी के लिए ग्रीष्म काल मे 5 रुपये प्रति गड्डी (100 ग्राम) की दर से अंगुल जिलों में बेचा जाता है (चित्र-4)।

3. अत्तो, बधाल, मन्दरगम, अत्ता (*Annona squamosa*) के फलों को खाने के लिए माह सितम्बर-अक्तूबर मे 5 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से मयूरभंज जिलों में बेचा जाता है (चित्र -15)।
4. धौरा (*Anogeissus latifolia*) की लकड़ी से विभिन्न कृषि संयन्त्रों के हत्थे तैयार कर उन्हें 15 से 40 रुपये प्रति नग की दर से बाँलनगीर व अंगुल जिलों में बेचा जाता है (चित्र -44)।
5. बुधो जारक (*Argyreia nervosa*) के बीजों को औषधि निर्माण हेतु 250 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से मयूरभंज जिलों में बेचा जाता है।
6. बाधुन, बाडुन (*Aristida setacea*) के तनों को झाड़ू बनाकर उन्हे 12 से 15 रुपये प्रति नग की दर से बाँलनगीर व अंगुल जिलों में बेचा जाता है (चित्र -35)।
7. कोंटा मालती (*Barleria prionitis*) के पीले फूलों को शरद् ऋतु में पूजा हेतु 10 रुपये प्रति 100 ग्राम की दर से बाँलनगीर जिलों में बेचा जाता है (चित्र -55)।
8. कंचन, कुलेर, कुरल (*Bauhinia purpurea, B. racemosa*) के फूलों की कलियों को सब्जी के लिए ग्रीष्म काल में 20 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से बाँलनगीर जिलों में बेचा जाता है।
9. सियाली लता, सेहर (*Bauhinia vahlii*) की हरी पत्तियों को बाँस की छोटी- छोटी किलियों से जोड़कर खाने की प्लेट (खाली) तथा कटोरियाँ (दोना) बनाकर 5 से 15 रुपये प्रति बन्डल (100 दोने) की दर से सुन्दरगढ़ व अंगुल जिलों में बेचा जाता है। इसकी पत्तियों से टोपी, बरसाती (Rain coat) तथा रस्सियाँ भी बनाकर बेची जाती हैं (चित्र-60)।
10. बेताडू, कोहनडाडा (*Benincasa hispida*) के पीले फूलों को सब्जी व पकौड़ी बनाने के लिए 2 रूपये प्रति फूल तथा पत्तियों को जंगली मशरूम (छत्तो) के साथ मिलाकर सब्जी के लिए मयूरभंज व बाँलनगीर जिलों में 5 से 8 रुपये प्रति 100 ग्राम की दर से बेचा जाता है (चित्र -11 से 12)।
11. ताड़, ताड़ गाछ (*Borassus flabellifer*) की पत्तियों से चटाईयाँ, टोकरियाँ, बरसाती (त्पद बवंज) व झाड़ू तैयार कर अलग-अलग दामों में अंगुल जिले में बेची जाती है (चित्र -63)।
12. चार, तारोप (*Buchanania cochinchinensis* Syn. *B. lanzan*) के बीजों को आदिवासी लोगों द्वारा टाँनिक हेतु स्थानीय व्यापारी को नमक (बेकु) के बदले मे सुन्दरगढ़ में तथा 200 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से मयूरभंज, अंगुल व बाँलनगीर जिलों में बेचा जाता है।
13. पलसा, मुरद, फोर्सा (*Butea monosperma*) के फूलों को होली के अवसर पर प्राकृतिक रंग प्राप्त करने के लिए 18 से 20 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से बाँलनगीर जिले में बेचा जाता है (चित्र-57)।
14. कुजरी, पिन्गु (*Celastrus paniculatus*) के बीजों को तेल निकालने के लिये मयूरभंज जिले में 60 से 80 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से बेचा जाता है (चित्र -48)।
15. नेपयी, मूसली, कुन्जेर साग (*Chlorophytum arundinaceum*) की हरी, कोमल पत्तियों को आदिवासी लोगों द्वारा जून-जुलाई में एकत्र कर सब्जी के लिए 5 से 7 रुपये प्रति गड्डी (250 ग्राम) की दर से अंगुल व बाँलनगीर जिलों में बेची जाती हैं (चित्र -5 से 6)।
16. अकनबिन्दु, किदुवाडा (*Cissampelos pareira*) के जड़ों को चावल की बीयर (हान्डीया) को तेजी से फर्मेन्ट करने के लिए प्रयुक्त दवाई (बाकरो) बनाने के लिए मयूरभंज जिले में 20 रुपये प्रति बन्डल (250 ग्राम) की दर से बेचा जाता है (चित्र -51)।
17. कुन्द्री (*Coccinia grandis*) की ताजे पत्तियों को जंगली मशरूम के साथ मिलाकर सब्जी के लिए मयूरभंज जिले में 5 रुपये प्रति 100 ग्राम की दर से बेचा जाता है (चित्र -13)।
18. सारू साग (*Colocasia esculenta*) के कोमल पत्तियों को बरसात में एकत्र कर डेढ़ माह तक घर में संग्रह कर सकते हैं या 10 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से व कोमल तनों तथा कन्दों को सब्जी तथा चटनी बनाने के लिए मयूरभंज जिले में बेचा जाता है (चित्र -7 से 8)।

1-3. साप्ताहिक बाजार (हाट) के विहंगम दृश्य, 4. नालीखोडा की पत्तियाँ, 5-6. नेपयी साग की पत्तियाँ, 7-8. सेरू साग के कन्द व पत्तियाँ, 9. मूंगा की पत्तियाँ, 10. साज्ञाकान्दा के कन्द, 11-12. बेताडू के पीले फूल व फल, 13. कुन्द्री की पत्तियाँ, 14. तेंतूल की चटनी की पट्टियाँ, 15. अट्टा के फलय, 16. ढूडरी लई की कोमल टहनियाँ, 17. गिरिल के गुलाबी फूल, 18. बेर के फल, 19. सिर आँवला के फल, 20. आँवला के फल, 21. बहेडा के फल, 22-23. बान्सा के कोमल व नये तनों की बिक्री, 24. बान्सा की 'करड़ी', 25. बान्सा की 'हन्डुवा', 26-29. जंगली मशरूम की विभिन्न किस्में।

30-33. साड़ की दाँतून व पत्तियों से बने प्लेट तथा कटोरियाँ, 34. जलाऊ लकड़ी की बिक्री, 35-39. बान्सा के तनो से विभिन्न प्रकार के टोकरियाँ, बर्तन, छन्नी, सूप, सजावटी पीस, चटाईयाँ, 40-42. विभिन्न प्रकार के जड़ी-बूटियों की बिक्री, 43. नागकेशर के सूखे फूल, 44-46. धौरा की लकड़ी से विभिन्न कृषि संयन्त्र, चारपाई, चक्का, 47. आँवला की लकड़ी का आसन, 48. कुजरी के बीज, 49. शराब की बिक्री, 50. चाँवल की 'हान्डीया' की बिक्री, 51. अकनबिन्दु के जड़, 52. कुरई के तने के छाल का पाउडर, 53. चाँवल की 'हान्डीया' को फर्मेन्ट करने के लिए प्रयुक्त 'बाकरो' की बिक्री, 54. फूलों की मालाय 55 कांटा मालती के फूल, 56. कप्पा (रूइ) का एकत्रीकरण, 57. पलसा के फूल, 58. धात्री के फूलय 59 रस्सियाँ, 60. सियाली लता की रस्सियाँ, 61. सबई घास के बंडल, 62. सबई घास की रस्सियाँ, 63. ताड़ की पत्तियों के झाड़ू।

19. ढूडरी लई, डेन्डुआ (*Cyphostemma auriculatum* Syn. *Cayratia auriculata*) के नये सफेद व कोमल टहनियों (2 से 4 फीट) को माह जून-जुलाई में चटनी बनाने के लिए 5 रुपये प्रति गड्डी (10 से 12 टहनियाँ) की दर से अंगुल जिले में बेची जाती है (चित्र -16)।

20. बान्सा, सलिया बान्सा (*Dendrocalamus strictus*) के कोमल व नये तनों (3 से 4 फीट) को अगस्त-सितम्बर माह में उसके बाहरी स्केल को हटाकर तथा कक्कस कर पतले-पतले टुकड़े कर 'करड़ी' के नाम से सब्जी के लिए 20 से 30 रुपये प्रति 500 ग्राम की दर से तथा इन 'करड़ी' को सुखाकर बने पाउडर को 'हन्डुवा' नाम से चटनी बनाने के लिए जाड़ों में 70 से 80 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से बाँलनगीर व अंगुल जिलों में बेचा जाता है (चित्र -22 से 25)।

21. बाँस के तनों से विभिन्न प्रकार के टोकरियाँ (झूड़ी), बर्तन (जलपा), मछली पकड़ने का संयन्त्र (डिमरी व जालम, बरसी-डान्ग, गीर-जाल), छन्नी (छटा), सूप (हटा, कुलज), तीर-धनुष (सोरा, अस्सर) आदि तैयार कर उन्हें 20 से 100 रुपये प्रति नग की दर से मयूरभंज, बाँलनगीर व अंगुल जिलों में बेचा जाता है (चित्र-35 से 39)।

22. साज्ञाकान्दा, बातला कोन्दा, खम्बा आलू (*Dioscorea alata*) के कन्दों को सब्जी के लिए 20 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से सुन्दरगढ़ जिले में बेचा जाता है (चित्र -10)।

23. केन्दू (*Diospyros melanoxylon, D. tomentosa*) के कोमल पत्तियों को एकत्र कर बीड़ी बनाने के लिए ठेकेदारों को पूरे साल भर 20 से 25 रुपये प्रति बन्डल (100 पत्तियों के 25 गड्डीयाँ) की दर से अंगुल व बाँलनगीर जिलों में बेचा जाता है। इसकी लकड़ी से चारपाई के पाये भी बनाकर बेचे जाते हैं।

24. सबई घास, बबई घासो (*Eulaliopsis binata*) को सुदूरवर्ती क्षेत्रों से एकत्र कर बड़े-बड़े बन्डल बनाकर, झाड़ू व रस्सियाँ बनाने के लिए मयूरभंज जिले में 6 से 10 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से बेचा जाता है (चित्र -61 से 62)।

25. कप्पा, बनी कप्पा (*Gossypium hirsutum*) के सूखे फूलों से सफेद रूई को 40 से 50 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से बाँलनगीर जिले में बेचा जाता है (चित्र -56)।

26. कुरई, कुरे, गुची, हातदारे (*Holarrhena pubescens*) के तने के छाल के पाउडर को चावल की बीयर (हान्डीया) को तेजी से फर्मेन्ट करने के लिए प्रयुक्त दवा (बाकरो) बनाने के लिए, मयूरभंज जिले में 15 रुपये प्रति 250 ग्राम की दर से बेचा जाता है (चित्र -52 से 53)।

27. गिरिल, गीरल, जेरहूल, हुतारी (*Indigofera cassioides*) के गुलाबी फूलों को फरवरी- मार्च में सब्जी के लिए 20 से 28 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से सुन्दरगढ़ जिले में बेचा जाता है (चित्र -17)।

28. महुलों, महुआ (*Madhuca longifolia* var. *latifolia* Syn. *M. indica*) के फूलों को सुखा कर खाने के लिए 20 से 25 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से अंगुल जिले में बेचा जाता है।

29. नागकेशर, नागेश्वर (*Mesua ferrea*) के सूखे फूलों को वायु सम्बन्धित रोग ठीक करने के लिए 40 से 50 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से अंगुल जिले में बेचा जाता है (चित्र -43)।

30. मूंगा, सजनी, सोजना, मुगाड़ा (*Moringa oleifera*) के सफेद फूलों, फलियों तथा पत्तियों को सब्जी बनाने तथा रक्त चाप व चेचक के उपचार के लिए क्रमश: 50, 20 व 10 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से अंगुल जिले में बेचा जाता है (चित्र -9)।

31. खजूरी (*Phoenix acaulis*) के पत्तियों को झाड़ू बनाकर 10 रुपये प्रति नग की दर से अंगुल व बाँलनगीर जिलों में बेचा जाता है।

32. सिर आँवला (*Phyllanthus acidus*) के पीले, खट्टे फलों को शीत काल में खाने व चटनी बनाने के लिए 10 से 15 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से बाँलनगीर जिले में बेचा जाता है (चित्र -19)।

33. आँवला, आँवडा (*Phyllanthus emblica*) के फलों को शीत काल में खाने, अचार व औषधि बनाने के लिए 15 से 18 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से सुन्दरगढ़ व बाँलनगीर जिलों में बेचा जाता है। इसकी लकड़ी से महा लक्ष्मी के लिये आसन (खटुली) भी बनाकर 15 से 20 रुपये प्रति नग की दर से बाँलनगीर में बेचा जाता है (चित्र -20)।

34. साड़, रेंगाल, सार्गी (*Shorea robusta*) के हरी पत्तियों को बाँस की छोटी किलियाँ जोड़ कर खाने की प्लेट (थाली) तथा कटोरियाँ (दोना, चौटी) बनाकर 5 से 10 रुपये प्रति बन्डल (80 से 100 दोने) की दर से सुन्दरगढ़, अंगुल, मयूरभंज व बाँलनगीर जिलों में बेचा जाता है (चित्र -31 से 33)। इसके पतले, कोमल व सीधी टहनियाँ (6 से 8 इन्च) को दाँत साफ करने के लिए दाँतून (करकट) को 5 से 10 रुपये प्रति बन्डल (15 से 20 दाँतून) की दर से अंगुल, मयूरभंज व बाँलनगीर जिलों में बेचा जाता है (चित्र -30)।

35. जाम, जाम्बू, कुडा (*Syzygium cuminii*) के फलों को खाने के लिए 10 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से अंगुल व मयूरभंज जिलों में बेचा जाता है।

36. तेंतूल, तेंतूड़ी (*Tamarindus indica*) के फलों से चटनी, तथा सुखाकर 4 × 3 फीट के टुकड़े बनाकर बाजार में 30 से 40 प्रति नग की दर से अंगुल जिले में बेचा जाता है (चित्र -14)।

37. असन, सहज (*Terminalia alata* Syn. *T. tomentosa*) के लकड़ी से कृषि संयन्त्रों के मजबूत हत्थे तैयार कर उन्हें 70 से 80 प्रति नग की दर से बाँलनगीर जिले में बेचा जाता है (चित्र-44 से 46)।

38. बहेडा (*Terminalia bellerica*) के ताजे फलों को 20 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से अंगुल व बाँलनगीर जिलों में औषधि निर्माण हेतु बेचा जाता है (चित्र -21)।

39. हरेड़ा, हड्डा, हरितिका (*Terminalia chebula*) के फलों को 20 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से अंगुल, बाँलनगीर व मयूरभंज जिलों में औषधि निर्माण हेतु बेचा जाता है।

40. धात्री, धाय, धातुक, जादुका, इछावा (*Woodfordia fruticosa*) के फूलों को औषधि निर्माण हेतु स्थानीय व्यापारी को नमक (बेकु) के बदले में सुन्दरगढ़ में तथा 100 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से अंगुल, मयूरभंज व बाँलनगीर जिलों में बेचा जाता है (चित्र -58)।

41. छत्तो, छत्तु (*Termitomyces spp.*) की छोटी (बाली), बड़े व चौड़े (परप) और बटन (बिडोनी) किस्म को सब्जी बनाने के लिए 20 से 50 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से अंगुल, बाँलनगीर व मयूरभंज जिलों में बेचा जाता है (चित्र -26 से 29)।

इन साप्ताहिक बाजारों में उपरोक्त वनस्पतियों के विभिन्न उपयोगी भागों के अतिरिक्त गाय, बैल, बकरी, मुर्गे, ताजी व सूखी मछलियाँ, मिठाईयाँ, लोहे, एलुमिनियम, पीतल, काँसे के बर्तन, लोहे से निर्मित कृषि संयन्त्र, हथियार, सस्ते कपड़े, रस्सियाँ, पोलीथीन, प्लस्टिक से बने घरेलू उपयोगी समान, मिट्टी से तैयार घड़े, हान्डिया, दीपक, बर्तन, पथर के सील-बट्टे, इमाम-जस्ते, मछली पकड़ने के संयन्त्र, सजावटी सामान आदि भी बेचे जाते हैं। इस लेख में इस राज्य के 4 जिलों के 40 जंगली वनस्पतियों के स्थानीय नामों के साथ उनके वानस्पतिक नाम तथा उनके प्रयोग तथा बाजार भाव इस अभिप्राय व आशा के साथ प्रस्तुत किये जा रहे हैं कि यदि इन जंगली पेड़-पौधों तथा उनके उत्पादों का विपणन का कार्य इन आदिवासियों द्वारा सही तकनीकी प्रशिक्षण प्रदान करने के पश्चात स्थाई रूप से बड़े कारोबार की तरह करवाया जाय तो इन आदिवासियों की आर्थिक स्थिति मजबूत होने के साथ-साथ पूरे राज्य व देश की आर्थिक स्थिति भी अपने आप सुदृढ़ होने की प्रबल संभावनायें बनी रहेगीं।

———

कड़ी धूप है जलते पांव।
होते पेड़ तो मिलते छांव।।

वनस्पति वाणी अंक 22 : 79-81(2013)

भारत में पाये जाने वाले औषधीय आर्किड्स

जीवन सिंह जलाल एवं जे. जयंती
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पुणे

ऑर्किड्स विश्वभर में अपने अतिविशिष्ट संरचना वाले फूलों के लिये प्रसिद्ध हैं। किन्तु इनके औषधीय गुणों के बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। विश्व में इनके कुल आर्किडेसी की लगभग 24,000 प्रजातियाँ पायी जाती हैं एवं भारत में लगभग 1300 जातियाँ मिलती हैं। प्राचीन-काल से ही ऑर्किड्स का इस्तेमाल औषधियों के तौर पर किया जा रहा है। औषधीय गुणों वाले ऑर्किड्स का वर्णन सबसे पहले पारम्परिक चीनी चिकित्सा पद्धति में किया गया था। चीनी भेषज-शेननग पेनट्साओचिंग ने 28वीं शताब्दी ईसा पूर्व में अपने मटेरिया मेडिका में *ब्लिटिला स्ट्रिएटा* (*Bletilla stricta*) और *डेनड्रोबियम* जातियों के औषधीय गुणों का वर्णन किया है। इनका उल्लेख प्राचीन यूनानी चिकित्सा में भी मिलता है। यूनानी दार्शनिक थियोफ्रेस्ट्रस ने अपनी पुस्तक *इंक्वायरी इंटू प्लांट्स* में इनका उल्लेख किया है। वनस्पति विज्ञान के जनक थियोफ्रेस्ट्रस (372-371 ई०पूर्व)के द्वारा ही इस वर्ग को 'ऑर्किड' नाम दिया गया था। इस नाम की उत्पत्ति मूलत: यूनानी शब्द ओर्खी से हुई है, जिसका अर्थ "वृषण-रूपी" होता है। पहली शताब्दी में डायोकोरिडस ने भी इस तरह के पौधों का उल्लेख अपनी प्रसिद्ध पुस्तक मटेरिया मेडिका में भी किया है, जिसमें दो स्थलीय ऑर्किड्स तथा उनके औषधीय गुणों का विस्तार से वर्णन किया गया है। भारत में भी ऑर्किड्स का उपयोग वैदिक काल से ही आयुर्वेदिक दवाओं को बनाने में किया जाता रहा है। अष्टवर्गा जो कि आठ दवाओं का मिश्रण है एवं आयुर्वेदिक प्रणाली में च्यवनप्राश बनाने में जिसका प्रयोग किया जाता है, उसमें भी चार ऑर्किड प्रजातियों जीवक (*मलेक्सस मुसीफेरा*), रिशिभक (*क्रिपेडियम एकुमिनेट्म*), रिधि (*हेबीनेरीया इन्टरमीडिया*) और विर्धि (*प्लेटान्थीरा एड्जव्रथाई*) का प्रयोग किया जाता रहा है।

आर्किड की कुछ प्रजातियों से सलीप जो एक प्रकार का पुष्टिवर्द्धक टॉनिक है, तैयार किया जाता है। भारत में ऑर्किड्स का प्रयोग आयुर्वेद, सिद्ध और यूनानी जैसी चिकित्सकीय प्रणालियों में किया जाता है। विभिन्न प्रकार के रोगों जैसे गठिया, बेहोशी, रक्त-शोधक, उबकाई, रेचक, कामोद्दीपक, ट्यूमर, ब्रोंकाइटिस, कसैले और फोड़े, जलता इत्यादि में ऑर्किड्स प्रयोग में लाये जाते हैं। इनमें प्रचुर मात्रा में अल्कलोइड्स, फ्लवोनोइड्स, ग्लाइकोसाइड और फाईटोकैमिकल्स पाये जाते हैं। भारत में लगभग 80 से ज्यादा ऑर्किड प्रजातियों का उपयोग अलग-अलग आदिवासी समुदायों द्वारा पारंपरिक चिकित्सा में किया जा रहा है। प्रस्तुत लेख में भारत में पाये जाने वाले कुछ औषधीय ऑर्किड्स, उनके आयुर्वेद उपचार, वानस्पतिक नाम एवं प्रयोग में आने वाले भागों का विवरण दिया गया है ।

वानस्पतिक नाम	प्रयोगार्थ भाग	चिकित्सीय उपयोग
अकैम्पी कैरिनाटा (Acampe carinata)	जड़	गठिया, नसों का दर्द, बिच्छू और सर्पदंश
अकैम्पी प्रमोरसा (Acampe praemorsa)	जड़	हड्डीफ्रैक्चर व गठिया
एडिस म्ल्टीफ्लोरा (Aerides multiflora)	फूल	कान का दर्द
एडिस ओडोराटा (Aerides odorata)	पूरा पौधा	जोड़ों का दर्द, सूजन, तपेदिक
एओर्किस रोबोरोवस्की (Aorchis roborovskii)	कंद	गठिया
कलेन्थी ट्रिपिलिकाटा (Calanthe triplicata)	जड़	डायरिया,
क्लिओसोटोमा विल्यिमसोनाई (Cleisostoma williamsonii)	पत्ते	हड्डीफ्रैक्चर
शीलोगायेन कोरिमबोसा (Coelogyne corymbosa)	सूडो बल्ब	दर्दनिवारक
शीलोगायेन ओवेलेस (Coelogyne ovalis)	पूरा पौधा	कामोद्दीपक
क्रिपेडियम एकुमिनेट्म (Crepidium acuminatum)	सूडो बल्ब	च्यवनप्राश
सीम्ब्रिडीयम अलोएफोलियम (Cymbidium aloifolium)	पूरा पौधा	गठिया और स्नायु संबंधी विकार
सीम्ब्रिडीयम एरिडिओडिस (Cymbidium iridioides)	पत्ते	डायरिया, घावों

1. *अकैम्पी कैरिनाटा (Acampecarinata)* 2. *अकैम्पी प्रमोरसा (Acampepraemorsa)* 3. *शीलोगाऐन ओवेलस (Coelogyneovalis)* 4. *सीम्बिडीयम एरिडिओडिस (Cymbidium iridioides)* 5. *डेन्डोबियम फिम्ब्रिएट्म (Dendrobium fimbriatum)* 6. *डेन्डोबियम नोबाएल (Dendrobium nobile)* 7. *डेन्डोबियम ओवेट्म (Dendrobium ovatum)* 8. *बादा टेसेलाटा (Vanda tessellata)*

सायप्रिपेडियम एलिगन्स (Cypripedium elegans)	पूरा पौधा	तंत्रिका विकार
डेक्टायलोरिजा हटागिरीया (Dactylorhiza hatagirea)	कंद	कामोद्दीपक
डेन्ड्रोबियम हेर्बेसियम (Dendrobium herbaceum)	पत्ते	संक्रमित घावों
डेन्ड्रोबियम फिम्ब्रिएट्म (Dendrobium fimbriatum)	सूडो बल्ब	कामोद्दीपक
डेन्ड्रोबियम मोस्केट्म (Dendrobium moschatum)	पत्ते	कान का दर्द
डेन्ड्रोबियम नोबाइल (Dendrobium nobile)	पूरा पौधा	घाव और तंत्रिका विकार
डेन्ड्रोबियम ओवेट्म (Dendrobium ovatum)	पौधा	पेट में दर्द और पित्त स्राव
एपिपेक्टेस हेलिबोरायनि (Epipactis helleborine)	पूरा पौधा	तंत्रिका विकार
यूलोफीया डबिया (Eulophia dabia)	कंद	रक्त शोधक
यूलोफीया एपीडेन्ड्रेया (Eulophia epidendraea)	कंद	पेट के कीड़ों को दूर करने की दवा
यूलोफीया स्पेक्टाबिलिस (Eulophia spectabilis)	कंद	ब्रोंकाइटिस, तपेदिक
जिम्नाडीना ओर्किड्स (Gymnadaenia orchidis)	कंद	डायरिया
हेबीनेरीया एक्युमेनाटा (Habenaria acuminate)	कंद	टॉनिक
हेबीनेरीया कोमलिनिफोलीया (Habenaria commelinifolia)	कंद	वीर्यपात और मूत्र समस्याओं मे
हेबीनेरीया क्रिनिफीरा (Habenaria crinifera)	पूरा पौधा	सिरदर्द
हेबीनेरीया इन्टरमीडिया (Habenaria intermedia)	कंद	च्यवनप्राश
हेबीनेरीया मारजिनाटा (Habenaria marginata)	कंद	घातक अल्सर
हेबीनेरीया लोनजीकोर्निकुलेटा (Habeneria longicorniculata)	कंद	दाग का इलाज
हेबीनेरीया इस्टोक्सई (Habenaria stocksii)	कंद	टॉनिक
लेपारीस ओडोराटा (Liparis odorata)	पत्ते	कैंसर अल्सर और अवसाद
लुऊसीया तेनुईफोलिया (Luisia tenuifolia)	पूरा पौधा	फोड़े और ट्यूमर
लुऊसीया ट्राईकोराईजा (Luisia trichorhiza)	पूरा पौधा	मांस पेशियों का दर्द
मलेक्सस सेलेन्ड्रोस्टेचिया (Malaxis cylindrostachya)	सूडो बल्ब	टॉनिक
मलेक्सस मुसीफेरा (Malaxis muscifera)	सूडो बल्ब	च्यवनप्राश
ओबेरोनेया कोलीसेन्स (Oberonia caulescens)	पूरा पौधा	लीवररोगों
ओबेरोनेया फाल्कोनेरी (Oberonia falconeri)	पूरा पौधा	हड्डी फ्रैक्चर
फाएस टैन्करविल्लाई (Phaius tankervilleae)	सूडो बल्ब	फोड़े और घाव
फोलीडाटा आर्टीकुलेटा (Pholidata articulata)	पूरा पौधा	हड्डी फ्रैक्चर
फोलीडाटा एम्ब्रिकाटा (Pholidata imbricata)	सूडो बल्ब	गठिया
फोलीडाटा पलीडा (Pholidata pallida)	सूडो बल्ब	गठिया
प्लेटान्थीरा एड्जव्रथाई (Platanthera edgeworthi)	कंद	च्यवनप्राश
रीन्कोस्टाइलिस रेट्यूसा (Rhynchostylis retusa)	पूरा पौधा	गठिया
सात्यीम नेपलेन्सि (Satyrium nepalens)	कंद	मलेरिया, पेचिश
वान्डा टेस्सेलाटा (Vanda tessellata)	जड़	अपच, ब्रोंकाइटिस, गठिया और बुखार
वान्डा टेस्टेसीया (Vanda testacea)	पूरा पौधा	स्नायु संबंधी विकार, गठिया और बिच्छू डंक

———

सुन्दरढुंगा क्षेत्र की वानस्पतिक विविधता एवं उनके औषधीय उपयोग

आर. मणिकन्दन, अरविन्द कुमार एवं **सुनील कुमार श्रीवास्तव**
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

इस पर्वतीय वन प्रभाग का मुख्यालय जिला बागेश्वर है। प्रभाग में अनेकों मनोहारी दृश्य स्थल हैं, उत्तर में पंचाचूली (6904 मी.) नन्दाकोट और पूर्व में नन्दा देवी (7431 मी.) चोटियां हैं। प्रसिद्ध पिण्डारी ग्लेशियर बागेश्वर से 82 किमी दूरी पर धाकुरी वन खण्ड से लगभग 34 कि.मी. उत्तर की ओर स्थित है। सुन्दरढुंगा एवं कफनी ग्लेशियर भी इस वन प्रभाग के अन्तर्गत आते हैं। सुन्दरढुंगा पत्थरों की घाटी में स्थित है जो विभिन्न वन मोटर मार्गो, अश्व-मार्गों व पगडंडियों से जुड़ा हुआ है। इसकी समुद्रतल से ऊंचाई लगभग 1300 मीटर से 6050 मी. तक है। प्रभाग के अंतर्गत सबसे ऊंचा स्थान नंदा देवी (7431 मी.) तथा सबसे कम ऊंचाई वाला स्थान सरथू व जैगम के संगम पर शेराघाटा (716 मी.) है। भूमि का स्वरूप मुख्यत: सरयू तथा उसकी सहायक नदियों पूर्वी रामगंगा, पिण्डर द्वारा अधिरोहित है।

भौमिक शैल एवं मृदा - यह क्षेत्र लघु हिमालय श्रेणी में आता है, ऊपरी क्षेत्र का कुछ उत्तरी भाग बृहद् हिमालय श्रेणी एवं मध्य हिमालयन श्रेणी के अन्तर्गत आता है। इस वन प्रभाग के वन खण्ड 79°28′30″ व 80°29′30″ पूर्वी देशान्तर तथा 29°58′45″ व 30°9′15″ अक्षांश के मध्य में स्थित है। प्रभाग की तीन प्रमुख पट्टियाँ हैं, जिनका क्रम पश्चिम, उत्तर-पश्चिम, पूर्व, तथा दक्षिण -पूर्व है। लगभग 40 कि.मी. चौड़ी पट्टी रूपान्तरित शैलों से युक्त हैं, इस क्षेत्र की शैलों में क्वार्टजाइट, चूना पत्थर, मैग्नेसाइट, बेस मेटल व स्लेट पाये जाते हैं। शिलाओं के विघटन व क्षरण से मृदा का निर्माण होता है, तथा मृदा का स्वरूप शिलाओं के प्रकार और विशेष वातावरण पर निर्भर करता है। वास्तविक रूप से मृदा का निर्माण नदियों द्वारा कटाव पर निर्भर करता है। क्वार्टजाइट के विघटन के द्वारा बजरी एवं बालू वाली मिट्टी प्राप्त होती है, जो दोमट में परिवर्तित हो जाती है। शैल एवं स्लेट के विघटन द्वारा तैयार होने वाली मृदा चिकनी तथा लोमयुक्त होती है। लाइम स्टोन के विघटन से तैयार मृदा लाल तथा काली मिट्टी जैसी होती है। ग्रेनाइट के विघटन से मृदा रेतीली या दोमट प्रकार की होती है।

जलवायु - इस वन प्रभाग में विविध ऊंचाई के क्षेत्र होने के कारण प्राकृतिक रूप से जलवायु में भिन्नता होना स्वभाविक है। शीतकाल में ऊंचाई वाले क्षेत्रों में अत्यधिक ठण्ड तथा 1520 मी. से अधिक ऊंचाई वाले स्थानों पर हिमपात होता है। कभी-कभी इससे नीचे वाले स्थानों में भी हिमपात हो जाता है। दिसम्बर से फरवरी तक अत्यधिक ठण्ड होती है एवं प्रात:काल घने कोहरे से ढका रहता है।

हिमालय के शीतोष्ण बांज ओक वन - ये वन मुख्य रूप से चीड़ के वनों के ऊपर गर्म अभिमुख 1800 से 2100 मी. तथा उत्तरी ठण्डी घाटियों में 1500 से 1800 मी. की ऊंचाई वाले क्षेत्रों में सामान्यत: सांग तथा लौहरखेत में पाये जाते हैं। यहाँ *क्वैरकस ल्यूकोट्राइकोफोरा, क्वैरकस ग्लौका, क्वैरकस लैनाटा, क्वैरकस फ्लोरिबंडा, एलनस नैपानैंसिस, एसर औगलोंगम, एस्कुलस इन्डिका, लयोनिया औवेलिफोलिया, क्राइसोपोगोन फुलवस, फ्लीमिंजिया, मेक्रोफायला, रूबस इलिप्टीकस, वुडफोर्डिया फ्रुटीकोसा,* इत्यादि वनस्पतियां पायी जाती हैं।

आर्द्र देवदार वन - इस वन प्रभाग में प्राकृतिक देवदार वन नहीं है, अधिकतर बांज के क्षेत्रों में देवदार के रोप वन पाये जाते हैं। ये छोटे क्षेत्रों में 1370 से 2010 मी. के बीच उत्तरी अभिमुख या घाटियों के किनारे अधिकांश ऐसे ठण्डे क्षेत्रों में हैं, जहां औसत तापमान समीपस्थ क्षेत्रों से कम हैं। ऐसे क्षेत्र कौसानी, ग्वालदम, कफल टौंक आदि हैं। देवदार वन क्षेत्रों में अल्पमात्रा में *टैक्सस बकाटा, बरबेरिस एशियाटिका, इन्डिगोफेरा जिरारडियाना, फ्रेगेरिया नूबीकोला, प्रिमूला, रोडोडेन्ड्रॉन कैम्पैनुलेट्म* तथा *एकोनिटम जूनिपरस* प्रकार की वनस्पतियाँ पायी जाती हैं।

वनों को क्षति पहुंचाने वाले कारक

(1) वनों को क्षति पहुंचाने वाले कारकों में अग्नि सबसे बड़ा महत्वपूर्ण कारक है। चीड़ के वन इसके लिये बेहद संवेदनशील हैं। चीड़ के वनों में लगी आग के फैलने से समीप की अन्य प्रजातियों के वनों को भी क्षति होती है। इस वन प्रभाग में वनों की अग्नि से सुरक्षा करना, वन वर्धन एवं प्रबन्धन के लिये सबसे महत्वपूर्ण है।

(2) उत्खनन : कई स्थानों में भवन निर्माण, दीवाल-बंदी आदि कार्यो हेतु पत्थर की छोटी-छोटी खदानों से पत्थर निकाले जाते हैं। विकास कार्यो के अंतर्गत मार्गों के निर्माण आदि कार्यो के समय लापरवाही से मलवा ढलान में गिराया जाता है। इन कार्यो से न केवल वनों की क्षति होती है, अपितु भयंकर भूस्खलन एवं मृदा अपक्षरण की संभावनायें भी बढ़ जाती है। ऐसे निर्माण के समय उपचार का प्रावधान भी सम्बन्धित योजनाओं में निहित होना आवश्यक है।

(3) वनों के साथ छेड़छाड़ करने से वनों का विनाश हो रहा है। जैसे कि शाखाकर्तन, घास काटना, छाल निकालना, ईधन के लिये हरे वृक्ष काटना, घेर-बाढ़ तथा शाक बेलों एवं घास भण्डारण हेतु लकड़ी काटना, अवैध पातन, लीसा संग्रहण, शहद एकत्रीकरण अतिक्रमण तथा गैर वानिकीय उद्देश्यों हेतु भूमि का स्थानान्तरण आदि के कारण वनों का विनाश हो रहा है।

(4) वर्तमान में वृक्षारोपित क्षेत्रों को छोड़कर सम्पूर्ण वन क्षेत्र में चराई की जाती है। सभी प्रकार के पशु, भेड़ बकरियां आदि इस वन प्रभाग के वनों में चरती हैं। पालतु पशुओं की चराई पर वर्तमान समय में कोई प्रतिबन्ध नहीं होने से वनों का ह्रास हो रहा है ।

(5) सामान्य रूप से हरे स्वस्थ वृक्षों पर कीटों द्वारा की जाने वाली कोई क्षति सामने नहीं आयी है। कीट मुख्यत: छोटे पौधों, आग, आंधी, तूफान से क्षतिग्रस्त तथा अन्य कारणों से अस्वस्थ आर्द्र सूखे वृक्षों पर आक्रमण किया करते हैं। *प्लेटिपस बाइकोर्मिस*, शेट होल बारर नामक कीटों द्वारा गिरे, अस्वस्थ एवं क्षतिग्रस्त वृक्षों में तेजी से छेद बनाकर काष्ठ की दशा खराब कर दी जाती है। *इप्सलोमिफोलिया* तथा *क्रिप्टोरिंकस ब्रान्डीसाई* भी अस्वस्थ तथा गिरे वृक्षों पर आक्रमण करते हैं। *यूजीफेरा सिड्रेला* द्वारा देवदार के बीजों को क्षति पहुंचाते हैं। *एग्रोस्टिस इप्सीलोन* कीट पौधालय में देवदार की पौध को क्षति पहुंचाता है। ग्रासहोपर भी बीजांकुरों को क्षतिग्रस्त करते हैं।

(6) वनों को क्षति पहुंचाने वाले अन्य कारकों जैसे कि अतिवृष्टि, आंधी तूफान, तडित, हिमपात, हिमनद तथा ओलावृष्टि के कारण वन नष्ट हो जाते हैं।

कीड़ा-जड़ी (यारसा-गुम्बो) का संग्रहण- बागेश्वर वन प्रभाग के कपकोट रेंज के हिमाच्छादित आरक्षित एवं वन पंचायतों में कीड़ा-जड़ी (*कोडिसेप्स साथनेन्सिस*) पायी जाती है। जिसे वन निगम एवं विभागीय नियमानुसार बर्फ पिघलने के उपरान्त एकत्रित किया जाता है। कपकोट वन क्षेत्र नवम्बर से अप्रैल तक बर्फ से ढके रहते हैं, इन क्षेत्रों में बर्फ के नीचे एक कीड़ा पाया जाता है, जिसको कीड़ा जड़ी या यारसा-गुम्बो कहते हैं। इस कीड़ा घास की अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में काफी मांग होने के कारण इसकी अवैध तस्करी भी होती है। यह कीड़ा-जड़ी बर्फ के नीचे छुपी घासों में पायी जाती है। हिमालय के मिलनी क्षेत्रों में बर्फ में लोग इसको माह मई अन्त व जून में ढूंढते हैं। उस समय बर्फ गलने लगती है, बर्फ को हटा कर इस कीड़ा-जड़ी को एकत्रित किया जाता है।

कपकोट क्षेत्र के गोगिना से लगे हिरामणी ग्लेशियर, झूनी गांव के ऊपर कफनी ग्लेशियर में ग्राम खाती गांव के समीप पिण्डारी ग्लेशियर, सुन्दरढुंगा ग्लेशियर, ग्राम बादम, सुराग वाले बुग्यालों में बदियाकोट, बोरखोर वाले कीड़ा-जड़ी का विदोहन करते हैं । 2009 में इसकी तस्करी को रोकने के उद्देश्य से विदोहन का कार्य वन पंचायत को दे दिया गया, ताकि सम्बन्धित ग्राम के लोग वन

दरोगा के माध्यम से विदोहन का कार्य कर वन निगम को दे सकें एवं नीलामी द्वारा बेचे गये कीड़ा-जड़ी का सरपंच के माध्यम से लोगों को सीधा लाभ हो।

कीड़ा-जड़ी के विदोहन में वन निगम या अन्य कार्यदायी संस्था पर विशेष निगरानी रखनी होगी अन्यथा लोगों को उत्पाद का उचित मूल्य भी नहीं मिल पायेगा तथा तस्करी को बढ़ावा मिलेगा।

कीड़ा-जड़ी (यारसा-गुम्बो) का औषधीय महत्व- *कोडिसेप्स सायनेन्सिस* (कीड़ा-जड़ी) एक कवक है, जो हिमालय के उच्च पहाड़ी क्षेत्रों में कुछ कैटरपिलर पर रहता है। *कोडिसेप्स सायनेन्सिस* खांसी, क्रोनिक ब्रोंकाइटिस श्वांस की बीमारियों, गुर्दा रोग, रात में पेशाब का अधिक आना, पुरूष यौन समस्याओं, एनीमिया, अनियमित दिल की धड़कन, उच्च कोलेस्ट्राल, यकृत रोग, चक्कर आना, कमजोरी, अवांछित वजन घटाने इत्यादि बीमारियों के इलाज करने में प्रयुक्त की जाती है। यह प्रतिरक्षा तंत्र को मजबूत बनाती है, तथा एथलेटिक प्रदर्शन में भी सुधार लाती है। कोडिसेप्स एक उत्तेजक टॉनिक है, जो ऊर्जा वृद्धि, सहन शक्ति बढ़ाने और थकान कम करने के लिये प्रयुक्त की जाती है। फेफड़े तथा त्वचा कैंसर में कीड़ा-जड़ी अत्यन्त प्रभावकारी है। प्राचीन समय मे तिब्बत व नेपाल के उच्च हिमालय क्षेत्रों में याक चरवाहों द्वारा इसकी खोज की गयी थी। बसंत में ऊंचाई पर चराई के बाद उनके जानवरों में अधिक ऊर्जा का संचरण होने लगा जिसके कारणों की खोज करने पर इस अद्‌भुत प्रजाति का पता लगाया गया। कोडिसेप्स मशरूम का प्रथम लिखित अभिलेख चीन का है। इसका पारम्परिक चीनी चिकित्सा में इस्तेमाल किया गया है, जैसे गुर्दे, फेफड़े, दिल की बीमारियों, पुरूष और महिला यौन रोग, थकान, कैंसर हिचकी ओर गंभीर चोट के दर्द को दूर करने के लिए तथा तपेदिक, बवासिर जैसे रोगों के निदान में ।

दुर्लभ प्रजातियां- सुन्दरढुंगा क्षेत्र में वानस्पतिक सर्वेक्षण के द्वारा कुछ दुर्लभ प्रजातियाँ पायी गयी हैं - *एसर केसियम, एकोरस कैलेमस, बरबैरिस एरिस्टाटा, डेलफिनियम डैनुडेटम, डायोस्कोरिया डेलटिडिया, हैबिनेरिया पैक्टीनेटा, होलबोइल्ला लेटिफोलिया, मोरिना लोंगिफोलिया, परनैसिया नुबीकोला, पॉलिगोनेटम वरटीसिलेटम, सॉसुरिया ऑवेलेटा, स्कीमिया एन्क्युटिलिया, स्वरसिया अलाटा, थैलिक्ट्रम फोलियोलोसम* एवं *आईरिस कुमांयुनेन्सिस, एऑर्किस नाना, अरनेबिया बेन्थमी, टैक्सस वॉलिचियाना एकोनिटम हैट्रोफाइलम, एकोनिटम बायोलेसियम, एन्जीलिका ग्लाउका, डेक्टाइलोराइजा हैटाजिरिया, मेकोनोप्सिस एक्यूलिएटा, पिक्रोराइजा कुर्रूआ, रिह्यम बैल्बीएनम* इत्यादि प्रजातियाँ पायी जाती हैं।

सुन्दरढुंगा क्षेत्र में पायी जाने वाली वनौषधीय प्रजातियाँ

वानस्पतिक नाम	स्थानीय नाम	प्रकृति	प्राकृतवास	प्रयुक्त प्रभाग	उपयोगिता
आटिमिसिया नीलागिरिका	पाती	बहुवर्षीय शाक	1500 मी. से 2700 मी तक मोटर मार्गो, बंजर व कृषि भूमि के समीप	पूरा पौधा विशेषकर फूल व जड़	एन्टीसेप्टिक, क्षुधावर्धक, पत्तियां व फूल, श्वांस व मानसिक रोगों में प्रयुक्त किया जाता है।
एकोरस केलेमस	बच	--	शीतोष्ण व उपहिमाद्रिय क्षेत्र	मूल स्तम्भ	वमन कारक, इसका उपयोग अतिसार, ब्रोंकाइटिस तथा सर्पदंश के उपचार में होता है।
एन्जिलिका ग्लोउका	गन्दरायण	शाक	चट्टानी भागों में पाया जाता है	जड़ एवं पूरा पौधा	पाचक हृदय रोगों में गुणकारी व शक्तिवर्धक मसाले के रूप में प्रयुक्त
डैक्टिलोराइजा हैटेजिरिया	सालमपंजा	शाक	2400 मी. से ऊपर पाया जाता है	जड़	खांसी तथा आंव के विकारों में प्रयुक्त होता है।
कैनाबिस सेटाइवा	भांग	क्षुप	उपोष्ण क्षेत्र	पौधा व फल	मादक द्रव्य, अमाशय के रोगों में दर्दनाशक, शामक व पीड़ाहर दवाओं के रूप में प्रयुक्त होता है।
जैन्सियाना कुर्रू	कड़वी	शाक	1500 मी से ऊपर हिमाद्रि उपहिमाद्रि समसीतोष्ण वनों में	जड़	उदर पीड़ा तथा बुखार में लाभकारी।
डैल्फिनियम डेनुडेटम	निरविषि	बहुवर्षीय शाक	2400 मी से ऊपर 3000 मी. तक पाया जाता है	जड़	ज्वर, वातरोग, रक्त दोष, दमा में उपयोगी, वमन रोकने व दांत के दर्द में भी लाभकारी

थाइमस सरफाईलम सब प्रजाति *क्यून क्यूकॉस्अस*	वन अजावाइन	शाक	1500 व 2700 मी॰ के मध्य	पूरा पौधा	कमजोर दृष्टि, जिगर व पेट की शिकायत एवं मूत्र सम्बन्धी रोग में प्रयुक्त। बीज कीटनाशक व तेल दांत दर्द में प्रयुक्त होता है।
थेलिक्ट्रम फोलियोलोसम	भंगिरी	शाक या छोटी क्षुप	1500 व 2400 मी. के मध्य	जड़	फोड़ा एवं फुन्सी में जड़ों का लेप लाभकारी होता है, अपच में भी काम आता है।
पिक्रोराइजा कुरूआ	कुटकी	शाक	हिमाद्रि वनों में खुले अथवा चारागाहों में 2700 मी. की ऊंचाई पर पाया जाता है	जड़	बुखार, अपच एवं रेचक निर्माण में प्रयोग में लाया जाता है।
साइनोपोडोफाइलम हैक्जैन्ड्रम	वन ककड़ी	शाक	2700 मी. से अधिक ऊंचाई पर	राइजोम	रेचक, उद्दीपक तथा यकृत सम्बन्धित दवाओं में प्रयुक्त होता है।
पोटैन्टिला प्रजाति	बज्रदंती	बहुवर्षीय शाक	1800 व 2700 मी. के मध्य	पत्तियां व जड़	दंन्त मंजन बनाने में प्रयुक्त होता है।
पॉलिगोनेटम बरटीसिलेटम	महामेदा	शाक	-	जड़	शक्तिवर्धक व ज्वर नाशक
बर्जिनिया सिलियाटा	पाषाणभेद / शिलफोड़ा	शाक	1800 व 3000 मी. तक	जड़ व पत्तियां एवं सम्पूर्ण पौधा	अतिसार, गुर्दा रोग, बुखार व फोड़े फुन्सी के उपचार में प्रयुक्त होता हैं
बरबेरिस एसियाटिका	किलमोड़ा	क्षुप	600 से 2600 मी. तक की ऊंचाई पर	सम्पूर्ण पौधा जड़ व तना विशेष रूप से	पाण्डुरोग व बुखार के उपचार में बारबेरिन प्रयुक्त होता है जोकि जड़ों व तने के छिलके से तैयार किया जाता है।
बरबेरिस चित्रिया	दारू हल्दी	क्षुप	1800 से 3000 मी. तक की ऊंचाई पर	सम्पूर्ण पौधा, एवं जड़ व तना विशेष रूप से उपयोगी	जड़ चर्म रोग, अतिसार, बुखार चक्षु रोग एवं मलेरिया में प्रयुक्त होता हैं।
वयोला प्रजाति	वनप्सा	शाक	पूरे वन क्षेत्र में 2000 से 2700 मी के मध्य	जड़, फल एवं पूर्ण पौधा	जड़ वमनकारक, फल मदकारक एवं फेफड़ों के रोगों में लाभकारी तथा पौधा ज्वर नाशक होता है।
वेलिरियाना हार्डविकाई	समोया	शाक	1500 से 2700 मी. तक	जड़	उद्दीपक, रक्त शोधक, वायुहर एवं धूपबत्ती बनाने में प्रयुक्त
साल्विया प्रजाति	फणिया	शाक	700 से 2000 मी. तक	जड़ एवं पत्तियां	खांसी दमा व गले दर्द में उपयेागी
सोलेनम नाईग्रम	मकोय	शाक या क्षुद्र क्षुप	2500 मी. तक पाया जाता है।	सम्पूर्ण पौधा उपयोगी	ज्वर, वमन व रक्त विकार में उपयोगी
सेलिनियम वालिचियानम	भूतकेशी	बहुवर्षीय शाक	1800 से 2700 मी. तक चारागाह वाले स्थानों पर	जड़	बलवर्धक, रक्त शोधक व कीट नाशक दवाईयां बनाई जाती हैं।
स्कीमिया एन्क्यूटिलिया	नैर	शाक	1500 व 2700 मी. तक की ऊंचाई पर	पत्तियां	वायुशोधक एवं धूप बनाने में। चेचक की बीमारी में भी उपयोगी
स्वैरसिया चिरायता	चिरैता	क्षुप	1500 व 2700 मी. तक की ऊंचाई पर	सम्पूर्ण पौधा	कड़वा, बलवर्धक ज्वर नाशक एवं रेचक में उपयोगी
हेडिकियम स्पाइकैटम	कपूर कचरी	शाक	उपोष्ण कटिबंध में 1500 से 2700 मी. तक	जड़	आमाशयी विकार, वायु विकार, वायुहर, बलवर्धक, उद्दीपक, कफ नाशक, जिगर रोग, अतिसार एवं सर्पदंश में प्रयुक्त।
एस्कुलस इण्डिका	पंगर	वृक्ष	1400 से 2700 मी. तक बांज एवं मिश्रित वनों में	फल एवं बीज	फल घोड़ों के उदरशूल में दिया जाता है। बीज का तेल गठिया रोग में लाभकारी होता है।
ज्यूग्लंस रीजिया	अखरोट	वृक्ष	3000 मी. तक बांज एवं फर वनों में	छाल, पत्तियां एवं फल	छाल कृमि नाशक, अपक्षालक पत्तियां कसैली एवं बलवर्धक बल गठिया रोग में प्रयुक्त, छाल का उपयोग रजंक बनाने में भी किया जाता है।

1. सुन्दरढुंगा मे *क्वैरकस-रोडोडेन्ड्रोन* वन क्षेत्र का दृश्य 2. *ओस्बेकिया स्टीलेटा* 3. *रूबस पेनिकुलेट्स* 4. *मोरिना लोंगीफोलिया* 5. *स्ट्रोबाईलेन्थस एट्रोपुरपुरियस* 6. *चिरायता बाईफोलिया* 7. *डायोस्कोरिया डेल्टोएडिया* 8. *सैलिक्स डेन्डीकुलेटा* 9. *एकोरस कैलामस*

टैक्सस वॉलिचियाना	थुनेर	वृक्ष	फर वनों में	पत्तियां फल व छाल	इसमें टैक्सॉल नामक रासायनिक तत्व पाया जाता है, जोकि कैंसर के उपचार में उपयोगी होता है। पत्तियां दमा, श्वांस रोग एवं मिर्गी के रोगों में उपयोगी है।
लयोनिया ऑवेलिफोलिया	अयांर	वृक्ष	उपोष्ण कटिबन्ध क्षेत्रों में चीड़ एवं बांज के वनों में 1200 से 2400 मी. तक	पत्तियां एवं कलिकायें	कीट नाशक एवं त्वचा रोगों में उपयोगी।
डायोसकोरिया डेलटोयडिया	हार्विस	आरोही	1500 मी. तक	आर्कद	डिमजेनीन नामक क्षाराभ का स्रोत जो गर्भ रोधी दवाई बनाने के काम आता है, आजकल परिवार नियोजन में प्रयुक्त होता है।

———

वनस्पति वाणी अंक 22 : 87-89(2013)

ऊपरी गंगा रामसर साइट (ब्रिजघाट से नरोरा) के कुछ महत्वपूर्ण औषधीय पौधे

आरती गर्ग एवं **विनीत कुमार सिंह**
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

प्रवाह के आधार पर गंगा के मैदान को तीन भागों में विभक्त किया गया है– ऊपरी गंगा के मैदान, मध्य गंगा के मैदान एवं निचली गंगा के मैदान। ऊपरी गंगा के मैदान का विस्तार ऋषिकेश से लेकर नरोरा तक सीमित है, जो लगभग 300 कि.मी. लंबा है। ऋषिकेश में प्रवेश करने के बाद यह नदी हरिद्वार में प्रवेश करती है, जो दायें तट पर स्थित एक धार्मिक नगर है, तत्पश्चात यह इसी दिशा में निरंतर बहती हुई दक्षिण पूर्व की ओर जाती है।

ऊपरी गंगा रामसर साइट, उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर में अवस्थित ब्रिजघाट से नरोरा की लगभग 82 कि.मी. की दूरी को 'रामसर नमभूमि' का दर्जा प्रदान किया गया है, जो इस प्रदेश की एकमात्र रामसर साइट है। यह कई अदभुत एवं अनोखे जीव-जंतुओं एवं औषधीय पादपों का संरक्षित निवास स्थान है। गंगा, हमारे देश की राष्ट्रीय जलीय जीव 'गंगा डॉलफिन या सूंसू' (*प्लैटेनिस्टा गैंजेटिका*) और जल स्तनधारियों की कई प्रजातियों का पोषण करती है। गंगा का यह तटवर्ती क्षेत्र आर्थिक एवं औषधीय महत्व की कई पादप प्रजातियों को जलावास प्रदान करता है। इस क्षेत्र में पाये जाने वाले बहुत से पेड़-पौधों में महत्वपूर्ण औषधीय गुण विद्यमान हैं, जिनके उपयोग से विभिन्न रोगों का निवारण किया जाता है।

प्रस्तुत लेख में ऊपरी गंगा रामसर साइट में पाये जाने वाले कुछ महत्वपूर्ण औषधीय पादपों का उल्लेख किया गया है, जिनका प्रयोग स्थानीय लोग घरेलू चिकित्सा के रुप में करते हैं। प्रत्येक प्रजाति का हिन्दी स्थानिक नाम, उसका प्रारुप, वितरण एवं उपयोग का संक्षिप्त विवरण निम्न है।

अकालिफा इंडिका, कुप्पी (शाक), कुल - यूफोर्बियेसी,
उपयोग: श्वास विकारों में उपयोगी है। पत्तियों का अर्क निकालकर फोड़े-फुंसियों पर लगाते हैं।

आधाटोडा जिलेनिका, अडूसा (शाक), कुल - अकैंथेसी
उपयोग: फेफड़े से संबंधित बीमारियों में जैसे- खांसी, बलगम, दमा आदि विकारों में आराम पहुँचाता है।

वनस्पति वाणी अंक 22 : 90-95(2013)

प्रायोगिक वानस्पतिक उद्यान, मध्य क्षेत्रीय केन्द्र, इलाहाबाद के औषधीय वनस्पतियों की संक्षिप्त जानकारी

ए. ए. अंसारी, अर्जुन प्रसाद तिवारी एवं **भोलानाथ**
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

परिचय– मध्य क्षेत्रीय केन्द्र, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, की स्थापना उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जनपद में 13 अप्रैल 1962 को प्रयाग रेलवे स्टेशन व आई. ई. आर. टी. पॉलीटेक्निक के समीप एक शताब्दी पुराने आयुक्त कार्यालय की लगभग 7 एकड़ भूमि में की गई थी, तत्पश्चात् लगभग 43 वर्ष बाद 19 नवम्बर 2004 में उसी परिसर में वर्तमान कार्यालय भवन व आवासीय परिसर का निर्माण हुआ। कार्यालय परिसर से लगा हुआ एक प्रायोगिक वानस्पतिक उद्यान भी है, जिसे लगभग 2 एकड़ में विस्तारित किया गया है तथा आवासीय परिसर एवं अन्य खाली जगहों पर भी पौधे लगाये गये हैं। उद्यान के कुछ भाग ऐसे हैं जहां प्राकृतिक रूप से उग रहे वृक्ष, झाड़ियां, लतायें व अन्य पौधों को उसी तरह प्राकृतिक अवस्था में रखा गया है। उक्त उद्यान में वृक्ष, शाकीय पौधे झाड़ियां, लतायें एवं जलीय पौधों की अनेक प्रजातियां हैं। उत्तर भारत की प्रमुख नदियां गंगा तथा यमुना के संगम तट पर बसे इलाहाबाद नगर की भौगोलिक स्थिति 25°28′ उत्तरी अक्षांश तथा 81°54′ पूर्वी देशान्तर तक तथा कुल शहरी क्षेत्रफल 62 वर्ग कि.मी. है। यहां की भूमि समतल तथा अत्यधिक उपजाऊ है। शीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र में स्थित होने के कारण यहां जाड़े के मौसम में अधिक जाड़ा तथा गर्मी के मौसम में अधिक गर्मी होती है। यहां वर्षा का समय जून से लेकर सितंबर तक होने वाली वार्षिक वर्षा का औसत 1,027 मि.मी. है। आकार-विस्तार में छोटा होने पर भी इस क्षेत्रीय प्रायोगिक वनस्पतिक उद्यान में संरक्षित औषधीय वनस्पतियों की उपलब्धता अत्यन्त समृद्ध एवं अद्वितीय है। यह परिसर गंगा नदी के कछार के समीप है, इसलिए यहां की गांगेय बलुई मिट्टी बहुत ही उपजाऊ है।

इस उद्यान में पेड़, शाकीय, लता व अन्य पौधों की लगभग 394 जातियां पाई जाती हैं, जिनका संबंध पुष्पीय पौधों के 98 कुलों से है। इन जातियों में औषधीय, आर्थिक महत्व, सुन्दर व विरल पौधे भी हैं। उद्यान को कई भागों में बांटा गया है, जैसे-आगमन, गुलाब, अबीजपत्रीय, औषधीय, वृक्ष, दूब घास के दो लॉन, एक बड़ा व एक छोटा पोखर, तथा एक हरित गृह है, जिसमें ऑर्किड, फर्न व विरल पौधों को रखा गया है। यहां सुन्दर पौधों व गुलाब की कई किस्में लगाई गई हैं जैसे- पलास, कचनार, बक्काइन, केसिया, क्रोटान, जामुन, मुसेन्डा, नीम, मुलसरि, कुचला, रिसि, आंवला, अशोक, रीठा, आदि। बरगद का पुराना व बृहद आकार का पेड़ रेलवे क्रासिंग की ओर है। उद्यान में कृष्णवट भी है, जिसके पत्ते प्याले के आकार के होते हैं, जिसका वृतान्त वैदिक कथाओं में वर्णित है। कहा जाता है कि भगवान श्री कृष्ण जी दही व मट्ठा खाने के लिए इसी वृक्ष के पत्तों का उपयोग करते थे।

उद्यान के औषधीय भाग में घृतकुमारी, कालमेघ, सतावर, सदाबहार, कृट, लेमनग्रास, अग्निशिखा, कुचला, सर्पगंधा, पीपली, तुलसी, अश्वगंधा, अधिक मात्रा में उगाई जा रही हैं। यह औषधीय पौधों तथा अन्य पौधों के विषय में शिक्षा, शोध, विशेषकर वर्गीकरण विज्ञान, आर्थिक वनस्पति, पौधों की विविधता आदि में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। इस उद्यान में इलाहाबाद व आस पास के अन्य जिलों के बहुत से विद्यालयों तथा महाविद्यालयों के छात्र-छात्रायें तथा मध्य प्रदेश के बालाघाट केन्द्र, वन विभाग के प्रशिक्षणार्थी प्रति वर्ष आते हैं, जिनको वैज्ञानिकों द्वारा उचित मार्गदर्शन दिया जाता है।

इसके अतिरिक्त विरल तथा विलुप्ती के कगार पर आने वाले पौधों का एकत्रीकरण, विस्तार, व बचाव आदि इस उद्यान के वार्षिक योजना में शामिल हैं। इस श्रेणी में जो पौधे लगाये गये हैं तथा सुचारू रूप से उग रहे हैं, उनके नाम हैं- उलट कमल, गुगुल, *फ्रेरिया इण्डिका, फ्लेमिंजिया स्ट्रिक्टा सबस्पेसीज-टेरोकार्पस।* प्रस्तुत लेख में उक्त विविध वनस्पतियों के औषधीय गुणों एवं पारंपरिक उपयोगों का संक्षिप्त विवरण उनकी अवस्थाओं के अनुसार निम्नलिखित प्रकार से वर्णित किया गया है।

वृक्ष (Trees)

प्रचलित नाम	वनस्पतिक नाम	कुल	उपयोगी भाग	औषधीय उपयोग
बेल	*ऐग्ले मारमेलोस*	रूटेसी	पत्ती एवं फल	उदर विकार, मधुमेह, ज्वर एवं वात रोग में लाभकारी है ।
नीम	*अजाडिराक्टा इंडिका*	मेलिएसी	छाल, पत्ती	चर्मरोग, आंतकृमि, मधुमेह एवं दंत विकार में लाभकारी है।
कचनार	*बहूनिआ वैरीगेटा*	सीसलपीनिएसी	छाल, फूल	चर्म रोग, कुष्ठ एवं अतिसार में लाभकारी है।
पलाश	*ब्यूटिया मोनोस्पर्मा*	फैबेसी	छाल एवं फूल	रक्त प्रदर, ज्वर, रक्त विकार एवं रक्ताल्पता को दूर करता है।
अमलताश	*कैसिया फिस्टुला*	सीसलपीनिएसी	फल	कब्ज को दूर करता है।
बरगद	*फाइकस बेंघालेन्सिस*	मोरेसी	जड़, जटा, दूध एवं फल	अतिसार, बवासीर एवं *गोनोरिया* मे लाभकारी है।
उदुम्बर (गूलर)	*फाइकस रेसीमोसा*	मोरेसी	दूध एवं फल	पेचिश, श्वेतप्रदर एवं धातु विकार में उपयोगी है।
पीपल	*फाइकस रिलिजिओसा*	मोरेसी	छाल एवं फल	श्वांस रोग एवं विषविकार में लाभकारी है।
खमेर	*मेलाइना अर्बोरिया*	वर्बीनेसी	पत्ती एवं फल	मूत्र विकार, सरदर्द एवं उदर की कमजोरी को दूर करता हैं
कुटकी, कुरैया	*होलार्हना पुबेसेन्स*	एपोसाइनेसी	छाल	ज्वर, मधुमेह एवं पुराने फोड़ों में उपयोगी है।
चिलबिल	*होलोप्टेलिया इन्टेग्रेटीफोलिया*	अल्मेसी	छाल	चर्मरोग, गठिया, एवं वात में उपयोगी है।
महुआ	*मधुका लांगीफोलिया प्रजाति लैटीफोलिया*	सपोटेसी	छाल, फूल एवं बीज, तेल	गठिया, वात, श्वासरोग एवं चर्मरोग में उपयोगी है।
सिन्दूरी	*माल्लोटुस फिलीपेन्सिस*	यूफोरबिएसी	फल	चर्म रोग एवं उदर रोग में लाभकारी।
बकायन	*मेलिया आजेडिरक्टा*	मेलिएसी	छाल	ज्वर (विशेषत:जीर्ण एवं चतुर्थक ज्वर) में लाभकारी है।
मूलश्री	*माइमूसोप्स एलेन्गी*	सपोटेसी	छाल एवं बीज	दंत विकार एवं उदर विकार में लाभकारी है।
मुनगा, सहजन	*मोरिंगा ओलिफेरा*	मोरिंगेसी	पत्ती, फल एवं बीज	हदय विकार, यकृत विकार, नेत्र रोग एवं आमवात में लाभकारी है।
आंवला	*फाइलैन्थस अंबलिका*	यूफोरबिएसी	फल	उदर विकार एवं शारीरिक कमजोरी को दूर करता है।
करंज	*पोन्गोमिया पिन्नाटा*	फाबेसी	शाखा एवं बीज तेल	दंत विकार एवं चर्मरोग में लाभकारी है।
रीठा	*सेपिन्डस लौरीफोलिया*	सेपिन्डेसी	फल	गठिया, वात एवं खांसी में लाभकारी है।
कुचिला	*स्ट्रीचनास नक्सवोमिका*	लोगानिएसी	बीज	वात रोग, वाजीकरण, पाचन एवं हृदय की दुर्बलता में लाभकारी है।
जामुन	*सिजाइगियम क्यूमीनी*	मिर्टेसी	पत्ती, फल एवं बीज	उदर विकार, मधुमेह तथा कोमल पत्तियां वमन कराने में उपयोगी हैं, फल अजीर्ण एवं अतिसार मे लाभकारी होता है।
इमली	*टमिरिन्डस इंडिका*	सीसलपीनिएसी	पत्ती एवं फल	सूजन, पुराने फोड़े एवं मृदुरेचन में उपयोगी है।

अर्जुन	*टर्मिनेलिया अर्जुना*	कोम्ब्रिटेसी	छाल	हद्य विकार, हड्डी जोड़ने में एवं श्वेत व रक्त प्रदर में उपयोगी है।
बहेरा	*टर्मिनेलिया बेलेरिका*	कोम्ब्रिटेसी	फल	उदर विकार, रक्त दाब, शारीरिक कमजोरी एवं कफ विकारों मे विशेष उपयोगी है।
बेर	*जिजिफस माउरीसियाना*	राइनेसी	पत्ती एवं फल	उदर विकार तथा पुराने फोड़ों में उपयोगी एवं पोषक होता है।
			झाड़ियां	
कंघी	*आबूटीलोन इन्डिकम*	मालवेसी	जड़ एवं बीज	शुक्रमेह, प्रदर तथा शारीरिक कमजोरी में लाभकारी है।
अडूसा	*आडाटोड़ा जिलेनिका*	अकेन्थेसी	पत्ती	श्वांस रोग में लाभकारी है।
कटसरैया	*बार्लेरिया प्रिओनिटिस*	अकन्थेसी	जड़ एवं पत्ती	दंत विकार एवं जोड़ों के दर्द में उपयोगी है।
धतूरा	*दतुरा मेटल*	सोलानेसी	पत्ती	पुराने फोड़ें, चर्मरोग एवं श्वांस रोगों में लाभकारी है।
मरोड़ फली	*हेलिक्टेरस आइसोरा*	स्टरकुलिएसी	फल	उदर विकार में लाभकारी ।
हरसिंगार	*निक्टेन्थिस अरबोट्रिस्टीस*	ओलिएसी	पत्ती एवं बीज	सर दर्द, गठिया एवं वात में लाभकारी है।
एरण्ड	*रिसिनस कम्यूनिस*	यूफोरबिएसी	पत्ती एवं बीज, तेल	कब्ज दूर करने में, सूजन, फोड़े एवं सन्धीवात में उपयोगी है।
निर्गुन्डी	*वाइटेक्स निगुन्डो*	वर्बीनेसी	पत्ती एवं बीज	सूजन, सन्धिवात एवं कर्ण विकार में लाभकारी है।
			शाकीय पौधे	
अपामार्ग	*अचिरांथेस आस्पेरा*	अमरन्थेसी	पंचाग	दमा, खांसी, कफ, वात एवं बिच्छू दंश में उपयोगी है ।
बच	*अकोरस कालामुस*	अ ेसी	प्रकंद	श्वांस विकार एवं मानसिक विकार में उपयोगी है।
गोरख गांजा	*एर्वा लनाटा*	अमरेन्थेसी	मूल	मूत्र विकार, एवं कफ, वात विकारों में लाभकारी है।
घृतकुमारी	*अलोए वेरा*	लीलिएसी	पत्ती	यकृत विकार, मोटापा दूर करने एवं चर्मरोग में लाभकारी है।
कालमेघ	*एन्ड्रोग्राफिस पैनिकुलाटा*	अकेन्थेसी	सभी भाग	ज्वर, मधुमेह, एवं यकृत विकार में लाभकारी है।
स्वर्णक्षीरी (पीली),भड़भड़	*आर्जिमोन मेक्सिकाना*	पपावरेसी	दूध, बीज एवं तेल	दूध नेत्र विकार में एवं बीज तेल चर्मरोग में लाभकारी है।
दन्ती, जमालघोटा	*बालिओस्पर्मम मान्टेनम*	यूफोरबिएसी	पत्ती	पुराने फोड़े में लाभकारी एवं कब्ज को दूर करता है।
कुकरौंधा	*ब्लूमिआ लसेरा*	एस्टेरेसी	सभी भाग	ज्वर, यकृत विकार एवं कुत्ता काटने पर लाभकारी है ।
रक्त पुनर्नवा	*बोहेर्विया डिफ्यूसा*	निक्टाजिनेसी	सभी भाग	यकृत विकार, वृक्क विकार एवं ज्वर (विशेषत: चतुर्थक ज्वर) में लाभकारी है।
चकौड़ा, चकवड़	*सेन्ना टोरा*	*सीसलपीनिएसी*	पत्ती	चर्मरोग (विशेषत: दाद) में लाभकारी है।

हुरहुर	*क्लोएम विस्कोसा*	कप्परेसी	जड़	ज्वर एवं कर्ण विकार में लाभकारी है।
शंखपुष्पी	*कोन्वाल्वुलस प्रोस्ट्राटस*	कोन्वाल्वुलेसी	सभी भाग	बुद्धि वर्धक एवं शुक्रमेह में लाभकारी है।
नागरमोथा	*साइपरस स्कैरिओसस*	साइपरेसी	जड़	ज्वर एवं मूत्र विकार में लाभकारी है
भृंगराज (घमिरा)	*एकलिप्टा प्रोस्ट्राटा*	एस्टेरेसी	सभी भाग	घाव भरने, यकृत विकार एवं सर दर्द में लाभकारी है ।
दूधी	*यूफोंबिया हिर्टा*	यूफोरबिएसी	सभी भाग	खांसी एवं आंतकृमि में लाभकारी है।
पितपापड़ा	*फूमारिआ इन्डिका*	फूमारिएसी	सभी भाग	पीलिया एवं ज्वर में लाभकारी है।
बघनखा	*मारटीनिया आन्नुआ*	मारटीनिएसी	बीज,एवं तेल	चर्म रोग में लाभकारी है।
मूसाकानी	*मेरेमिआ इमार्जिनाटा*	कोन्वाल्वुलेसी	सभी भाग	श्वांस रोग, कफ, वात, प्रदर रोग एवं यकृत विकार में लाभकारी है।
काकजंघा (मासी)	*पेरिस्ट्रोफी पेनीकुलाटा*	एकेन्थेसी	सभी भाग	कर्ण विकार एवं सर्प दंश में लाभकारी है।
जल पिपली	*फाइला नोडीफ्लोरा*	वर्बीनेसी	सभी भाग	ज्वर में लाभकारी है।
भुई आँवला	*फाइलान्थस अमारूस*	यूफोरबिएसी	सभी भाग	यकृत विकार, रक्त विकार एवं ज्वर में लाभकारी है।
भुई आँवला	*फाइलान्थस यूरीनारिआ*	यूफोरबिएसी	सभी भाग	यकृत विकार एवं ज्वर में लाभकारी है।
चिरपोंटा	*फिसालिस मिनिमा*	सोलानेसी	सभी भाग	सूजन एवं गठियावात में लाभकारी है।
बाकुची	*कुलेन कोरीलिफोलिआ*	फाबेसी	बीज एवं तेल	चर्मरोग (विशेषत: दाद तथा खुजली) एवं कुष्ठ रोग में लाभकारी है ।
सर्पगन्धा	*रौल्फिआ सरपेन्टाइना*	अपोसीनेसी	जड़	मानसिक विकार, उच्च रक्तदाब एवं सर्प दंश में लाभकारी है।
महाबला	*सीडा अक्यूटा*	मालवेसी	जड़	शुक्रमेह, प्रदर रोग एवं रक्त पित्त में लाभकारी है।
नागबला	*सीडा अल्बा*	मालवेसी	जड़	शारीरिक कमजोरी में लाभकारी है।
राजबला	*सीडा कार्डाटा*	मालवेसी	जड़	शुक्रमेह, गर्भाशय की कमजोरी एवं वात पित्त में लाभकारी है।
अतिबला	*सीडा रोम्बीफोलिआ*	मालवेसी	जड़	शारीरिक कमजोरी एवं धातु विकार में लाभकारी है।
मकोय	*सेलानुम नाइग्रम*	सोलानेसी	पत्ती एवं फल	यकृत विकार, नेत्र रोग एवं चर्म रोग तथा जीर्ण ज्वर में लाभकारी है।
कटईया	*सोलानुम वर्जिनिआनुम*	सोलानेसी	जड़	श्वांस रोग (खांसी एवं दमा) में लाभकारी है ।
गोरख मुंडी	*स्फेरान्थुस इन्डिकस*	अस्टेरेसी	सभी भाग	उदय विकार, शारीरिक कमजोरी एवं वाजीकरण में लाभकारी है ।
अकरकरा	*स्पाइलेन्थस कल्वा*	अस्टेरेसी	फूल	खांसी एवं दन्तविकार में लाभकारी है।
सर्पुन्खा	*टेफ्रोसिआ परपूरिआ*	फाबेसी	सभी भाग	प्लीहा वृद्वि, यकृत विकार खांसी एवं वृक्क विकार में लाभकारी है।
घावपला (गब्बू)	*ट्राइडेक्स प्रोकुम्बेन्स*	अस्टेरेसी	पत्ती	घाव एवं पुराने फोड़े में लाभकारी है
सहदेवी	*वर्नोनिआ साइनेरिया*	अस्टेरेसी	सभी भाग	ज्वर (विशेषत: जीर्ण एवं विषम ज्वर) में लाभकारी है।

1. *ऐग्ले मारमेलोस* 2. *ब्यूटिया मोनोस्पर्मा* 3. *मधुका लांगीफोलिया* प्रजाति *लैटीफोलिया* 4. *आबूटीलोन इन्डिकम* 5. *बार्लेरिया प्रिओनिटिस* 6. *दातुरा मेटल* 7. *हेलिक्टेरस आइसोरा*, 8. *एन्ड्रोग्राफिस पानीकुलाटा* 9. *रौल्फिआ सरपेन्टाइना* 10. *सेसलपीनिआ बोन्डुक* 11. *मुकुना प्रूरिएंस* 12. *टिनोस्पोरा कार्डीफोलिआ*

खस	*वेटीवेरिया जिजानिओडिस*	पोएसी	जड़	चर्मरोग एवं दाह ज्वर में लाभकारी है।
अश्वगंधा	*विथानिआ सोम्नीफेरा*	सोलेनेसी	जड़ एवं पत्ती	प्रदर रोग, शारीरिक कमजोरी, शुक्रमेह एवं मोटापा दूर करने में लाभकारी है।
गोखरू	*ट्रीबुलुस टेरेस्ट्रिस*	जाइगोफिलेसी	बीज	शारीरिक कमजोरी में लाभकारी है।

लतायें (Climbers)

घुंघची	*एब्रस प्रेकाटोरियस*	फेबेसी	मूल, पत्ती एवं बीज	श्वांस विकार, बवासीर, चर्मरोग, निमोनिया, सर्प दंश एवं शारीरिक कमजोरी में लाभकारी है।
विधारा	*आर्गीरिइआ स्पेसिओसा*	कोन्वाल्वुलेसी	जड़	शारीरिक कमजोरी एवं घाव भरने में लाभकारी है।
सतावर	*एस्परेगस रेसीमोसस*	एस्परगेसी	जड़ एवं पत्ती	शारीरिक कमजोरी, प्रदर शुक्रमेह एवं प्रसूता औरत के दूध बढ़ाने में लाभकारी है।
गटारन, कड़न्जा	*सीसलपीनिआ बोन्डुक*	सीसलपीनिएसी	पत्ती एवं बीज	ज्वर एवं उदर विकार में लाभकारी है।
हैंसी (व्याघ्रनखी)	*काप्पारिस जिलेनिका*	काप्पारेसी	जड़	सर्प दंश, सूजन एवं गठिया, वात में लाभकारी है।
कुंदरू	*काक्सीनिआ ग्रांडिस*	कुकरबिटेसी	जड़, पत्ती एवं फल	मधुमेह एवं रक्त विकार में लाभकारी है।
जल जमनी	*कोकुलुस हिरसूट्स*	मेनिस्पर्मेसी	सभी भाग	प्रदर, शुक्रमेह एवं चर्मरोग में लाभकारी है।
नागबेल	*क्रिप्टोलेपिस बुचनानी*	एस्क्लेपिडेसी	जड़	श्वांस विकार एवं निमोनिया में लाभकारी है।
शिवलिंगी	*डिप्लोसाइक्लोस पामेटुस*	कुकरबिटेसी	पत्ती एवं बीज	सूजन एवं बांझपन में लाभकारी है।
कलिहारी	*ग्लोरिओसा सुपर्बा*	लिलिएसी	कंद	शीघ्र प्रसव, कुष्ठ रोग एवं गठियावात में लाभकारी है ।
गुड़मार	*जिम्नेमा सिल्वेस्टर*	एस्क्लेपिडेसी	पत्ती	मधुमेह एवं नेत्र विकार में लाभकारी है।
अनन्तमूल	*हेमीडेस्मुस इन्डिकस*	एस्क्लेपिडेसी	जड़	ज्वर, रक्त विकार, एवं आमवात में लाभकारी है।
कालादाना	*आपोमोआ निल*	कोन्वाल्वुलेसी	बीज	चर्मरोग एवं कब्ज दूर करता है।
जंगली केवांच	*मुकुना प्रूरिएंस*	फाबेसी	बीज	वाजीकरण एवं शारीरिक कमजोरी में लाभकारी है।
निशोथ	*ओपेरकुलीना टरपेन्थम*	कोन्वाल्वुलेसी	जड़	कब्ज दूर करने में लाभकारी है।
दूधीबेल (उतरन)	*पेरगुलारिया डेमिया*	एस्क्लेपिडेसी	जड़	ज्वर एवं बवासीर में लाभकारी है।
मांसरोहणी	*टेराम्नुस लेबियोलिस*	फाबेसी	सभी भाग	पक्षाघात, ज्वर एवं शुक्रमेह में लाभकारी है।
गिलोय	*टिनोस्पोरा कार्डीफोलिआ*	मिनीस्पर्मेसी	सभी भाग	उदर विकार, प्रतिरक्षा तंत्र, मधुमेह एवं विषमज्वर में लाभकारी है ।

———

आर्थिक दृष्टि से उपयोगी वनस्पतियाँ

संजीव कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

वन मानव जाति के लिए अति महत्वपूर्ण हैं। प्राचीन काल में देश में वनों की बहुलता थी एवं वनवासी तपस्वी वन पर निर्भर थे। वन का अभिप्राय: केवल पेड़ से नहीं है, बल्कि यह एक जीवंत समुदाय है। पृथ्वी के मूल वनक्षेत्र का 45 प्रतिशत वन आज गायब हो गया है। भारत एक कृषि प्रधान देश है और वन हमारे लिए अन्नदाता है। कन्द-मूल, सात्विक आहार, रहने के लिए कुटिर से लेकर वस्त्र तक वन ही देते थे।

आर्थिक दृष्टि से उपयोगी वनस्पतियों पर आधारित बहुत से उद्योग-धन्धे हैं। यह हमारे लिए आय का बहुत बड़ा स्रोत हैं। एशिया में भारत और चीन जडी-बूटी निर्यात करने में अग्रणी देश हैं। चीन आयुर्वेदिक औषधियों के निर्यात में भारत से बहुत आगे है। भारत ने 2011-12 में 2000 मिलियन डॉलर मूल्य के गर्म मशाले निर्यात किया है। भारत का निर्यात प्रतिशत 8.13 है, जबकि चीन का निर्यात 28 प्रतिशत है । भारत में 17,000 पौधों की प्रजातियां हैं, जिसमें से 7500 प्रजातियां चिकित्सीय उपयोग के लिए चिन्हित की गई हैं । 2000 प्रजातियों को आयुर्वेदिक औषधि हेतु निर्धारित किया गया है। विश्व की सबसे महत्वपूर्ण 150 औषधियों में 18 प्रतिशत को जडी-बूटियों से तैयार किया जाता है। आयुर्वेदिक औषधियों की मांग सालाना 15 से 20 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। विश्व में आयुर्वेदिक औषधियों का व्यापार 60 यू.एस. बिलियन डॉलर तक पहुंच गया है एवं इसके आगामी वर्षो में बढ़ने की आशा है ।

इसबगोल जो एक प्राकृतिक पदार्थ है एवं कब्ज निदान व कोलेस्ट्रॉल घटाता है। गुजरात राज्य प्रति वर्ष 10 से 12 लाख बैग (एक बैग 75 किलो ग्रा०) ईसबगोल उत्पादन करता है। भारत ईसबगोल का प्रमुख उत्पादक एवं निर्यातक देश है। ईसबगोल के प्रति लोगों के जागरुकता व उपयोगिता को देखते हुए भारत मलेशिया, आस्ट्रेलिया, जापान, जर्मन, पाकिस्तान, ब्रिटेन व स्पेन को इसबगोल निर्यात करता है। इन देशों में इसकी बहुत मांग है। अन्य उपयोगी पौधों जैसे पुदिना, सेन्ना पत्ती, चंदन, जोजोबा बीज, घृतकुमारी, अकरकरा, तुलसी, नीम व चिडता निर्यात करता है। साथ ही सर्पगंधा, अश्वगंधा, आवंला, जटामासी, घृतकुमारी, बेल, कालमेघ इत्यादि भी अन्य देशों को निर्यात करता है। अन्य पौधों जैसे *एकोरस केलामस,अर्जिमोन मैक्सीकाना* (पीली कंटीली), *कुरकुमा एमाडा* (गांठ हल्दी), *कुरकुमा लोंगा* (सामान्य हल्दी), *कुरकुमा एरोमाटिया* (सुगन्ध हल्दी), *केसिया लेन्सियोलेटा, ग्लेसिरोजिया ग्लेबरा, माइरिका नागी* (काफल), *पाइपर लोंगम* (काली मिर्च), *रुबिया कॉर्डिफोलिया* (मदार), *जिजिंबर आफीसिनेल* (अदरक) का निर्यात करता है। भारत विकसित देशों को *एल्लुम स्टाईवम, एलोय बरबिडेन्सिस* एवं *पैनेक्स* जाति के हर्ब निर्यात करता है।

विल्लो नामक पेड़ से क्रिकेट का बल्ला बनता है। जम्मू व कश्मीर, पंजाब, हरियाणा व गुजरात में इस वृक्ष से बल्ला बनाने का उद्योग है। कश्मीर के बारामूला, अनंतनाग व पहल गांव में विल्लो के वृक्ष देखे जा सकते है। वनस्पति विज्ञान में यह सेलिकासी कुल का वृक्ष है। इस उद्योग में ब्रिटेन से हमलोगो का प्रतिस्पर्धा है। चंदन का वृक्ष अमूल्य है। हमारे देश में पिछले दशक में चंदन का उत्पादन 4000 टन से 400 टन रह गया है। कृषकों को इसका उचित दाम नहीं मिलता। सरकारी एजेन्सी एक किलो का चंदन रु 3,500/- प्रति किलो के हिसाब से खरीदता है एवं रु 16,000/- प्रति किलो बेचता है। अंतर्राष्ट्रीय बाजार में चंदनकाठ व तेल की प्रचुर मांग होने के कारण इसका अवैध विदोहन किया जाता है, अत: इसकी सुरक्षा की आवश्यकता है।

विश्व रबड के उत्पादन में भारत चौथे स्थान पर है। भारत के केरल राज्य में देश का 90 प्रतिशत रबड़ उत्पादन करता है । इस उद्योग से 4.45 लाख लोगों को रोजगार मिला हुआ है। केन्द्र सरकार को इस उद्योग से 100 करोड़ से अधिक कर के रुप में प्राप्त होता है। प्राकृतिक रबड़ का निर्यात कर भारत 52.76 मिलियन डॉलर अर्जित करता है। रेशम कीट उद्योग को बढावा देने के लिए शहतूत के पेड़ लगाना आवश्यक है। क्योंकि इसके पत्ते रेशम के कीट बडे चाव से खाते हैं। भारत ने रेशम से बनने वाले विभिन्न वस्तुओं का निर्यात कर 1663 करोड रुपए अर्जित किए। उत्तरी-पूर्वी भारत में बांस उद्योग विकसित अवस्था में है। योजना आयोग के अनुसार

इस उद्योग से 4.45 लाख लोगों को रोजगार मिला हुआ है। भारत में बांस के 22 वंश व 136 प्रजातियां है। भारत का 66 प्रतिशत बांस उत्तर पूर्वी भारत के पर्वतीय क्षेत्र में उत्पादित होता है। योजना आयोग ने बांस के उत्पादन व इससे संबंधित उद्योगो के प्रोत्साहन हेतु कई कदम उठाये हैं । इस उद्योग के चलते लाखों लोगों का काम मिला हुआ है । बांस कागज उद्योग में 35 प्रतिशत रोजगार, गृहनिर्माण में 20 प्रतिशत, गैर आवासीय कार्य में 5 प्रतिशत, ग्रामीण कार्य में 20 प्रतिशत व ईधन के रुप में 8.5 प्रतिशत योगदान प्रदान करता है ।

जलीय पौधे काई व शैवाल भी बहुत आर्थिक उपयोगिता की दृष्टि से उपयोगी हैं। काई रेतीली मिट्टी में नाइट्रोजन बहाली में सहायता करती है। यूरोप व एशिया में काई इंधन के रूप में भी प्रयोग की जाती है। काई को कृषि एवं बागवानी में मृदा योजक व पादप समवेष्ठित करने में प्रयोग किया जाता है। समुद्री वनस्पतियां मुख्यता: शैवाल खाद्य एवं औषधि के रूप में भी उपयोगी हैं।

तेंदु पत्ते से बीड़ी बनायी जाती है। भारत के अनेक राज्यों मे तेंदु पत्ते की कृषि की जाती है। भारत मे करीब 3 मिलियन लोग बीडी उद्योग से जुडे हैं। भारत के पडोसी देश बांग्लादेश, पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, श्रीलंका मे भारत निर्मित बीडी की अच्छी खपत है। यह विदेशी मुद्रा आय का एक अच्छा स्रोत है।

भारत मे आयुर्वेदिक दवाई बनाने के लगभग 7000 कारखाने है। विश्व में आयुर्वेदिक औषधियों के 18 उत्पत्त स्थल है, जिनमे से दो भारत में ही है। भारत मे हिमालय जैसे शीतोष्ण एवं राजस्थान जैसे भूभागो पर भी आयुर्वेदिक औषधियों की प्रचुर सम्भावनायें व्याप्त है। आवश्यकता है तो विश्व स्वास्थ्य संगठन के दिशा निर्देश -4 के अनुसार निति निर्गत कदम उठाने की। एक कठिनाई यह है कि भारतीय हर्बल उत्पाद कई बार विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा निर्धारित मानकों पर खरे नही उतरते है। हमें इस पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

भारत के सभी पड़ोसी देशों से अच्छे सम्बन्ध बनने एवं उसके परिणामस्वरूप व्यापारिक संबध सुधरने से भारतीय वनस्पतियों से सम्बन्धित अनेक उत्पाद निर्यात कर विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है। हमें स्मरण रखना चाहिए कि प्राय: सभी पड़ोसी देश एक समय भारत का ही एक हिस्सा रह चुके है। अत: उनकी आवश्यकतायें भी भारत की भांति है। इस प्रकार विश्व के अन्य देशों में जहां भारतीय मूल के लोग निवास करते है वहां हम गर्म मसाले व दैनिक जीवन में उपभोग की वस्तुएं, सब्जियां इत्यादि भेजकर विदेशी मुद्रा अर्जित कर सकते है।

हरियाली से है जिसका नाता।
सुख समृद्धि उसी को भाता।।

ओडिशा एवं झारखंड की कुछ अल्पज्ञात लोक-वनस्पतियों का विवरण

ए.के. साहू
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, आई.एस.आई.एम., कोलकाता

ओडिशा राज्य जिसका क्षेत्रफल 1,55,707 वर्ग कि.मी. है, भारत के पूर्वी समुद्रतटीय क्षेत्र में स्थित होने के साथ ही एक आदिवासी बहुल्य प्रान्त है। इस राज्य में आदिवासियों की 62 जातियां निवास करती हैं, जो राज्य की जनसंख्या का 22 प्रतिशत है। ओडिशा राज्य के उत्तर-पश्चिम भाग से लगा हुआ झारखंड राज्य है, जिसका क्षेत्रफल 70614 वर्ग कि.मी. है। यह क्षेत्र भी आदिवासी बहुल्य है और यहाँ पर आदिवासियों की 31 जातियां पाई जाती हैं। इन दोनों राज्यों में मुख्यत: संताल, मुण्डा, उरांव एवं भुमिज प्रमुख हैं। जो राज्य के सुदूरवर्ती वन क्षेत्रों में निवास करते हैं। ये सदियों से इन जंगलों में उपलब्ध वनस्पतियों को अपने दैनिक जीवन में उपयोग में लाते रहे हैं, जैसे औषधि, खाद्य, तेल, रेजिन, गम, चारा, रोजमर्रा के उपयोग में लाई जानी वाली वनस्पतियां, घरेलू जानवारों के उपचार, गृह निर्माण, कृषि उपकरण एवं प्राकृतिक रंग आदि ।

प्रस्तुत लेख में इन आदिवासियों द्वारा उपयोग में लाई जानी वाली 11 अल्पज्ञात लोक-औषधियों का विवरण पौधों के वानस्पतिक नाम, स्थानीय नाम, पौधों के औषधिय उपयोग के साथ दिया जा रहा है, जिसे मुख्यत: संताल, मुण्डा, उरांव एवं भुमिज आदिवासी लोग औषधियों के रूप में प्रयोग करते हैं एवं जिनकी अभी तक लिखित जानकारी उपलब्ध नहीं है।

एरिस्टोलोकिया इंडिका (एरिस्टोलोकियेसी)- आदिवासी नाम गड, भेदी, जानेटेल (संताल), पानूइरी (ओडिया), इशरमूल (हिन्दी) आदि। इस पौधे के जड़ों के रस एवं लेप को ऊंट के जखमों/घावों पर लगाने से उसमें लगे कीड़े मर जाते हैं।

एस्पेरेगस रेसीमोसस (एस्परगेसी)- आदिवासी नाम सताबारी (ओडिया), केदारनारी (संताल)। पौधे की जड़ों के रस को बकरी के दूध के साथ मिलाकर लेने से पाइल्स की तकलीफ से आराम मिल जाता है ।

ब्यूटनेरिया हरबेसिया (एस्टरकुलेसी)- आदिवासी नाम डेकु सिंदूर (संथाल), सिगनी (भूमिज), काम्बराज (हिन्दी)। पौधे के जड़ों को पिपली (*पिपर लोंगम*), अजवाइन और कालीमिर्च के साथ पीसकर लेने से अस्थमा एवं स्वांस जैसे रोगों में आराम मिलता है।

सिस्मपिलोस परेरा (सिसमपिलेसी)-आदिवासी नाम अकना बिंदी (ओडिया), आक्नमिनी (मुंडा)। पौधे की जड़ों को सुखाकर एवं पाउडर बनाकर लेने से गठिया रोग में आराम मिलता है ।

क्लोरोफिटम अरुंडीनेसीयम (लिलिएसी)- आदिवासी नाम भरत बटुली (ओडिया), जेरे नारक (संताल), सफेद मूसली (हिन्दी)। पौधे की जड़ों एवं ट्यूबर को उबले चावल के पानी में मिलाकर लेने से महिलाओं को दर्द भरे ऋतुस्राव (माहवारी) से आराम मिलता है।

करकूलीगो ओरकिओइसि (हाईपॉक्सिडेसी)- आदिवासी नाम तलामुली (ओडिया), तर मुली (संताल), काली मूसली (हिन्दी)। पौधे के जड़ों एवं ट्यूबर को पीसकर लेने से हारनिया की तकलीफ दूर हो जाती है।

लीया एसियाटीका (लिएसी)- आदिवासी नाम अंताभंगा (ओडिया), होरोम (मुंडा)। पौधे की जडों का लेप पालतू जानवरों की टूटी हड्डीयाँ जोड़ने में मदद करता है।

लाइगोडियम फ्लेक्सूयेसम (लाइगोडिएसी)- आदिवासी नाम काला महाजल (ओडिया), ननजोम रिहिट (संताल)। पौधे की जड़ों के पाउडर को काली मिर्च के साथ लेने से दर्द भरे ऋतुस्राव (माहवारी) से औरतों को आराम मिलता है।

ओकना ओब्टयूसेटा (ओकनेसी)- आदिवासी नाम बोहिनचम्पा (ओडिया), चम्पा-बहा (संताल)। पौधे के जड़ रस को लेने से महिलाओं को दर्द भरे ऋतुस्राव (माहवारी) से आराम मिलता है।

ओरथोसाइफोन रूबीकुंडस (लेमिएसी)- आदिवासी नाम चंडुया (ओडिया), जिकिपोटा (मुंडा)। पौधों के जड़ों के रस को नवजात बच्चों को देने से दस्त में आराम मिलता है।

अर्जीनिया इंडिका (लिलियसी)- आदिवासी नाम जंगली पिया (ओडिया)। पौधे की जड़ों एवं ट्यूबर को पीसकर हड्डियों पर लेप करने से गठिया रोग में आराम मिलता है।

———

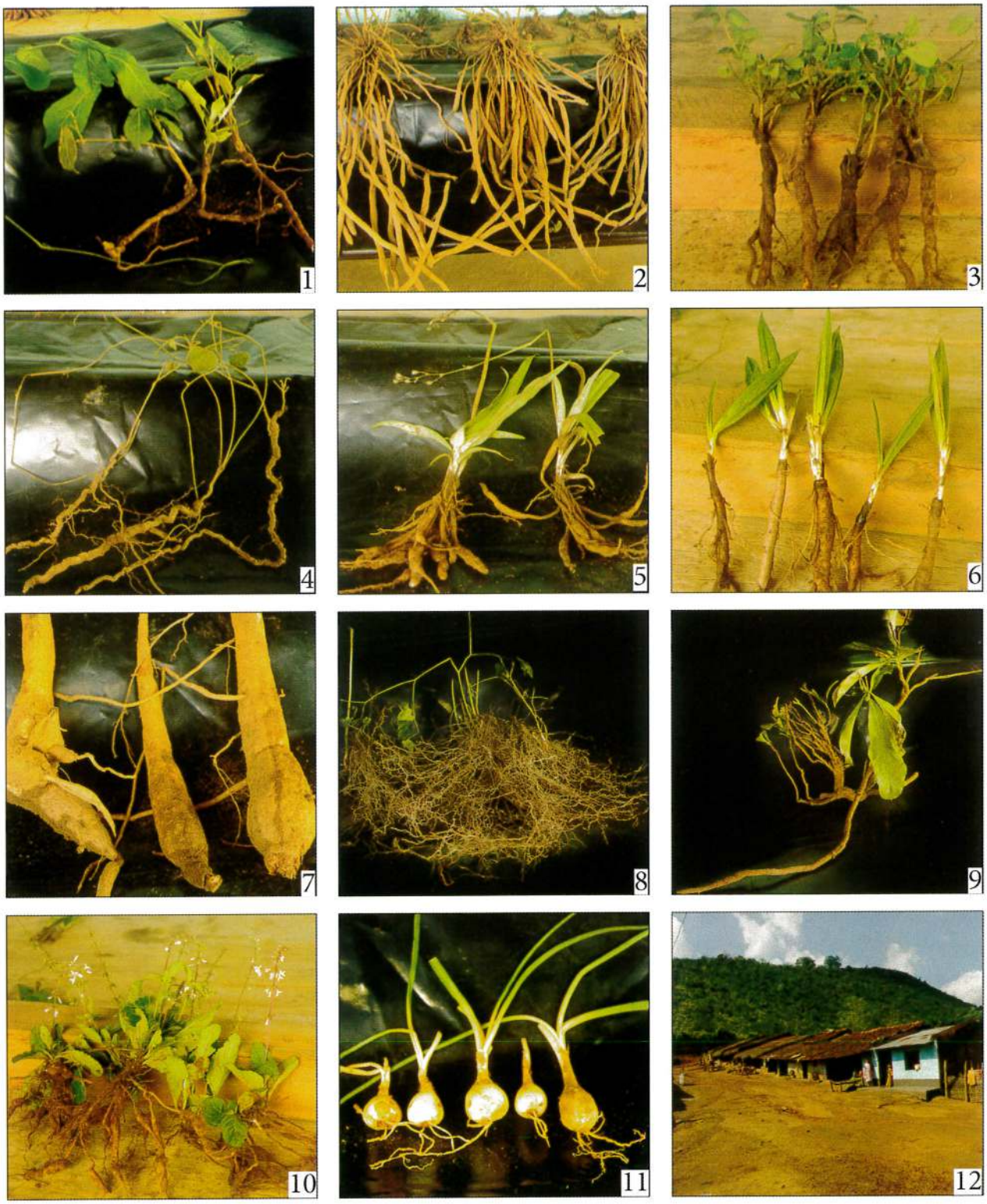

1. *एरिस्टोलोकिया इंडिका* 2. *एस्पेरागस रेसीमोसस* 3. *ब्यत्तेरिया हेरबसिया* 4. *सिस्समपिलोस* परेरा 5. *क्लोरोफाइटम अरूंडीनेसीयम* 6. *करकूलीगो ओरकिओइडिस* 7. *लीया एसियाटीका* 8. *लाइगोडियम फ्लेक्सूऐसम* 9. *ओकना ओबटयूसेटा* 10. *ओरथोसाइफोन रूबीकुंडस* 11. *अर्जीनिया इंडिका* 12. आदिवासी गांव का एक दृश्य।

वनस्पति वाणी अंक 22 : 100-105(2013)

जनपद टिहरी गढ़वाल के पर्णांगों का लोक वानस्पतिक उपयोग

पुष्पेश जोशी, हरीश चन्द्र पाण्डे एवं बृजेश कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

मानव का औषधीय पौधों से सम्बन्ध प्राचीन काल से है। प्राचीन भारत में आदिकाल से वैद्य, हकीम, इनका उपयोग नाना प्रकार के रोगों को दूर करने में किया करते थे तथा प्राचीन काल के वैद्य, सुश्रुत व चरक द्वारा क्रमश: अपनी पुस्तकों सुश्रुत संहिता एवं चरक संहिता में औषधीय पौधों द्वारा अनेक जटिल रोगों के निवारण हेतु विभिन्न प्रकार की विधियों का उल्लेख किया गया है। विभिन्न प्राचीन चिकित्सा पद्धतियां जैसे-यूनानी, होम्योपैथिक एवं आयुर्वेदिक शास्त्र भी वनस्पतियों के प्रयोग पर निर्भर करती हैं। इस संदर्भ में देवभूमि उत्तराखण्ड का अपना विशेष स्थान है। हिमाच्छादित हिमालय की शीतलता एवं उससे निकलती छोटी-बड़ी नदियों एवं स्रोतों के कारण यहाँ प्रचुर जैव विविधता का वास है, जिनमें से पर्णांग भी एक महत्वपूर्ण अवयव हैं।

अध्ययन क्षेत्र- हिमालय की दक्षिणी ढाल पर स्थित टिहरी गढ़वाल देवभूमि उत्तराखण्ड का एक पावन पर्वतीय स्थल है। यह जनपद उत्तरी अक्षांश 30° 03' और 60° 53' के मध्य एवं पूर्व देशान्तर 77° 56' और 79° 04' के मध्य स्थित है। जनपद का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 4080 वर्ग कि0मी0 है। अध्ययन क्षेत्र क्रमश: उत्तर में उत्तरकाशी से, रूद्रप्रयाग से पूर्व में, पौड़ी गढ़वाल से दक्षिण में, एवं देहरादून से पश्चिम में घिरा हुआ है। पश्चिम में यमुना नदी जनपद को देहरादून के जौनसार परगना से पृथक करती है।

भागीरथी नदी गंगोत्री से उद्गमित होकर जनपद में उत्तरी भाग से प्रवेश करती है एवं भिलंगना जो कि उत्तर-पूर्व में स्थित खतलिंग हिमानी से उद्गमित होती है, के साथ भागीरथीपुरम में एक मनोहारी संगम का निर्माण करती है। इसी प्रकार देवप्रयाग में भी अलकनंदा एवं भागीरथी नदी का मनोहारी संगम देखने को मिलता है। जैव विविधता की दृष्टि से जनपद में अमूल्य वानस्पतिक संपत्ति का निवास है। जनपद 500 मी0 से सतत हिमाच्छिादित क्षेत्र तक फैला हुआ है। समुद्र सतह से ऊंचाई, ढाल, अभिमुख आदि में भिन्नता के परिणाम स्वरूप विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों का पाया जाना स्वाभाविक है।

जनपद टिहरी गढ़वाल में कुल 154 पर्णांगों की प्रजातियां पायी गयी हैं, जो 55 गणों और 28 कुलों (पिकी सर्मोली 1977 व चिंग 1978 के नामाकरणानुसार) में विभाजित हैं। उक्त प्रजातियों में से 61 प्रजातियां विभिन्न उद्देश्यों से स्थानीय लोगों द्वारा पारंपरिक उपयोग में लायी जाती हैं। प्रस्तुत लेख में पर्णांगों के लोक वानस्पतिक ज्ञान की जानकारी लेखक के द्वारा किए गए विस्तारपूर्वक सर्वेक्षण एवं अन्य शोधकर्ताओं के द्वारा लिखे गये महत्वपूर्ण शोध साहित्य से संग्रहित किए गये हैं। प्रत्येक प्रजाति का वानस्पतिक नाम, प्राकृतिक वास, उपयोग व उपयोगी-भागों का विवरण दिया गया है । यहाँ वास करने वाले स्थानीय लोगों के द्वारा यहाँ की वनस्पतियों को विभिन्न प्रकार के उपयोगों जैसे-खाद्य पदार्थ, चारा पत्ती, धार्मिक अनुष्ठान, औषधि आदि में लाया जाता है।

एक्टीनियोप्टैरिस रेडियाटा (एक्टनियोप्टैरीडेसी)

उपयोग-पूर्ण फलक एवं जड़ गले के दर्द एवं जीभ के फफोलों में लाभकारी।

ऐडिएन्टम कैपिलस-वेनेरिस (ऐडिएन्टेसी)

उपयोग- केशों की वृद्धि हेतु सहायक पत्तियॉ श्वसन नली में संकुचन में लाभकारी, फलक का धार्मिक अनुष्ठानों में उपयोग।

ऐडिएन्टम एजवरथाई (ऐडिएन्टेसी)

उपयोग-पत्तियों को चबाने से मुँह के छालों एवं श्वसन नली के रोगों में लाभकारी।

एडिएन्टम इनसीजम (एडिएन्टेसी)

उपयोग- पत्तियॉ जाड़ा, बुखार, चर्म रोग, मधुमेह, श्वसन नली रोग आदि में लाभकारी।

ऐडिएन्टम माइरियोसोरम (ऐडिएन्टेसी)

उपयोग- पुराने रोगों एवं छाती के संक्रमण में पूरा पौधा लाभकारी है।

एडिएन्टम लूनुलेटम (एडिएन्टेसी)

उपयोग-ज्वरनाशक, शान्तिदायक, कफोत्सारक आदि रूप में उपयोगी। पत्ती एवं जड़ का क्वाथ सीने की बीमारी में प्रयोग में उपयोगी।

एडिएन्टम वैनुसेटम (एडिएन्टेसी)

उपयोग- पत्तियों का क्वाथ बुखार में लाभकारी, फलक ज्वरनाशक, मूत्रवर्धक, शान्तिदायक, बिच्छू के डंक में लाभदायक तथा धार्मिक अनुष्ठानों मे उपयोगी।

अल्यूरीटॉपटैरिस एल्बोमार्जीनेटा (साइनौपटैरीडेसी)
उपयोग- ज्वरनाशक एवं रोगाणुनाशक के रूप में उपयोगी यह पौधा धार्मिक अनुष्ठानों में भी प्रयोग किया जाता है। इसका तना छोटे बच्चों की नासिका में आभूषण के रूप में प्रयुक्त होता है।

एमपैलोप्टैरिस प्रोलीफैरा (थैलिपटैरीडेसी)
उपयोग- नई पत्तियाँ खाद्य पदार्थ एवं मवेशियों के चारे के रूप में उपयोगी।

एरेओस्टीजिया स्यूडोसिस टौप्टेरिरस (डैवेल्लीऐसी)
उपयोग- पत्तियाँ उदर कृमिनाशक औषधि के रूप में।

आर्थोमैरिस वालिचिआना (पॉलीपोडिएसी)
उपयोग-सार तत्व चावल के साथ पेचिश में प्रभावी, पत्तियॉ चारे के रूप में उपयोगी।

एसप्लीनियम एडिएन्टम-नीग्रम (एसप्लीनिएसी)
उपयोग- पौधे का क्वाथ हिचकी एवं गले की सूजन में लाभकारी, पत्तियाँ एवं जड़ पीलिया के रोगों में उपयोगी।

एसप्लीनियम इण्डिकम (एसप्लीनिएसी)
उपयोग- पौधा व जड़ सुखा कर एवं पीस कर तम्बाकू में मिश्रित की जाती है तथा विभिन्न रोगों के उपचार में प्रयुक्त होता है।

एसप्लीनियम डलहॉजी (एसप्लीनिएसी)
उपयोग-पौधे का क्वाथ टॉयफाइड रोग में प्रभावी।

एसप्लीनियम टाइकोमैन्स (एसप्लीनिएसी)
उपयोग- पौधा कृमिहर एवं कफोत्सारक के रूप में प्रयुक्त, पत्तियाँ प्लीहा की वृद्धि के उपचार एवं गर्भाशय के फोड़ों के इलाज में लाभकारी।

एथाइरियम पैक्टीनेटम (ऐथाइरिएसी)
उपयोग- पत्तियाँ चारे के रूप में प्रयुक्त एवं जड़ कृमिनाशक।

एथाइरियम सिमपैरी (एथाइरेसी)
उपयोग- पत्तियाँ खाद्य पदार्थ एवं चारे के रूप में।

एथाइरियम स्ट्रीजिलोसम (एथाइरेसी)
उपयोग- पत्तियाँ व जड़ क्रमशः खाद्य पदार्थ व चारे के रूप में।

बॉट्रीकियम लुनारिया (बॉट्रीकिएसी)
उपयोग- पौधा जीवाणुरोधी एवं रोगाणुरोधक होता है। पत्तियों का क्वाथ पेचिश में प्रयोग किया जाता है।

बॉट्रीपस लैनुजिनोसम (बॉट्रीकिएसी)
उपयोग- पौधा पेचिश रोधी एवं जीवाणुरोधी।

बाट्रीकियम मल्टीफिडम (बाट्रीकेसी)
उपयोग- पौधों का खाद्य एवं औषधि में प्रयोग।

बॉट्रीपस वर्जीनियानस (बॉट्रीकिएसी)
उपयोग- जड़ में रोगाणुनाशी एवं जीवाणुनाशी गुणों के पाये जाने के कारण इसे संक्रमण की रोकथाम हेतु घावों में प्रयुक्त किया जाता है।

बॉट्रीकियम टरनेटम (बाट्रीकिएसी)
उपयोग- नई पत्तियाँ सब्जी के रूप में प्रयुक्त एवं क्वाथ पेचिश में प्रभावी।

क्रिश्चैला डैंटाटा (थैलिपटैरीडेसी)
उपयोग-यह पौधा पशुओं के बिछावन के रूप में प्रयोग किया जाता है, पत्तियाँ एवं जड़ें रोगाणुनाशक होती हैं व चारे में इस्तेमाल की जाती हैं।

कोनियोग्रामे पूबैसेन्स (हीमियोनिटिडेसी)
उपयोग- जड़ सिर दर्द में लाभकारी होती है।

क्रिप्टोग्रामा ब्रनोनियाना (क्रिप्टोग्रामेसी)
उपयोग-पत्तियाँ एवं जड़ त्वचा के संक्रमण में लाभकारी ।

डिप्लैजियम एसकूलैण्टम (एथाइरिएसी)
उपयोग- नई कोमल पत्तियाँ सब्जी के रूप में प्रयोग की जाती हैं, एवं बडी पत्तियाँ चारे के रूप में। जड़ एवं तने का मिश्रण कटे एवं जले में प्रभावी होता है।

डिप्लैजियम मैक्सिमम (एथाइरिएसी)
उपयोग- कोमल पत्तियाँ सब्जी के रूप में प्रयोग की जाती हैं। यह पौधा यौन रोग में प्रभावी होता है।

ड्रायौपटैरिस बार्बीजैरा (ड्रायौपटैरिडेसी)
उपयोग- पौधे का क्वाथ कृमिनाशक होता है एवं पौधे को सुखाकर के ईधन के रूप में प्रयोग किया जाता है।

ड्रायौपटैरिस कैरोली-होपी (ड्रायौपटैरिडेसी)
उपयोग- जड़ एवं पत्तियाँ रोगाणुनाशक होती हैं एवं इसे कटे एवं घावों में लगाया जाता है।

ड्रायौप्टैरिस क्राइसोकोमा (ड्रायौप्टेरिडेसी)
उपयोग- पौधा चारा पत्ती के रूप में उपयोग किया जाता है।

ड्रायौपटैरिस कॉकलीएटा (ड्रायौपटैरिडेसी)
उपयोग- जड़ हैजा, गठिया, कुष्ठ, मिर्गी एवं दस्त के उपचार में उपयोगी है। पौधे का रस सर्प दंश में दिया जाता है।

ड्रायौपटैरिस जक्स्टापोजिटा (ड्रायौपटैरिडिसी)

उपयोग- जड़ कृमिनाशक होती है एवं पाचन क्रिया को बढ़ाती है।

ड्रायौपटैरिस स्टीवर्टी (ड्रायौपटैरिडेसी)
उपयोग- कोमल पत्तियाँ सब्जी के रूप में प्रयोग की जाती हैं। पौंधा चारा पत्ती एवं जैविक खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है।

ड्रायौपटैरिस वालीचियाना (ड्रायौपटैरिडेसी)
उपयोग- पौधा कृमिहर एवं शोधक होता है, जड़ पाचन क्रिया को बढ़ाती हैं।

ग्लैफाइरोटैरिडॉप्सिस इरूबिसैन्स (थैलिपटैरिडेसी)
उपयोग- जड़ मछली पकड़ने के चारे के रूप में प्रयोग की जाती है तथा ल्यूकोरिया व गुनोरिया रोगों के उपचार हेतु प्रयोग की जाती है।

हाइपोडिमैशियम क्रिनेटम (हाइपोडिमेशिएसी)
उपयोग- जड़ जीवाणुनाशक होती हैं एवं तने का आधार सब्जी के रूप में प्रयोग किया जाता है।

हाइपोलैपिस पॉलीपोडियोडिस (हाइपोलैपीडेसी)
उपयोग- पत्ते मवेशियों के बिस्तर के रूप में बिछाये जाते हैं।

लाइगोडियम फलैकसुओसम (लाइगोडिएसी)
उपयोग- पौधे का क्वाथ बेरीबेरी एवं त्वचा के संक्रमण में लाभदायक, पत्तियाँ पेचिश एवं स्त्री रोग में प्रयोग की जाती है। जड़ को सरसों के तेल के साथ उबालकर गठिया रोग में प्रयोग किया जाता है।

लाइगोडियम जैपोनिकम (लाइगोडिएसी)
उपयोग-पौधा रोगाणुनाशक, ज्वरनाशक मूत्रवर्धक, गठिया रोग व फेफड़ों तथा गुर्दो के रोग में प्रयोग किया जाता है। तना घास व लकड़ियों को बांधने के लिए प्रयुक्त होता है।

ल्यूकोस्टीजिया ट्रंकाटा (डैविल्लीएसी)
उपयोग- जड़ जीवाणुनाशक होती है अत: फोड़ों में प्रयोग की जाती है तथा कब्ज में लाभकारी होता है।

मार्सीलिया माइन्यूटा (मार्सीलिएसी)
उपयोग- पौधा अनिद्रा, मांसपेशियों की ऐंठन मनोरोग, चर्म रोग, नेत्र प्रदाह, अपच तथा नई पत्तियाँ माइग्रेन में लाभकारी होती हैं।

माइक्रोसोरियम मैमब्रेनेसियम (पॉलीपोडिएसी)
उपयोग- जड़ का क्वाथ डायरिया एवं पेचिश के उपचार में उपयोगी। जड़ हल्दी के साथ दूध में मिलाकर लेने से सर्दी-जुकाम में लाभदायक होती है।

नफ्रोलेपिस ऑरीकुलेटा (नैफ्रोलैपीडेसी)
उपयोग-जड़ (टयूबर) को सब्जी के रूप में खाया जाता है। सजावटी पौधे के रूप में इसे बगीचे में उगाया जाता है। पौधा फफूंदरोधक होता है एवं एलर्जी, सर्दी एवं श्वसन रोगों में लाभदायक है।

ओडोन्टोसोरिया चाइनैन्सिस (लिंडसिएसी)
उपयोग- जड़ माहवारी विकार मे काम आती है एवं कृमिनाशक होती है।

ओलिएन्ड्रा बॉलीची (ओलिएन्ड्रेसी)
उपयोग- जड़ पीसकर हडडी टूटने व खिसकने में लगायी जाती है। जड़ का क्वाथ यौन रोगों में प्रयोग किया जाता है।

ओनीकियम क्रिप्टोग्रिमॉइडिस (क्रिप्टोग्रैमेसी)
उपयोग- पत्तियाँ चारे में प्रयोग की जाती है।

ओनिकियम सिलिकुलोसम (क्रिप्टोग्रेमेसी)
उपयोग- जड़ एवं पत्तियाँ क्वाथ पेचिश में लाभकारी होती हैं।

ऑफियोग्लोसम रैटिकुलेटम (आफियोग्लोजेसी)
उपयोग- पौधा पीसकर जले में लगाया जाता है। पत्ती का सत्व घावों के उपचार में उपयोगी।

ऑसमुण्डा क्लेटोनियाना (ऑसमुण्डेसी)
उपयोग-पौधा एवं उसकी पत्ती रोगाणुनाशक एवं जीवाणुनाशक होती हैं। अत: घावों में उपचार हेतु प्रयोग की जाती हैं। पौधा चारे एवं मवेशियों के बिछावन के रूप में प्रयोग किया जाता है।

पॉलीपोडिओडिस माइक्रोराइजोमा (पॉलीपोडिएसी)
उपयोग- पौधा गठिया एवं जोड़ों के दर्द में प्रभावी होता है। जड़ भून कर खाने पर सर्दी एवं जुकाम में लाभदायक है।

पॉलीस्टीकियम नैपलेन्से (ड्रायोप्टैरिडेसी)
उपयोग- जड़ कब्ज एवं अपच में लाभकारी एवं पत्तियाँ जैविक खाद के रूप में प्रयोग की जाती हैं।

पॉलीस्टीकियम स्क्वैरोसम (ड्रायोप्टैरिडेसी)
उपयोग-पत्तियाँ जीवाणुनाशक होती है एवं सजावटी सामग्री के रूप में उपयोग की जाती हैं।

टैरिडियम रैवोलुटम (टैरिडिएसी)
उपयोग- पौधा कृमिनाशक होता है एवं पाचन रोग व डायरिया में लाभकारी। जड़ तेल के साथ मिलाकर मरहम के रूप में घावों में प्रयोग की जाती है।

टैरिस एस्पैरीकौलिस (टैरिडेसी)
उपयोग- जड़ रोगाणुनाशक होती है। पत्तियाँ खाद में प्रयोग की जाती है।

1. *एडिएन्टम इनसीजम* 2. *एडिएन्टम वैनुसेटम* 3. *एरेओस्टीजिया स्यूडोसिस टौप्टेरिरस* 4. *आर्थोमैरिस वालिचिआना* 5. *एसप्लीनियम डलहॉजी* 6. *एथाइरियम सिमपैरी* 7. *बॉट्रीपस लैनुजिनोसम* 8. *क्रिश्चैला डैंटाटा* 9. *कोनियोग्रामे पूबैसेन्स* 10. *ड्रायौपटैरिस बार्बीजैरा* 11. *ड्रायौप्टैरिस क्राइसोकोमा* 12. *ग्लैफाइरोटैरिडॉप्सिस इरूबिसैन्स*

1. *हाइपोडिमैशियम क्रिनेटम* 2. *हाइपोलैपिस पॉलीपोडियोडिस* 3. *लाइगोडियम फलैकसुओसम* 4. *मार्सीलिया माइन्यूटा* 5. *माइक्रोसोरियम मैमब्रेनेसियम* 6. *ओनीकियम क्रिप्टोग्रिमॉइडिस* 7. *ऑसमुण्डा क्लेटोनियाना* 8. *टैरिडियम रैवोलुटम* 9. *टैरिस बायोरिटा* 10. *टैरिस क्रिटिका* 11. *टैक्टारिया कोआडुनेटा* 12. *वुडवाडिया यूनिजैम्माटा*

टैरिस बायोरिटा (टैरिडेसी)
उपयोग- पौधा रोगाणुनाशक होता है एवं इसका रस कटे एवं घावों में प्रयोग किया जाता है।

टैरिस क्रिटिका (टैरिडेसी)
उपयोग- पत्तियां जीवाणुनाशक एवं लोक पशुचिकित्सा में प्रयोग की जाती हैं।

टैरिस बिटाटा (टैरिडेसी)
उपयोग-पौधा धार्मिक अनुष्ठानों में प्रयोग किया जाता है एवं आर्सनिक प्रदूषण को दूर करता है।

टैरिस वॉलिचिआना (टैरिडेसी)
उपयोग- खाद्य पदार्थो को सुवास्ति करने में प्रयोग की जाती है। पत्तियों का क्वाथ ग्रन्थियों के सूजन एवं पेचिश में प्रभावी होता है।

टैक्टारिया कोआडुनेटा (टैक्टारिएसी)
उपयोग-पौधा जीवाणुनाशक होता है एवं मुधमक्खी दंश, दमा व ब्रौंकाइटिस में प्रभावी होता है। जड़ का सत्व पेट दर्द एवं ज्वर में प्रभावी होता है।

वुडवार्डिया यूनिजैम्माटा (ब्लैकनेसी)
उपयोग- पत्तियाँ पेचिश में लाभकारी एवं सजावटी सामग्री के रूप में प्रयोग की जाती हैं।

उपरोक्त दिये गये पर्णांगों का लोक वनस्पति उपयोग होने के कारण जनपद में स्थानीय लोगों एवं जनजातियों के द्वारा अत्यधिक दोहन किया जा रहा है। इस दोहन के कारण बहुत सी प्रजातियाँ दुर्लभ स्थिति में आ गयी हैं एवं अन्य दुर्लभ होने की स्थिति में अग्रसर हैं। अत: हमें कुछ अति-आवश्यक कदम उठाने की जरूरत है जिससे हम अपनी शस्य श्यामला वसुन्धरा की जैव-विविधता का सतत उचित प्रबन्धन कर सकें। विभिन्न ग्राम पंचायतों एवं वन पंचायतों में जन-जागरूकता एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से वहाँ के स्थानीय लोगों को इन पौधों का उपयोग एवं महत्व बता कर इनको उगाने, इनके प्रबन्धन एवं इनके संरक्षण के लिए प्रेरित करें।

———

वनस्पति वाणी अंक 22 : 106-110(2013)

जैव विविधता संरक्षण की नूतन होप : कोप एकादश

संजय कुमार एवं **एस. एस. दाश**
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

हिन्दी, बंग्ला, संस्कृत एवं आंग्ल-भाषा से सुसज्जित जिस प्रकार की विविधता आपको लेख के शीर्षक में दिखाई दी, उससे भी कहीं ज्यादा विविधताओं से हमारी पृथ्वी सजी-संवरी हुई है। सांस्कृतिक विविधता, भाषाई विविधता आदि से परे जैव विविधता की बात करें, तो पृथ्वी पर विभिन्न वनस्पति एवं जन्तु जगत में पायी जाने वाली विविधता ही जैव विविधता है, जो पुनः पारितंत्रीय विविधता, जातीय विविधता एवं आनुवांशिक विविधता में विभक्त है। पृथ्वी पर समस्त प्राणि-जात खाद्य-श्रृंखला, खाद्य-जाल द्वारा एक दूसरे से जुड़े हुये हैं एवं किसी भी सूक्ष्म से सूक्ष्म जाति पर पड़ने वाला नकारात्मक प्रभाव समस्त जैव श्रृंखला को प्रभाावित करता है।

सी०बी०डी एवं कोप - सम्पूर्ण पृथ्वी के जैविक विविधता से समृद्ध तंत्र के संरक्षण एवं संवर्धन पर वैश्विक स्तर पर कार्य करने हेतु संयुक्त राष्ट्र के यूनाईटेड नेशंस इन्वायरमेंट प्रोग्राम (यू०एन०ई०पी०) द्वारा नवंबर 1988 में जैव विविधता पर कार्य समूह की बैठक बुलाई गई थी । जिसमें जैव विविधता संरक्षण को आम नागरिक के लिये उपयोगिता का विषय एवं विकास का अभिन्न अंग कहा गया । संयुक्त राष्ट्र द्वारा जैव विविधता संरक्षण हेतु अद्वितीय पहल करते हुये, जैविक विविधता पर वैश्विक स्तर के सम्मेलन (कन्वेंशन) को कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डाईवर्सिटी (सी०बी०डी०) ''अर्न्तराष्ट्रीय स्तर की कानूनी बाध्यकारी संधि'' गठित की गयी तथा समस्त देशों से इस जैविक विविधता कन्वेंशन संधि को स्वीकार कर, हस्ताक्षर करने की अपील की गई। उक्त संधि के तीन मुख्य लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं जिनमें, प्रथम-जैव विविधता का संरक्षण, द्वितीय-जैव विविधता के विभिन्न घटकों का सतत उपयोग सुनिश्चित करना, तथा तृतीय-आनुवाशिंक संसाधनों से प्राप्त लाभ का समुचित साम्य-साझाकरण करना, सम्मिलित हैं । उक्त सी०बी०डी० सम्मेलन (कन्वेंशन) को पृथ्वी शिखर सम्मेलन 5 जून 1992 से 4 जून 1993 तक विश्वभर के देशों की सहमति एवं भागीदारी स्वरूप हस्ताक्षर हेतु आधिकारिक तौर पर खोला गया था।

अब तक उक्त संधि पर 193 देशों के द्वारा सहमति हस्ताक्षर किये जा चुके हैं, इन हस्ताक्षरकर्ता देशों को 'पार्टीज' कहा जाता है। भारत 5 जून 1992 को इस पर हस्ताक्षर करने के साथ पार्टीज देशों की सूची में सम्मिलित हुआ तथा 18 फरवरी 1994 को इसकी पुष्टि करते हुये सी०बी०डी के लक्ष्यों को प्राप्त करने में अपनी प्रतिबद्धता प्रकट की । अभी तक भी संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, अण्डोरा जैसे कुछ देशों ने संधि पर अपनी औपचारिक पुष्टि नहीं की है। समस्त हस्ताक्षरकर्ता देशों के समूह की बैठक को 'कांफ्रेस ऑफ पार्टीज (कोप)' के नाम से जाना जाता है। विभिन्न आहूर्त कोप सम्मेलनों में सभी हस्ताक्षरकर्ता देशों के प्रतिनिधि प्रतिभाग करते हैं तथा अपने देशों में जैव विविधता एवं पर्यावरण संरक्षण-संवर्धन पर किये जा रहे कार्यों की समीक्षा के साथ-साथ संरक्षण हेतु नवाचारों की भूमिका, योजनाओं आदि पर निर्णय लेते हैं।

कोप के विभिन्न सम्मेलनों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत है-

कोप सम्मेलन	स्थान	विवरण
कोप-1	नास्साउ, बहामास, 28 नवंबर -9 दिसम्बर 1994	33 दस्तावेज एवं 13 निर्णय
कोप-2	जकार्ता, इंडोनेशिया, 6 से 17 नवंबर 1995	56 दस्तावेज एवं 23 निर्णय
कोप-3	बुइनोस, अर्जेंटिना, 4 से 15 नवंबर 1996	112 दस्तावेज एवं 27 निर्णय
कोप-4	ब्रातिस्लावा, स्लोवाकिया 4 से 15 मई 1998	71 दस्तावेज एवं 19 निर्णय
कोप-5	नैरोबी, केन्या 15 से 26 मई 2000	81 दस्तावेज एवं 2 निर्णय
कोप-6	द हैग, नीदरलैंड 7 से 19 अप्रैल 2002	114 दस्तावेज एवं 32 निर्णय
कोप-7	क्वालालमपुर, मलेशिया 9 से 20 फरवरी 2004	94 दस्तावेज एवं 36 निर्णय

कोप-8	कूरिटिबा, ब्राजील 20 से 31 मार्च 2006	106 दस्तावेज एवं 34 निर्णय
कोप-9	बोन्न, जर्मनी, 19 से 30 मई 2008	110 दस्तावेज एवं 36 निर्णय
कोप-10	नागोया, आयची, जापान, 18 से 29 अक्टूबर 2010	94 दस्तावेज एवं 47 निर्णय
कोप-11	हैदराबाद, भारत, 8 से 19 अक्टूबर 2012	124 दस्तावेज एवं 33 निर्णय
कोप-12	दो वर्ष पश्चात् 2014 में साउथ कोरिया में प्रस्तावित	----------

उपरोक्त सम्मेलनों के अतिरिक्त कार्टागिना, कोलम्बिया एवं मॉन्ट्रियल, कनाडा में 22 से 23 फरवरी 1999 एवं 24 से 28 जनवरी 2000 को एक्स कोप-प्रथम एवं द्वितीय नाम से भी सी०बी०डी० की असाधारण बैठक का आयोजन भी किया गया था, जिसमें 24 दस्तावेजों पर परिचर्चा एवं जैव सुरक्षा (बायोसेफ्टी) से जुड़े 3 निर्णय लिये गये थे।

कांफ्रेस ऑफ पार्टीज (कोप) का प्रथम सम्मेलन बहामास के नसाउ, बहामास में 28 नवंबर -9 दिसम्बर 1994 तक आयोजित किया गया था। कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डाईवर्सिटी के तृतीय लक्ष्य आनुवाशिंक संसाधनों से प्राप्त लाभ का समुचित साम्य-साझाकरण के क्रियान्वयन के लिये वर्ष 2002 में दक्षिण अफ्रिका के जोहानिसबर्ग में सतत विकास पर वैश्विक सम्मेलन में समस्त राष्ट्रों की सरकारों को परिचर्चा हेतु आमंत्रित किया गया था। लगातार छः वर्षो तक चली विभिन्न परिचर्चाओं के पश्चात् 29 अक्टूबर 2010 में जापान में आयोजित कोप के 10वें संस्करण में आनुवांशिक संसाधनों तक पहुँच एवं उनसे अर्जित लाभ का समुचित साम्य-साझाकरण करने के उद्देश्य के साथ नागोया प्रोटोकॉल को अंगीकृत किया गया।

कांफ्रेस ऑफ पार्टीज (कोप) सम्मेलन की 11वीं आम बैठक आयोजित करने का अवसर प्रथम बार भारत को मिला तथा पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के सौजन्य से आंध्र प्रदेश के हैदराबाद में दिनांक 8 अक्टूबर से 19 अक्टूबर 2012 तक इसका सफल आयोजन किया गया। यह सम्मेलन संयुक्त राष्ट्र के द्वारा वर्ष 2011-2020 को जैव-विविधता दशक घोषित करने के बाद जैव विविधता पर प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन होने के साथ ही पृथ्वी शिखर सम्मेलन रियो-डी-जनेरो की 20वीं वर्षगांठ पर आयोजित सम्मेलन भी रहा। कोप-11 हेतु इस बार की विषय वस्तु (थीम) जैव-विविधता संरक्षण एवं संवर्धन हेतु वित्तीय संसाधनों का एकत्रीकरण (मोबेलाइजेशन ऑफ फाइनेंन्शियल रिसोर्सेज) रखी गई थी ।

कांफ्रेस ऑफ पार्टीज के लिये डिजाइन किया गया खास प्रतीक चिह्न- भारत में प्रथम बार आयोजित हुये कोप सम्मेलन के लिये राष्ट्रीय डिजाइन संस्थान, अहमदाबाद, गुजरात के द्वारा एक खास प्रतीक (लोगो) पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के सौजन्य से निर्मित किया गया, यह प्रतीक चिन्ह कोप-10 से प्रेरित था। इसमें पृथ्वी पर जीवन चक्र को दर्शाता व्योमाकार अवस्था में एक शेर, समुद्र को दर्शाती एक डॉलफिन, मध्य में उड़ता पक्षी, एक पत्ती, अनाज एवं शिशु को लिए एक नारी को दर्शाकर आजीविका के साथ जैव विविधता के सम्बन्ध को चित्रित किया गया है। प्रतीक के ऊपर संस्कृत में उद्धरित **प्रकृतिः रक्षति रक्षिता** (प्रकृति तभी रक्षा करेगी जब वो स्वयं सुरक्षित होगी) पंक्तियाँ वीर भोग्या वसुंधरा को संरक्षित करने का आह्वान करती हैं।

भारत आगामी दो वर्षो के लिये कोप सम्मेलन की अध्यक्षता करेगा, केन्द्रीय पर्यावरण एवं वन राज्य मंत्री जयंती नटराजन के द्वारा कोप-11 के दौरान इस हेतु कार्यभार ग्रहण किया गया । भारत से पूर्व जापान के पर्यावरण मंत्री रयू मोट्समोटो कोप-10 से इसके अध्यक्ष थे। निवर्तमान अध्यक्ष रयू मोट्समोटो (जापान) ने अपने अध्यक्षीय सम्भाषण में कोप-10 के जापान, नागोया में सम्पादित सम्मेलन को ऐतिहासिक बताते हुये, आयिची जैव विविधता लक्ष्यों एवं जैव विविधता के विभिन्न घटकों के सतत उपयोग सुनिश्चित करने, तथा आनुवांशिक संसाधनों से प्राप्त लाभ का समुचित साम्य-साझाकरण करने के लिये गठित, नागोया प्रोटोकॉल के महत्वपूर्ण परिणामों की जानकारी दी । भारत की पर्यावरण

एवं वन राज्य मंत्री जयंती नटराजन ने जैव विविधता के संरक्षण हेतु जापान में 2010 में आयोजित कोप-10 में गठित नागोया संधि के लक्ष्यों को हासिल करने हेतु अधिक प्रतिबद्धता के साथ कार्य करने का जरूरत पर बल दिया ।

कांफ्रेस ऑफ पार्टीज-11 से आरम्भ हुई ग्रीन कुंभ यात्रा- कोप-11 सम्मेलन से ही विश्व में पहली बार ग्रीन कुंभ यात्रा का शुभारम्भ किया गया, धर्म गुरू स्वामी त्रिदानंद श्रीमन्नारायण चिन्ना जियार स्वामी जी के द्वारा सी०बी०डी० के कार्यकारी महासचिव ब्रोलियो-फेरा-डिसूजा को हरित कलश भेंट कर इस धार्मिक पर्यावरणीय यात्रा का शुभारम्भ किया गया। यह यात्रा जनवरी 2013 में इलाहाबाद में आयोजित होने वाले महाकुंभ से शुरू होकर विश्वभर के देशों में जैव विविधता संरक्षण एवं नदियों के प्रदूषण नियंत्रण हेतु जागरूकता का संदेश देते हुये कोप के 12वें संस्करण कोरिया में 2014 में सम्पन्न होगी।

विज्ञान प्रदर्शनी जैव-विविधता स्पेशल एक्सप्रेस का शुभारम्भ-संयुक्त राष्ट्र के द्वारा वर्ष 2011-2020 को जैव-विविधता दशक की घोषणा के साथ ही देश के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग एवं पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के द्वारा 9 अप्रैल 2012 से 28 अक्टूबर 2013 तक साइंस एक्सप्रेस के अन्तर्गत जैव-विविधता स्पेशल ट्रेन का संचालन किया गया है। 16 डिब्बों की इस वातानुकूलित ट्रेन में चलित प्रदर्शनी के माध्यम से देश की जैव सम्पदा की बृहद झांकी, जैव विविधता पर मंडराते खतरों, मौसम परिवर्तन आदि पर्यावरणीय मुद्दों से आम जनमानस एवं विद्यार्थियों को रूबरू करवाया जायेगा, जैव विविधता एक्सप्रेस देश के 62 स्थानों पर जाकर पर्यावरण संरक्षण का संदेश प्रसारित करेगी।

कोप के 11वें संस्करण में भारत के प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंह ने जैव विविधता संरक्षण को संस्थागत तंत्र की मजबूती तथा इस हेतु तकनीक के उपयोग के साथ मानव संसाधन जुटाने एवं जैव विविधता संरक्षण को गरीबी उन्मूलन के साथ जोड़ते हुये कार्य करने की आवश्यकता बताई । डा० मनमोहन सिंह ने कोप-11 के स्मृति स्तंम्भ का उद्घाटन करते हुए कहा कि, भारत ने नागोया संधि को स्वीकार कर जैव विविधता संरक्षण हेतु अपनी प्रतिबद्धता दिखाई है। इस अवसर पर जैव विविधता पर एक डाक टिकट का भी विमोचन किया गया। सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यू०एन०ई०पी०) के कार्यकारी निदेशक अचिम स्टीनर, सी०बी०डी० के कार्यकारी महासचिव ब्रोलियो-फेरा-डिसूजा के साथ साथ भारत की पर्यावरण एवं वन राज्य मंत्री जयंती नटराजन, आन्ध्र प्रदेश के राज्यपाल ई० नरसिंहमन, मुख्यमंत्री किरण कुमार रेड्डी सहित कई देशों के प्रतिनिधियों की उपस्थिति ने भारत में आयोजित कोप-एकादश की जैव विविधता पर आम बैठक को खास बैठक में रुपान्तरित कर सफल बनाया, जिसमें 180 देशों के 5000 से भी अधिक प्रतिनिधियों ने प्रतिभाग किया एवं लगभग 14,400 प्रतिभागियों ने सम्मेलन में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई ।

कोप-11 लोकगीतों के माध्यम से पर्यावरण जागरूकता पर कार्यक्रम देते राजस्थानी लोक कलाकार

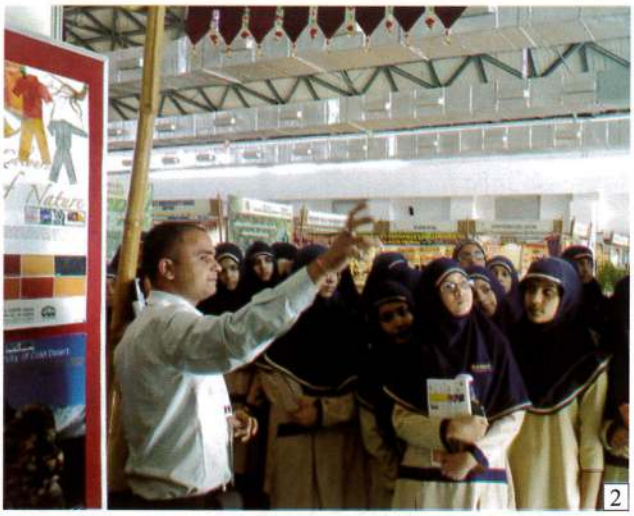

1. भा.व.स. के स्टॉल में पुस्तकों मे रूचि दिखाते हुए स्कूली बच्चे 2. स्कूली बच्चों को भा.व.स. की गतिविधियों की जानकारी देते हुए विशेषज्ञ 3. कोप वैज्ञानिक सत्र के दौरान डॉ. पी. सिंह निदेशक, भा.व.स. 4. कोप सम्मेलन का एक दृश्य 5. पुस्तक ट्रीज ऑफ हैदराबाद का विमोचन करते हुए अतिथिगण 6. भा.व.स. के पोस्टरों से जैव विविधता की जानकारी लेते हुए प्रतिभागी

सम्मेलन में कई देशों के सरकारी/गैर सरकारी संगठनों ने जैव विविधता पर आयोजित प्रदर्शनी में अपने कार्यों की विस्तृत जानकारी से आगन्तुकों एवं स्कूली बच्चों को अवगत करवाया । भारत के राष्ट्रीय जैव विविधता बोर्ड ने राज्यवार अपने संगठन के क्रियाकलापों की जानकारी विभिन्न स्टालों के माध्यम से दी । इसी कड़ी में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण (बी०एस०आई०) कोलकाता ने भी कोप-11 की प्रदर्शनी में प्रतिभाग किया एवं भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, प्रकाशन अनुभाग के द्वारा विज्ञान स्टॉल के माध्यम से विभाग की विभिन्न गतिविधियों की जानकारी दी गई । कोप-एकादश में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के द्वारा डा० पी० वी० प्रसन्ना एवं पी० वेणु द्वारा लिखित ट्रीज ऑफ हैदराबाद, का आन्ध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री किरण कुमार रेड्डी के द्वारा श्री टी० चटर्जी (सचिव) पर्यावरण एवं वन मंत्रालय की उपस्थिति में विमोचन किया गया। कोप-एकादश के वैज्ञानिक सत्रों में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के निदेशक डा० पी० सिंह ने जैव विविधता के संरक्षण में सर्वेक्षण की भूमिका एवं किये जा रहे कार्यों की जानकारी दी। प्रदर्शनी के माध्यम से प्रकाशन अनुभाग द्वारा शीत मरुस्थल-एक भंगुर पारितंत्र, रोडोडेन्ड्रान हंटिंग इन अरूणाचल प्रदेश, एवं अंडमान एवं निकोबार की तटीय वनस्पति सम्पदा पर बी०एस०आई० द्वारा बनाई गई लघु फिल्में भी प्रदर्शित की गई, जिनका स्कूली बच्चों के साथ साथ विदेशी मेहमानों ने लुत्फ लिया। बी०एस०आई० प्रकाशन के द्वारा कोप प्रदर्शनी में कई किताबों एवं पादप चित्रों को भी प्रदर्शित किया गया। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण ने नवीन प्रकाशित चित्रों के माध्यम से भारत की वानस्पतिक सम्पदा को जन समुदाय तक पहुंचाया ।

इस प्रकार भारत की धरती पर जैव विविधता के सम्बंध में आयोजित हुआ बृहद् सम्मेलन पृथ्वी के अस्तित्व को बचाने हेतु इस महान सोच के साथ सम्पन्न हुआ कि, वैश्विक स्तर पर पर्यावरणीय समस्याओं को ध्यान में रखते हुये हमें आर्थिक विकास के प्रयत्नों के साथ पर्यावरणीय प्रणालियों जैसे मृदा, जल एवं आनुवांशिक विविधता पर संपोषणीयता के विभिन्न आयामों के माध्यम से कार्य करने की आवश्यकता है, क्योंकि यह पर्यावरण समूची मानव जाति का साझा संसाधन है, और इसका संरक्षण-संवर्धन हर एक व्यक्ति की साझेदारी से ही संभव है।

हमारा पर्यावरण हमारे रवैये और अपेक्षाओं का आईना है।

वनस्पति वाणी अंक 22 : 111-112(2013)

पादपालय : डिजिटाइजेशन व स्कैनिंग

अरविन्द कुमार एवं **सुनील कुमार श्रीवास्तव**
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

सुदूर क्षेत्रों से एकत्र किये गये पौधों के नमूनों का संग्रहण एवं परिरक्षण कर उन्हें एक मान्य वर्गीकरण प्रणाली के अनुसार जिस स्थान पर रखा जाता है, उसे पादपालय कहते हैं। विश्व में लगभग 3990 मान्यता प्राप्त पादपालय हैं तथा भारत में इनकी संख्या 67 के करीब है। इन पादपालयों में रखे गये नमूने हमें विभिन्न शोधों में सहायक होते हैं। ये नमूने विभिन्न जैव भौगोलिक क्षेत्रों में पायी जाने वाली वनस्पति विविधता को दर्शाते हैं, मुख्यत: इन नमूनों पर वर्गिकी शोध करके उसकी सही पहचान, नामकरण, क्षेत्रीय उपलब्धता एवं आर्थिक-औषधि के रूप में प्रयोग किया जाना आदि जानकारियों को दर्शाया जाता है। प्रत्येक नमूने पर एक लेबल डाटा होता है, जिस पर ये सभी जानकारियां, जैसे-वह नमूना किस स्थान से एकत्र किया गया, उसकी तिथि, वानस्पतिक नाम, कुल, वंश, प्रजाति तथा उसका प्रारूप एवं प्राकृतवास आदि अंकित होता है।

आधुनिक समाज सूचनाओं पर आधारित है, अत: सूचना को धन, सामग्री व मानव संसाधन के बाद चतुर्थ संसाधन माना जाता है। वर्तमान युग में सूचना को न केवल संसाधन, वरन् तीसरी दुनिया की आधारभूत आवश्यकता व उत्पाद माना गया है। इलैक्ट्रॉनिक सूचना पद्धति के विकास ने बड़ी मात्रा में पादपालयों को प्रभावित किया है। पादपालय अनुसंधान से जुड़े वैज्ञानिकों व अन्य व्यक्तियों को शीघ्रता से प्रचुर मात्रा में सूचना प्रदान करके तथा सूचना की बढ़ती हुई बाढ़ से शीघ्र सुव्यवस्थित उपयोगी सूचना प्रदान करने में मदद कर रहा है। पादपालयों की प्रचलित संकल्पना, जो कि पूर्णत: हर्बेरियम डाटा पर आधारित थी, वह सूचना तकनीकी की मदद से डिजिटल/इलैक्ट्रानिक स्वरूप की ओर बढ़ रही है।

पादपालयों को लम्बे समय के लिये संरक्षित रखने हेतु नवीनतम मीडिया व तकनीकी को प्रयुक्त करना चाहिये। डिजिटल तकनीकी आज की आवश्यकता बन गयी है, क्योंकि इन्टरनेट सूचना के उत्तरकालीन युग में कम्प्यूटर व संचार तकनीकी ने महत्वपूर्ण प्रगति की है। डिजिटल स्वरूप में पादपों को रखने से पादपालयों की समस्यायें सुलझती हैं, जैसे कि पादपालयों के संरक्षण, सुरक्षित रखने, संग्रह, स्थानाभाव, मल्टीमिडिया प्रलेख व दूर स्थानों से सूचना संग्रहण आदि। प्राचीन माध्यमों से संग्रह किए गए पादप नमूनों को नष्ट होने से पूर्व ताजा नए माध्यमों को अपनाकर सुरक्षित रखती है। सी.डी. रोम पर सभी इलैक्ट्रानिक से लेकर ऑनलाइन डाटा बेस तक के प्रलेख इसमें सम्मिलित हैं और डिजिटल ढांचे (साफ्टवेयर) में पादपालय के पादप नमूनों का प्रयोगात्मक डाटा संग्रह को शीघ्रता से बदलती तकनीक व संगठनात्मक ढांचे के तत्वों के सम्मुख पुन: प्रदर्शन प्राप्त करने में सहायक होता है।

पादपालयों के डिजिटाइजेशन का उद्देश्य -

पादपालयों एवं इनमें रखे पादन नमूनों की क्षति के मुख्य कारणों में तापमान, प्रकाश, आर्द्रता, आग, कवक, बैक्टेरिया, हानिकारक कीड़े तथा बार-बार पादप नमूनों का सुनियोजित ढंग से उपयोग न करना एवं उनके फूल, पत्तियों, फल, बीज का नष्ट हो जाने से बचाव करने के लिए पादप नमूनों का डिजिटाइजेशन अति आवश्यक है। इसके अतिरिक्त बचाव के अन्य निम्नलिखित उद्देश्य हैं।

1. पादपालय की सूचना के ऐतिहासिक मूल्य के रखरखाव हेतु।
2. पादप नमूनों को व उनमें निहित डाटा सूचनाओं को प्रयोग में लाने के लिए सरल बनाना।

3. पादपालयों की सूचना को लम्बी अवधि तक जीवित रखने हेतु।
4. पादपालयों की सूचना को उपयोग में लाने हेतु वैश्विक स्तर प्रदान करना।
5. वैज्ञानिकों व वनस्पतिज्ञों व अनुसंधानकर्ताओं को सूचना का उपयोग करने हेतु समय की बचत।
6. डिजिटाइज्ड पादपालय द्वारा आसानी से संग्रहकर्ता पौधों के कुल, वंश, जाति की सूचना जिला एवं राज्य स्तर पर भी आसानी से प्राप्त कर सकते हैं।
7. डिजिटाइज्ड पादपालय द्वारा विभिन्न पादप नमूनों पर आधारित सूचनाओं के आधार पर किसी क्षेत्र में उसकी उपलब्धता संकटग्रस्त होने तथा अन्य सांख्यिकी डाटा को भी देखा जा सकता है।

प्रलेखों को जांचना व छाया फाईल बनाना

इस प्रक्रिया में पादपों के प्रलेखों को जांचना एक प्राथमिक प्रक्रिया है। हर्बेरियम डाटा शीट को 600 डी.पी.आई. वाले विश्लेषण से कम की मात्रा में नहीं जांचना चाहिये। आधारभूत रूप में विश्लेषण हर्बेरियम शीट की भौतिक स्थिति पर निर्भर करता है। जांच हुई छायाप्रति को आदर्श रूप में ग्राफिक फाइल फार्मेट में संग्रहित किया जाता है, जैसे कि ज्वाइंट फोटोग्राफिक एक्सपर्ट ग्रुप (जे.पी.ई.जी., टैग्ड इमेज फाईल फॉमेट (टी.आई.एफ.एफ.) आदि। अन्तिम आउटपुट को हल्के फॉर्मेट जैसे पोर्टेबल डाक्यूमेंट फॉमेट (पीडीएफ) में बदल दिया जाता है। पीडीएफ फॉरमेट के अन्दर बनाये हुये विभिन्न सुरक्षा के उपायों को संरक्षित रखना, जो कि उपयोगिता को संस्करण, डाउन लोडिंग अथवा यहां तक कि अन्यत्र प्रकाशित करने से रोकता है।

विश्व एवं भारत में ऐसे कई पादपालय हैं, जो 300 वर्ष से भी पुराने हैं, जिनका भरपूर रखरखाव करने के बावजूद भी अनेकों वर्षो पादप नमूने धीरे-धीरे नष्ट हो रहे हैं। इस कारण पिछले कई दशकों पूर्व उन संस्थानों में जहां यह पादपालय हैं, उनके प्रमुख इन पादप नमूनों पर लिखित डाटा को कम्प्यूटर द्वारा विभिन्न साफ्टवेयर में सुरक्षित कर रहे हैं। विश्वभर में कार्यरत विभिन्न वैज्ञानिक जो किसी विशेष कुल व वंश के पौधों पर शोध कर रहे हैं, इन पादप नमूनों को डिजिटाइज्ड डाटा कम्प्यूटर व ई-मेल द्वारा शीघ्र ही प्राप्त कर सकते हैं। कई बार वैज्ञानिक एवं शोधकर्ता पादपों का नामकरण करते समय गलती कर देते हैं तथा डिजिटाइजेशन के दौरान वह डाटा भर दिया जाता है, तदुपरान्त अन्य कोई (रिवीजन) दोहरीकरण करने वाले वैज्ञानिक उसका सही नामकरण करके उसे साफ्टवेयर में दोबारा अंकित कर सकते हैं।

पादपालय में डाटा को अधिक अवधि तक संरक्षित व सुरक्षित रखने हेतु नवीनतम मीडिया व तकनीक को प्रयुक्त करना चाहिए। भारत सरकार की कई संस्थाओं द्वारा पादपालयों के नमूने का डिजीटाइजेशन किया जा रहा है। वर्तमान समय में भारत तथा अन्य देशों में पादपालयों के डिजिटलीकरण एवं उनकी उच्च आवर्धन छवि को सुरक्षित कर संग्रहित किये जाने पर जोर दिया जा रहा है। यह प्रक्रिया जिन पादपालय में पूरी हो गयी है उनके पादप नमूने (प्रारूप) को उस संस्थान की वेबसाइट पर आसानी से देखा जा सकता है, ऐसा होने से पादप वर्गीकी शोध में एक नई स्फूर्ति आ गयी है,परिणामत: शोधकर्ता कम समय एवं सही शोध करने में निरन्तर सफल हो रहे हैं। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता एवं उसके सभी क्षेत्रीय केन्द्रों के पादपालयों, तथा भारतीय वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून, राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ तथा अनेकों अन्य संस्थानों के पादपालयों में डिजिटलीकरण का कार्य चल रहा है।

———

वनस्पति वाणी अंक 22 : 113-116(2013)

औषधि क्षेत्र में नोबल पुरस्कार- 2012

नितिषा श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

वर्ष 2012 का औषधि में नोबल पुरस्कार ब्रिटिश वैज्ञानिक जान गुर्डन तथा जापान के शिन्या यमनाका को सम्मिलित रूप से प्रदान किया गया। इनके चयन की घोषणा स्वीडन के कोरोलिंस्का इंस्टीट्यूट ने 8 अक्टूबर, 2012 को की थी। इन दोनों वैज्ञानिकों ने अलग-अलग शोध के निष्कर्षों से यह पता लगाया कि, परिपक्व कोशिकाओं को पुन: एक से अधिक अंगों या ऊत्तकों को प्रभावित करने में सक्षम बनाने के लिए रिप्रोग्राम किया जा सकता है। इनकी यह खोज कोशिकाओं तथा जीवधारियों के विकास को समझने हेतु अत्यंत महत्वपूर्ण है।

नोबल पुरस्कार औषधि या कार्यिकी के क्षेत्र में दिया जाने वाला सर्वोच्च पुरस्कार है। वर्ष 2012 का नोबल पुरस्कार 80 लाख स्वीडिश क्रोन का है। नोबल पुरस्कारों की श्रेणी में सर्वप्रथम औषधि के क्षेत्र में नोबल विजेताओं के नाम की घोषणा प्रतिवर्ष अक्टूबर माह में की जाती है। यह पुरस्कार प्रतिवर्ष 10 दिसम्बर को इसके संस्थापक एवं डाइनमाइट के आविष्कारक अल्फ्रेड बर्नहाड नोबल की बरसी के अवसर पर प्रदान किया जाता है। नोबल पुरस्कारों का प्रारम्भ 1901 में हुआ एवं वर्ष 2011 तक कुल 853 लोगों या संस्थाओं को यह पुरस्कार दिया जा चुका है। औषधि के क्षेत्र में अब तक कुल 199 लोगों को यह पुरस्कार प्रदान किया जा चुका है।

जान बी० गुर्डन (यू0के0)

जान बी० गुर्डन का जन्म सन् 1933 में डिपेंहाल, यूनाइटेड किंगडम में हुआ था। उन्होंने यूनिवर्सिटी ऑफ ऑक्सफोर्ड से सन् 1960 में डी० फिल० की उपाधि प्राप्त की तथा तत्पश्चात कैलिफोर्निया इंस्टीट्यूट आफ टेक्नोलॉजी में पोस्ट-डाक्टरेट के रूप में शोधकार्य किया। सन् 1972 में इन्होनें कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में कोशिका विज्ञान के प्रोफेसर के रूप में कार्य किया। गुर्डन वर्तमान में गुर्डन संस्थान, कैम्ब्रिज में कार्यरत हैं। इन्होंने सन् 1962 में पता लगाया कि कोशाओं की विशिष्ताओं को परिवर्तित किया जा सकता है। एक प्रयोग में उन्होने मेंढ़क की अंड-कोशिकाओं के अपरिवर्धित केंद्रक को इनकी आंत की परिपक्व कोशिकाओं के केंद्रक से बदल दिया तथा पाया की अंड कोशिका एक सामान्य टैडपोल में विकसित होने में सक्षम है ,इनके इस प्रयोग से यह निष्कर्ष निकला कि, मेंढक की किसी भी वयस्क कोशिका के जीनोम में वो सभी सूचनाएँ संग्रहित हैं, जो उसके विकास के विभिन्न पदों के लिए आवश्यक हैं।

शिन्या यमनाका (जापान)

शिन्या यमनाका का जन्म सन् 1962 में ओसाका, जापान में हुआ था। उन्होंने सन् 1987 में कोबे विश्वविद्यालय से एम० डी० की उपाधि प्राप्त की तथा इसके पश्चात ओर्थोपेडिक सर्जन का प्रशिक्षण प्राप्त किया। इन्होंने अपनी पीएच०डी० की उपाधि ओसाका सिटी यूनिवर्सिटी से सन् 1993 में प्राप्त की। पीएच० डी० की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् इन्होने ग्लेड्स्टोन इंस्टीट्यूट, सन-फ्रांसिस्को, यू० एस०ए० तथा नारा इंस्टीट्यूट आफ साइन्स एण्ड टेक्नालजी, जापान मे कार्य किया। यमनाका वर्तमान में क्योटो युनिवर्सिटी मे प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं।

जान बी० गुर्डन के 1962 में कोशिकाओं की विशिष्ताओं से संबन्धित प्रयोग के 40 वर्ष पश्चात् सन 2006 में शिन्या यमनाका ने चूहे की पूर्ण रूप से विकसित वयस्क कोशिका को अवयस्क स्टेम कोशिकाओं में सफलतापूर्वक रिप्रोग्राम किया। चूहे की वयस्क कोशिका को अवयस्क कोशिका में परिवर्तित करने के लिए यमनाका ने इनमे केवल कुछ जीनो को प्रवेश कराया और अंतत: इन कोशिकाओं को अवयस्क कोशिकाओं में रिप्रोग्राम करने में सफलता प्राप्त की और अब ये अवयस्क कोशिकाएँ शरीर की किसी भी प्रकार की कोशिकाओं में परिवर्तित होने की क्षमता रखती हैं।

जान बी० गुर्डन एवं शिन्या यमनाका की इस महान खोज ने कोशिकाओं के विकास एवं वृद्धि की समूची परिकल्पना ही परिवर्तित कर दी तथा इनकी इस खोज ने मनुष्य की वयस्क कोशिकाओं को रिप्रोग्राम करके मानव शरीर में होने वाली विभिन्न प्रकार की बीमारियों से लड़ने एवं इनके उपचार के लिए अनेक नए रास्ते खोल दिये हैं।

औषधि का यह नोबेल पुरस्कार सन् 1901 और सन् 2012 के बीच 103 बार, 201 वैज्ञानिकों को प्रदान किया जा चुका है।

2012 – सर जॉन बी गुर्डन (यूनाइटेड किंग्डम), शिन्या यमनाका (जापान)
2011 – ब्रूस ए बूटलर (यूनाइटेड किंग्डम), जूल्स ए हॉफमन (लक्षेमबर्ग), राल्फ एम स्टीनमान (कनाडा)
2010 – रॉबर्ट जी एडवर्ड्स (ग्रेट ब्रिटेन)
2009 – एलिजाबेथ एच. ब्लैकबर्न (यू०एस०), कैरोल डब्ल्यू ग्रीडर (यू०एस०), जैक डब्ल्यू जस्ताक(यू०एस०)
2008 – हराल्ड जुर हौसेन (जर्मनी), फ्रेंकोइस बर्रे सिनौस्सी (फ्रांस), ल्यूक मोंटग्नियर (फ्रांस)
2007 – मारियो आर कपच्ची (यू०एस०), सर मार्टिन जे इवांस (यूनाइटेड किंगडम), ओलिवर स्मिथिएस (यू०एस०)
2006 – एंड्रयू जेड आग (यू०एस०), क्रेग सी. मेलो (यू०एस०)
2005 – बैरी जे मार्शल (ऑस्ट्रेलिया), जे रॉबिन वॉरेन (ऑस्ट्रेलिया)
2004 – रिचर्ड एक्सल (यू०एस०), लिंडा बी बक (यू०एस०)
2003 – पॉल सी. लौटेर्बूर (यू०एस०), सर पीटर मैन्सफील्ड (यूनाइटेड किंग्डम)
2002 – सिडनी ब्रेनर (यूनाइटेड किंग्डम), एच. रॉबर्ट हारविट्ज (यू०एस०), जॉन ई. सुलस्टोन (यूनाइटेड किंग्डम),
2001 – लेलैंड एच. हार्टवेल (यू०एस०), टिम हंट (यूनाइटेड किंग्डम), सर पॉल एम. नर्स (यूनाइटेड किंग्डम)
2000 – अरविद कार्लसन (स्वीडन), पॉल ग्रींगार्ड (यू०एस०), एरिक आर कंडेल (यू०एस०)
1999 – गंतर ब्लोबेल (यू०एस०)
1998 – रॉबर्ट एफ फर्क्गात (यू०एस०), लुई जे इग्नारो (यू०एस०), फेरिड मुराड (यू०एस०)
1997 – स्टेनली बी प्रूसीनर (यू०एस०)
1996 – पीटर सी. डोहर्टी (ऑस्ट्रेलिया), रॉल्फ एम. जिंकेरगेल (स्विट्जरलैंड)
1995 – एडवर्ड बी लुईस (यू०एस०), क्रिस्टियन नुसलें-वोलहार्ड(यू०एस०), एरिक एफ विसचौस (जर्मनी)
1994 – अल्फ्रेड जी गिलमन (यू०एस०), मार्टिन रोडबेल (यू०एस०)
1993 – रिचर्ड जे रॉबर्ट्स (यू०एस०), फिलिप ए शार्प (ग्रेट ब्रिटेन)
1992 – एडमंड एच. फिशर(यू०एस०), एडविन जी क्रेब्स (यू०एस०)
1991 – इरविन नेहर (जर्मनी), बर्ट सकमान (जर्मनी)
1990 – यूसुफ ई. मरे (यू०एस०), ई. डोनल थॉमस (यू०एस०)
1989 – जे माइकल बिशप (यू०एस०), हेरोल्ड ई. वारमुस (यू०एस०)
1988 – सर जेम्स ब्लैक (ग्रेट ब्रिटेन), गर्टरूड बी एलीओन (यू०एस०), जॉर्ज एच. हितचिंग्स (यू०एस०)
1987 – सुसुमु टोनेगवा (जापान)
1986 – स्टैनली कोहेन (यू०एस०), रीटा लेवी के मोनतालसिनी (इटली-यू०एस०)
1985 – माइकल एस ब्राउन (यू०एस०), यूसुफ एल गोल्डस्टीन (यू०एस०)
1984 – नील्स के० जेरने (ग्रेट ब्रिटेन- डेन्मार्क), जार्ज जेएफ कोहलर (कोहलर), सीजर मिलस्तें (ग्रेट ब्रिटेन-डेन्मार्क)
1983 – बारबरा मैकक्लिंटोक (यू०एस०)
1982 – सुने बेर्ग्स्त्रोम (स्वीडन), बेंग्त समुल्सोन (स्वीडन), जॉन आर वाने (ग्रेट ब्रिटेन)
1981 – रोजर डब्ल्यू स्पेरी (यू०एस०), डेविड एच. हूबेल (यू०एस०), टोर्स्टेन एन विसेल (यू०एस०)
1980 – बारुजबेनकार्फ (यू०एस०), जीन डौसेट (फ्रांस), जॉर्ज डी. स्नेल (यू०एस०)
1979 – एलन एम. कोरमक (यू०एस०), गॉडफ्रे एन हौंसफेल्ड (ग्रेट ब्रिटेन)

1978 - वर्नर आर्बर (स्विट्जरलैंड), डैनियल नाथन्स (यू०एस०), हैमिल्टन ओ स्मिथ (यू०एस०)
1977 - रोजर गुइलमिन (यू०एस०), एंड्रयू वी. स्काहली (यू०एस०), रोजलिन यलो (यू०एस०)
1976 - बारूक एस ब्लमबर्ग (यू०एस०), डी. कार्लटन गज्डुसेक (यू०एस०)
1975 - डेविड बाल्टीमोर (यू०एस०), रीनाटो डुल्बेक्को (इटली-यू०एस०), हावर्ड मार्टिन टेमीन (यू०एस०)
1974 - अल्बर्ट क्लाड (लुक्षेंबर्ग-यू०एस०), क्रिश्चियन डी दुवे (बेल्जियम), जॉर्ज ई. पलाडे (रोमानिया-यू०एस०)
1973 - कार्ल वॉन फ्रीश्च (जर्मनी), कोनराड लोरेन्ज (जर्मनी-ऑस्ट्रेलिया), निकोलस टिनबेरगेन (ग्रेट ब्रिटेन)
1972 - गेराल्ड एम. एडेलमैन (यू०एस०), रॉडने आर पोर्टर (ग्रेट ब्रिटेन)
1971 - अर्ल डब्ल्यू सदरलैंड (यू०एस०)
1970 - सर बर्नार्ड काट्ज (ग्रेट ब्रिटेन), उल्फ वॉन यूलर (स्वीडन), जूलियस एक्सेरोल्ड (यू०एस०)
1969 - मैक्स डेलब्रूक (यू०एस०), अल्फ्रेड डी. हर्षे (यू०एस०), साल्वाडोर ई. लुरिया (यू०एस०)
1968 - रॉबर्ट डब्ल्यू होल्ले (यू०एस०), हर गोबिंद खुराना (यू०एस०), मार्शल डब्ल्यू निरेन्बेर्ग (यू०एस०)
1967 - रगनरग्रेनाइट (स्वीडन), हलदान केफ्फर हर्तलाइन (यू०एस०), जॉर्ज वाल्ड (यू०एस०)
1966 - पेयतून रॉस (यू०एस०), चार्ल्स ब्रेंटन हग्गींस (यू०एस०)
1965 - फ्रेंकोइस जेकब (फ्रांस), आंद्रे ल्वोफ्फ(फ्रांस), जैक्स मोनोड (फ्रांस)
1964 - कोनराड बलोच (यू०एस०), फेयोडोर ल्यनेन (जर्मनी)
1963 - सर जॉन कैरू एक्लिस (ऑस्ट्रेलिया), एलन लॉयड होद्ग्किन (ग्रेट ब्रिटेन), एंड्रयू एफ हक्सले ग्रेट ब्रिटेन)
1962 - फ्रांसिस हैरी कॉम्पटन क्रिक (ग्रेट ब्रिटेन), जेम्स डेवी वाटसन (यू०एंस०), मौरिस ह्यूग फ्रेडरिक विल्किंस (ग्रेट ब्रिटेन)
1961 - जॉर्ज वॉन बेकेसी (यू०एस०)
1960 - सर फ्रैंक मैक्फार्लेन बर्नेट (ऑस्ट्रेलिया), पीटर ब्रायन मेडवर (ग्रेट ब्रिटेन)
1959 - सेवेरों ओचाओ ((यू०एस०), आर्थर कोर्न्बेर्ग (यू०एस०)
1958 - जॉर्ज डबल्यू बीडेल (यू०एस०), एडवर्ड लॉरी टेटम (यू०एस०), जोशुया लीडेरबेर्ग (यू०एस०)
1957 - डैनियल बोवेत (इटली)
1956 - आन्द्रे फ्रेडरिक कौरनन्द (यू०एस०), वर्नर फोर्सस्मान (जर्मनी), डिकिन्सन डब्ल्यू रिचर्ड्स (यू०एस०)
1955 - एक्सल ह्यूगो थियोडोर थेओरेल (स्वीडन)
1954 - जॉन फ्रेंकलिन एंडेर्स (यू०एस०), थॉमस एच०वेलर (यू०एस०), फ्रेडरिक चौपमैन रॉबिंस (यू०एस०)
1953 - हंस एडॉल्फ क्रेब्स (ग्रेट ब्रिटेन), फ्रिट्ज अल्बर्ट लिपमान (यू०एस०)
1952 - सेलमान अब्राहम वाकस्मान (यू०एस०)
1951 - मैक्स थिलरत (यू०एस०)
1950 - एडवर्ड केल्विन केंडल (यू०एस०), ताउस रिचेस्तें (स्विट्जरलैंड), फिलिप शोवल्टर हेञ्च (यू०एस०)
1949 - वाल्टर रुडोल्फ हेस (स्विट्जरलैंड), एंटोनियो मोनिज (पुर्तगाल)
1948 - पॉल हर्मन मुलर (स्विट्जरलैंड)
1947 - कार्ल फर्डिनेंड कोरी (यू०एस०), गेरटी थेरेसा कोरी (यू०एस०), बर्नार्डो अल्बर्टो हौसे (अर्जेंटीना)
1946 - हरमन जोसेफ मुलर (यू०एस०)
1945 - सर अलेक्जेंडर फ्लेमिंग (ग्रेट ब्रिटेन), अर्नस्ट बोरिस चेन (ग्रेट ब्रिटेन), सर हावर्ड वाल्टर फ्लोरे (ग्रेट ब्रिटेन)
1944 - जोसफ एर्लागर (यू०एस०), हरबर्ट स्पेंसर गैसर (यू०एस०)
1943 - हेनरिक कार्ल पीटर डैम (डेन्मार्क), एडवर्ड आदिल्बेर्ट डोईसी (यू०एस०)
1942 - इस वर्ष कोई नोबेल पुरस्कार प्रदान नहीं किया गया।
1941 - इस वर्ष कोई नोबेल पुरस्कार प्रदान नहीं किया गया।
1940 - इस वर्ष कोई नोबेल पुरस्कार प्रदान नहीं किया गया।

1939 – गेरहार्ड डोमाइक (जर्मनी)
1938 – कार्निली जीन फ्राँस्वा हेयमन्स (बेल्जियम)
1937 – अल्बर्ट ग्योर्गी (हंगरी–यू०एस०)
1936 – सर हेनरी हलेट्ट डेल (ग्रेट ब्रिटेन), ओटो लोएवी (यू०एस०)
1935 – हंस स्पीमान (जर्मनी)
1934 – जॉर्ज होयत व्हिपल (यू०एस०), जॉर्ज रिचर्ड्स माइनोट (यू०एस०), विलियम पी मर्फी (यू०एस०)
1933 – थॉमस हंट मॉर्गन (यू०एस०)
1932 – सर चार्ल्स स्कॉट शेररिंगटोन (ग्रेट ब्रिटेन), एडगर डगलस एड्रियन (ग्रेट ब्रिटेन)
1931 – ओटो हेनरिक वारबर्ग (जर्मनी)
1930 – कार्ल लैंडस्टीनर (यू०एस०)
1929 – क्रिस्टियान इजक्मान (नीदरलैंड), सर फ्रेडरिक गौलंद हॉपकिन्स (ग्रेट ब्रिटेन)
1928 – चार्ल्स जूल्स हेनरी निकोल (फ्रांस)
1927 – जूलियस वैगनर–जौरेग्ग (ऑस्ट्रीया)
1926 – जोहानिस एंड्रियास गृब फिबिगर (डेन्मार्क)
1925 – इस वर्ष कोई नोबेल पुरस्कार प्रदान नहीं किया गया।
1924 – विलेम एंथोवेन (नीदरलैंड)
1923 – फ्रेडरिक जी बंटिंग (कनाडा), जॉन जेम्स आर मकलेओफ(स्कॉटलैंड)
1922 – आर्चीबाल्ड विवियन हिल (ग्रेट ब्रिटेन), ओटो फ्रिट्ज मेयरहॉफ (जर्मनी)
1921 – इस वर्ष कोई नोबेल पुरस्कार प्रदान नहीं किया गया।
1920 – शैक्क ए० स्टीनबर्ग क्रोघ (डेन्मार्क)
1919 – जूल्स बोरडेट (बेल्जियम)
1918 – इस वर्ष कोई नोबेल पुरस्कार प्रदान नहीं किया गया।
1917 – इस वर्ष कोई नोबेल पुरस्कार प्रदान नहीं किया गया।
1916 – इस वर्ष कोई नोबेल पुरस्कार प्रदान नहीं किया गया।
1915 – इस वर्ष कोई नोबेल पुरस्कार प्रदान नहीं किया गया।
1914 – रॉबर्ट बारानी (ऑस्ट्रीया)
1913 – चार्ल्स रॉबर्ट रिचेत (फ्रांस)
1912 – एलेक्सिस कैरेल (फ्रांस)
1911 – अल्वार गल्स्त्रंड (स्वीडन)
1910 – अल्ब्रेक्ट कॉसेल (जर्मनी)
1909 – एमिल थियोडोर कोचर (स्विट्जरलैंड)
1908 – इल्या इलिच मेकनिकोव (फ्रांस), पॉल एहरलीच (जर्मनी)
1907 – चार्ल्स लुई अल्फोंस लावेरान (फ्रांस)
1906 – कमिलो गाल्जी (इटली), सैंटियागो रेमन क्जल (स्पेन)
1905 – रॉबर्ट कोच (जर्मनी)
1904 – इवान पेट्रोविक पावलोव (रसिया)
1903 – नील्स राइबेर्ग फिन्सेन (डेन्मार्क)
1902 – रोनाल्ड रॉस (ग्रेट ब्रिटेन)
1901 – एमिल एडॉल्फ वॉन बेहरिंग (जर्मनी)

वनस्पति वाणी अंक 22 : 117-120(2013)

एक अनोखी प्रक्रिया- स्पाल्ट

अरविंद परिहार एवं मनोज ईमानुएल हेम्ब्रम*
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता,
*केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा

सामान्यत: कवकों की छवि जनमानस के मध्य अप्रिय ही है, क्योंकि ये काष्ठ में क्षय रोग उत्पन्न करते हैं, परजीवियों के रूप में पौधों पर आक्रमण करते हैं, भोज्य वस्तुओं को नुकसान पहुंचाते हैं एवं कई अन्य प्रकार से भी मनुष्यों को हानि पहुंचाते हैं। लेकिन यह तथ्य तो सिक्के के एक पहलू को ही उजागर करता है, कवकों के कई लाभप्रद उपयोग भी हैं। कवक पारिस्थितिक तंत्र के एक महत्वपूर्ण घटक हैं। क्या हम एक ऐसे पारितंत्र की परिकल्पना कर सकते हैं, जिसमें कवक अनुपस्थित हों? इसका परिणाम यह होगा कि गिरे हुए पेडों, लकड़ियों, टहनियों, और पत्तियों का ढेर जमा हो जायेगा और नए वृक्षों और अन्य वनस्पतियों की वृद्धि के लिये स्थान ही नहीं बचेगा। एक सच्चाई यह भी है कि जंगल में जितने भी बड़े वृक्ष दिखाई देते हैं, वे सभी खनिज लवणों के अवशोषण के लिये सहजीवी कवकों पर निर्भर होते हैं, क्योंकि कवक वृक्षों की जड़ों में रहकर खनिज लवणों के अवशोषण में वृक्षों की सहायता करते हैं। इन सबके अलावा कवकों का उपयोग विविध औद्योगिक प्रक्रियाओं में सदियों से किया जा रहा है, यथा भोजन हेतु मशरुमों की खेती, स्वास्थ्य हेतु प्रति-जैविक दवाईयों का निर्माण और किण्वन से खाद्य एवं पेय पदार्थों का निर्माण आदि। इन सब से बढ़कर कवकों का उपयोग स्पाल्ट काष्ठ के निर्माण हेतु विभिन्न काष्ठ उत्पाद उद्योगों में हो रहा है। सजावटी काष्ठ के उत्पाद बाजार में स्पाल्ट- लकडी की अत्यधिक मांग हैं। प्रस्तुत आलेख मे स्पाल्ट प्रक्रिया के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने, इसके पीछे के विज्ञान को समझने एवं कवकों की नकारात्मक छवि को सकारात्मक रूप देने का प्रयास किया गया है।

स्पाल्ट की प्रक्रिया श्वेत काष्ठ पूयन कवकों के द्वारा की जाती हैं। इस प्रजाति के कवक आवृतबीजीय लकडियों पर अपना जीवन चक्र संपन्न करते हैं। इस प्रक्रिया में प्रतिद्वंदी कवकों की प्रजातियां जिस क्षेत्र पर मिलती हैं, वहाँ एक कवक तंतु क्षेत्र रेखा का निर्माण होता है, जिसके कारण काष्ठ पर विभिन्न प्रकार की आकृतियों का निर्माण होता है, जो देखने में अत्यंत ही मनभावन होती है। इस प्रकार कवकों के द्वारा परिवर्तित की गई यह काष्ठ स्पाल्ट-काष्ठ कहलाती है। जिसका उपयोग विभिन्न प्रकार के सजावटी काष्ठ उत्पाद बनाने में किया जाता है। इस प्रक्रिया के दौरान काष्ठ पूयन कवकों एवं कीटों द्वारा उत्पन्न रासायनिक प्रक्रियाओं के कारण लकड़ी पर अप्रत्याशित वर्णो यथा- श्याम, गुलाबी, धूसर एवं बहुवर्णिय रेखाओं का निर्माण होता है। जिसके कारण काष्ठ की सुंदरता बढ़ जाती है, लेकिन इस प्रक्रिया में यह ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है कि, कवकों को सीमित अवधि के लिये ही वृद्धि करने दिया जाए अन्यथा काष्ठ के कमजोर होकर धूमिल होने का खतरा होता है।

स्पाल्ट की प्रक्रिया के दौरान लकड़ी की भौतिकीय-यांत्रिक क्षमता एवं गुणों में थोड़ी कमी आ जाती है, लेकिन विभिन्न उत्पादों हेतु इस पर कार्य करने के लिये यह लकड़ी अत्यन्त उपयोगी होती है। नियंत्रित दशाओं मे स्पाल्ट की प्रक्रिया कराने से हमें आसानी से उपयोगी एवं सुंदर स्पाल्ट काष्ठ प्राप्त होता है।

कवकों द्वारा लकड़ी पर रंग उत्पन्न करना एक धीमी गलन प्रक्रिया है। सामान्यत: यह घने वन क्षेत्रों में गिरे हुए लकड़ियों के टुकडों पर होती हैं, जब उन पर काष्ठ पूयन कवक वृद्धि करते हैं। काष्ठ पूयन कवक लकड़ी में पाये जाने वाले रेशों का उपयोग अपने भोजन स्रोत के रूप में करते हैं। एक लकडी पर जब समान क्षमता के दो या इससे अधिक कवक वृद्धि करते हैं, तो भोजन एवं स्थान के लिये ये आपस मे प्रतिद्वंदी बन जाते हैं, जिसके फलस्वरूप जिस स्थान पर इन कवकों के कवक तंतु आपस में वृद्धि करते हुए मिलते हैं, वहाँ पर ये कवक तंतु अपनी-अपनी सीमा रेखा का निर्माण करते हैं, फलस्वरूप लकड़ी में स्थान-स्थान पर विभिन्न प्रकार की कलाकृतियाँ उभर आती हैं, जो अत्यन्त सुंदर होती हैं। इसके अतिरिक्त कवक लकडी में अलग-अलग प्रकार के रंग परिवर्तन करते हैं जो कि लकडी को और अधिक सुंदर एवं आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण बना देते हैं।

कृत्रिम रूप से स्पाल्ट काष्ठ प्राप्त करने के लिए संसार की विभिन्न कवक प्रयोगशालाओं में गहन अनुसंधान चल रहा है। जिसका मुख्य उददेश्य अधिक से अधिक कवकों की प्रजातियों में वांछित अनुवांशिकीय परिवर्तन करके उनका उपयोग इस उद्योग में करके उनसे स्पाल्ट काष्ठ प्राप्त किया जा सकेगा।

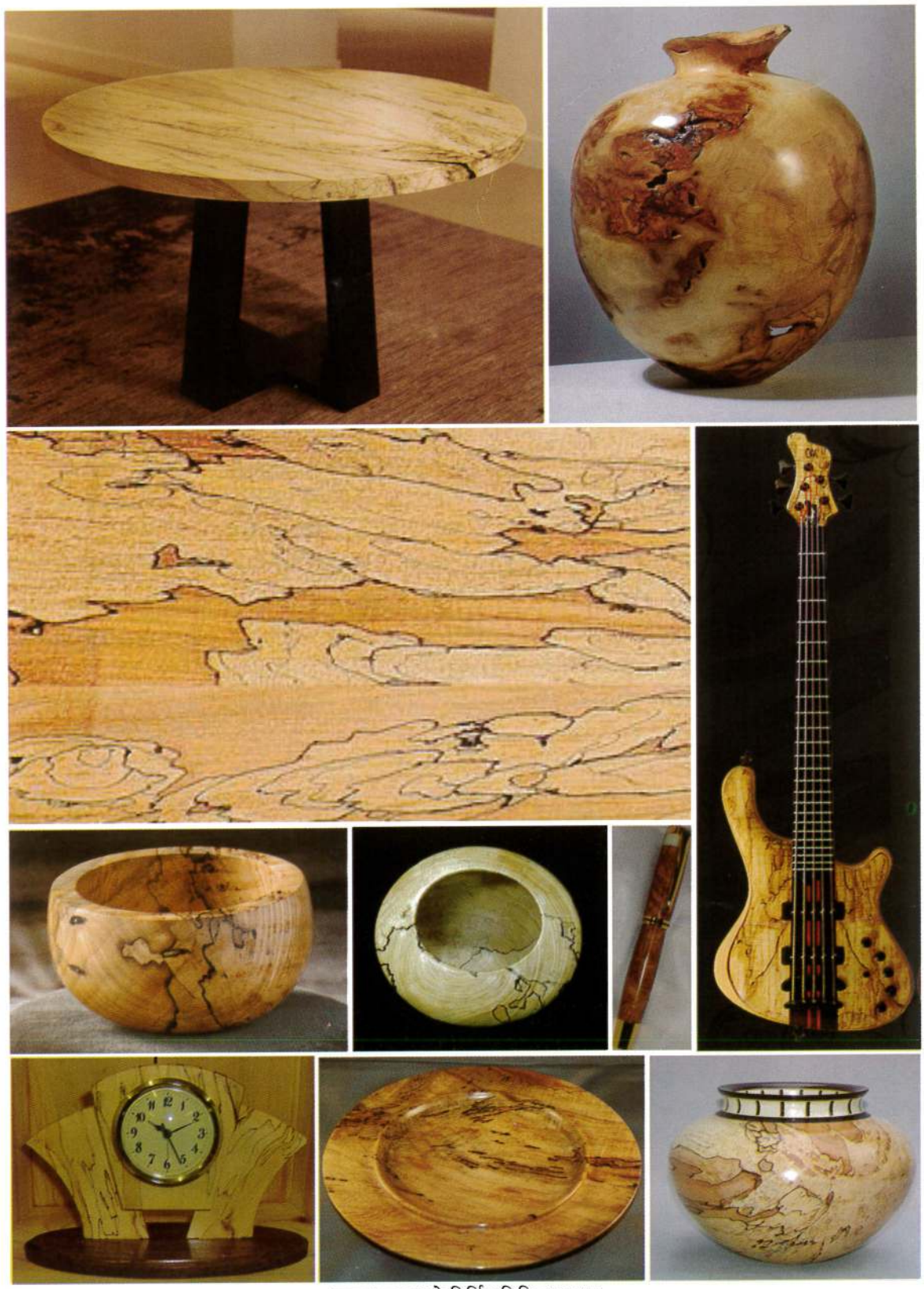

स्पाल्ट-काष्ठ से निर्मित विभिन्न उत्पाद

स्पाल्ट की प्रक्रिया में सहायक कवकों की प्रजातियाँ

1-2. *जरकेन्ड्रा अडस्टा*, 3-4. *टेमिटीस वर्सीकलर* 5-6. *जाईलेरिया पॉलीमार्फा*

स्पाल्ट की प्रक्रिया के लिये निम्न अवयव आवश्यक हैं।

पूयन कवक- श्वेत पूयन कवकों की इस प्रक्रिया में मुख्य भूमिका होती हैं। श्वेत पूयन कवकों की प्रजातियां यथा *ट्रेमिटीस वर्सीकलर, जाईलेरिया पॉलीमार्फा, जर्केड्रा ऑड्स्टा,* आदि प्रमुख हैं। ये कवक प्रकृति में सामान्य रूप से वृद्धि करते हुए पाये जाते हैं। *ट्रेमिटीस वर्सीकलर* एवं *जर्केड्रा ऑड्स्टा* उच्च कवक, बेसिडियोमाईसिटीस वर्ग में पॉलीपोरेसी कुल के अंतर्गत आते हैं और समशीतोष्णीय से शीत कटिबंधीय तापमान वाले स्थानों पर प्रचुरता से वृद्धि करते हैं, जबकि *जाईलेरिया पॉलीमार्फा,* निम्न वर्गीय कवक एस्कोमाईसिटीस वर्ग मे जाईलेरिएसी कुल का सदस्य हैं यह विभिन्न प्रकार की लकड़ियों पर पाया जाता है। इन प्रमुख कवक प्रजातियों के अतिरिक्त अन्य कवक प्रजातियां भी इस प्रक्रिया में शामिल होती हैं।

तापमान- स्पाल्ट की प्रक्रिया तापमान के प्रति अत्यन्त संवेदनशील होती है। सामान्यत: 500 डिग्री से॰ से ऊपर का तापमान स्पाल्ट की प्रक्रिया के लिये उचित होता है। इससे कम तापमान पर काष्ठ पूयन कवकों की जैविक प्रक्रिया धीमी पड़ने लगती हैं। जैसे-जैसे तापमान कम होता चला जाता है कवक सुसुप्तावस्था में चले जाते हैं। अत्यधिक तापमान भी कवकों के लिये हानिकारक होता हैं क्योंकि उच्च तापमान पर कवक नष्ट होने लगते हैं। अधिकतर कवकों कि प्रजातियां 100 सेंटीग्रेड से 400 सेंटीग्रेड पर वृद्धि करती हैं। 200 से 320 सेंटीग्रेड का तापमान कवकों की तीव्र वृद्धि के लिये अनुकूल होता है। यही वह तापमान होता है जिस पर एंजाईम अपनी महत्तम क्षमता के साथ जैविक उत्पाद के निर्माण में सक्षम होते हैं।

नमी- कवकों की वृद्धि हेतु नमी एक महत्त्वपूर्ण घटक हैं। लकड़ी के फर्नीचर जो घरेलू उपयोग में होते हैं, वे आमतौर पर नहीं सडते हैं, क्योंकि इनमें जल के मुक्त अणु उपलब्ध नहीं होते, जो कवकों की वृद्धि के लिए आवश्यक हैं। यदि लकड़ी में नमी हो तो लकडी को मुक्त जल के अणु प्राप्त होने लगते हैं और गलन या पूयन या स्पाल्ट की प्रक्रिया प्रारम्भ होने लगती है। लकड़ी में नमी की उपलब्धता प्रत्यक्ष एवं सापेक्षित आर्द्रता पर निर्भर करती है। स्पाल्ट हेतु आर्द्रता 100 प्रतिशत के लगभग होनी चाहिये। 100 प्रतिशत आर्द्रता बनाए रखने के लिये इसे प्लास्टिक की एक चादर से पूरी तरह ढक कर रखा जाता है, साथ ही साथ बीच- बीच में पानी देकर इसमे पर्याप्त नमी बनाये रखना पडता है, ताकि इसमें पूयन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो सके।

भोजन स्रोत- पूयन कवक लकड़ियों से भोजन प्राप्त करते हैं। श्वेत पूयन कवक लकड़ियों में उपलब्ध लिग्नीन से अपना भोजन प्राप्त करते हैं। लिग्नीन लकडी के कणों को आपस में जोड़ने का कार्य करते हैं। कवकों की उचित वृद्धि के लिए पर्याप्त मात्रा में लिग्नीन उपलब्ध कराया जाता है। इस प्रक्रिया में इस बात का विशेष ध्यान रखना पड़ता है कि स्पाल्ट की इस प्रक्रिया में कुछ अवांछित कवक प्रजातियॉ जैसे-भूरे पूयन कवक विकसित ना हो जाएं, क्योंकि ये कवक सेल्युलोस से अपना भोजन प्राप्त करते हैं, जिसके कारण लकड़ी का रंग भूरा हो जाता है तथा लकड़ी की गुणवत्ता पर प्रतिकूल भाव पड़ता है।

समय सीमा- स्पाल्ट की प्रक्रिया में समय एक महत्त्वपूर्ण कारक है, तथा उपयोगी स्पाल्ट काष्ठ के निर्माण मे समय सीमा का विशेष ध्यान रखना पडता है, क्योंकि अत्यधिक समय तक स्पाल्ट होने से लकड़ी उपयोग करने लायक नहीं रह जाती है। लकड़ी को स्पाल्ट होने में कई माह से लेकर वर्ष भर का समय लग सकता है। बीच-बीच में विशेषज्ञों के द्वारा निरन्तर निरीक्षण की भी आवश्यकता होती है। अलग-अलग प्रजाति के कवक लकडी मे वृद्धि के लिये अलग-अलग समय लेते हैं।

भारत में स्पाल्ट काष्ठ का प्रयोग अभी अधिक प्रचलन में नहीं है, लेकिन भारत जैसे विशाल देश में जहाँ इसके बडे भू-भाग में कीमती वन-सम्पदा उपलब्ध है, स्पाल्ट काष्ठ के क्षेत्र में अपार सम्भावनायें निहित हैं, क्योंकि वर्तमान समय में मजबूती के साथ-साथ सुंदर फर्नीचर एवं अन्य काष्ठ उत्पादो की मांग दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। यदा-कदा बड़े-बड़े शापिंग सेन्टरों में स्पाल्ट काष्ठ के कुछ उत्पाद दिखाई दे जाते हैं, जो इनकी मांग को देखते हुए अत्यंत ही कम हैं। देश की आबादी का एक बड़ा हिस्सा जो वन उत्पादों पर निर्भर करता है, स्पाल्ट काष्ठ उन्हें रोजगार के अवसर प्रदान कर सकता है। वन विभाग, जैव-प्रोद्योगिकी तथा वन उत्पादों पर निर्भर आबादी के आपसी तालमेल तथा सामुदायिक रोजगार पर राजस्व की प्राप्ति हो सकती है। जन-साधारण भी आजीविका के लिये प्रशिक्षण ले कर यह कार्य कर सकते हैं । उत्तराखंड राज्य की राजधानी देहरादून में स्थित वन अनुसंधान संस्थान में इसके लिये पर्याप्त संसाधन उपलब्ध है, अत: वर्तमान में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में स्पाल्ट काष्ठ के महत्त्व को प्रचारित करने की आवश्यकता है ।

———

वनस्पति वाणी अंक 22 : 121-125(2013)

अरुणाचल प्रदेश के कुरुंगकुमे जिले की पहाड़ियों में वानस्पतिक आखेट

एस. एस. दाश एवं **ए. ए. माओ***
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता
*भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

कोलोरियंग शहर का एक दृश्य

कोलोरियंग मुख्यालय के साथ कुरुंगकुमे 16 अप्रैल 2001 को जिला बना गया था। इसके उत्तर में चीन, दक्षिण में पपुमपरे एवं लोअर सुबानसिरी जिले, पूर्व में कमेंग तथा पश्चिम में अपर सुबानसिरी स्थित हैं । जिले का क्षेत्रफल 6675 वर्ग कि.मी. है एवं इसके निम्न अंचलों में अत्यधिक नमी तथा ऊँचे अंचलों भीषण ठंड है। यहां की ऊँचाई 500 से 5000 मी० तक है, जिससे जैविक विविधता का समृद्ध स्वरूप यहाँ देखने को मिलता है। अरुणाचल प्रदेश की प्रमुख जनजाति न्यीशी यहां के मूल निवासी हैं। 2001 की जनगणना के अनुसार, जिले की जनसंख्या 42,518 थी। इस क्षेत्र के निवासियों का मुख्य पेशा कृषि है, जो झूम खेती के रुप में प्रचलित एवं विख्यात है। न्यीशी लोगों का प्रमुख पर्व न्योकुम-युल्लो हर साल फरवरी में मनाया जाता है। बुआई के स्वागत में मनाये जाने वाले इस त्यौहार में अच्छी फसल प्राप्ति की अभिलाषा निहित है । दोन्यी धर्म के अनुयायी इन लोगों के देवता दोन्यी (सूर्य) एवं पोलो (चाँद) विश्व नियंता एवं सर्वव्यापी हैं, मान्यता है कि वे सजीव-निर्जीव सभी के स्वामी हैं।

सरली गांव में बेंत का अवैज्ञानिक संग्रहण करते स्थानीय लोग

अरुणाचल के इस जिले की बहुत कम वानस्पतिक गवेषणा हुई है । मुझे 2008 से 2011 अवधि में इस जिले की गवेषणा करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। यहां के मिल्ली नामक स्थान से ऊपर मुफला एवं जम्मुंगला की दिशा की यात्रा सबसे कठिन थी । इस क्षेत्र की मैंने दो बार यात्रा की, पहली यात्रा (सितम्बर-अक्तूबर 2009) में अपेक्षित संग्रहण नहीं पाये जाने के कारण दूसरी बार जुलाई-अगस्त 2010 में जाने की योजना बनाई गई। संगत कार्यक्रम के बारे में डा. ए. ए. माओ, वैज्ञानिक-इ, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इटानगर से चर्चा करने पर वे तत्काल मेरे साथ चलने को राजी हो गये। हमने डा. ओना अपंग, राज्य वन अनुसंधान संस्थान, अरुणाचल प्रदेश सरकार के वैज्ञानिक को भी इस वानस्पतिक यात्रा में अपने दल में शामिल कर लिया ।

हमारी इस यात्रा का उद्देश्य मिल्ली गाँव से आगे वडसे पहाड़ियों के अधिक ऊँचाई वाले अंचलों में पेड़-पौधों के नमूने संग्रह करना था । इस दुर्गम अंचल की गवेषणा वानस्पतिक आखेट के समान है ।

दिनांक 26.7.2010 को हम लोग इटानगर से पोटिन एवं यजली होते हुए कुरुंग कुमे जिले के लिए रवाना हुए किन्तु वहाँ ठहरने की कोई व्यवस्था नहीं हो सकी। हम और साढे तीन घंटे की यात्रा तय कर संग्राम नामक स्थान पर पहुँचे। वहाँ पहचान की महिला की मदद से हमें एक कमरा और खाने के लिये चावल और आलू की कढ़ी मिली ।

दूसरे दिन हम कोलिरिअंग के लिए निकल पड़े। संग्राम से कोलोरिअंग के रास्ते में झूम खेती के कारण वन का सफाया हो गया है। पहाड़ी ढलानों को केले की वन्य-जातियों ने ढक दिया था। एक जगह बाँस आर्किड *(एरुंडिनेरिआ ग्रेमिनिफोलिया)* के अनगिनत फूल खिल रहे थे।

कुरुंग नदी को पार कर दोपहर में कोलिरियंग पहुँचकर जिला उपायुक्त को हमने अपनी योजना की जानकारी दी, विश्राम गृह में उनके द्वारा उपलब्ध करवाये गये कमरे में हमने उस दिन विश्राम किया और अपनी आगे की रणनीति समूह के सदस्यों से साझा की।

अगले दिन हम कोलोरियंग से 50 कि०मी० उत्तर सरली के लिए रवाना हुए। पहाड़ी ढलान पर बसे इस छोटे शहर में लगभग 100 घर हैं। वहाँ खुले मैदान में बेंत के ढेर दिखाई दे रहे थे। यहाँ से इन्हें बेचने के लिए असम भेजा जाता है। कोलोरिअंग के उपायुक्त महोदय ने एक शिफारिशी पत्र हमें थमा दिया था। पत्र पढ़ने के बाद सर्किल ऑफिस के कर्मचारी श्री प्रधान ने हमारी बहुत मदद की और हमने मन ही मन उपायुक्त महोदय का आभार जताया। पूर्वी हिमालय की रमणीय वादियों में सर्किल ऑफिस का 1960 में बना वह बंगला आज भी नया ही लग रहा था। वहां कुछ दुकानों के अलावा एक सिनेमा हॉल भी था, जहाँ बिजली के अभाव में जेनरेटर का प्रयोग कर दिखाये जाने वाले रूपहले परदे के इक्का-दुक्का शो इस पर्वतीय क्षेत्र में हिन्दी सिनेमा में लोगों की रूचि प्रर्दशित कर रहे थे। चिकित्सा की वहाँ कोई सुविधा नहीं थी।

सर्किल ऑफिस के कर्मचारियों के सहयोग से हमें सात पोर्टर उपलब्ध हो गये। इनको साथ लेकर हमें 25 कि.मी. दूर मिली गांव जाना था। रास्ते में कई विरान खेत दिखाई पड़े। उस साल बांस में फूल आने से चूहों के उपद्रव की आशंका थी इसी आशंका से खेत विरान थे।

आगे बढ़ने पर हमने झूलते हुए पुल के द्वारा कुरुंग नदी पार किया। हमें सामने की पहाड़ी चढाई तय कर पार्लो गाँव जाना था। चढ़ाई पूरी कर जब हम पार्लो गाँव पहुंचे तो बुरी तरह थक चुके थे हमने उस दिन मिली गाँव जाने का इरादा छोड दिया। उमस भरी गर्मी के साथ डुम-डुम नामक जंगली कीड़ा भी परेशान कर रहा था, इसके दंश से भयानक खुजली होती है।

पार्लो गाँव के चार घरों में से एक घर में हम शरणार्थी हुए। इस सोलुंग परिवार का घर बाँस व काठ के खम्बों पर सतह से लगभग दो मीटर ऊँचाई पर बना हुआ था। घर में बाँस का बना ऐसा फर्श

कुरुंग नदी पर बना लकड़ी का झूला पुल

पार्लो गाँव मे केले एवं बांस से बना सोलुंग परिवार का घर

नदी पार करता आखेटकों का समूह

था कि सारी गन्दगी-धूल नीचे गिर जाती थी और बार बार झाड़ू भी नहीं लगाना पड़ता। घर के ही एक कोने में शौचालय था। घर का छप्पर केले की पत्तियों एवं तने की छाल की कई परतों से बनाया गया था, जिससे भारी वर्षा में भी जल टपकने का भय नहीं था। इस प्रकार का छप्पर एक बार बना लेने पर वह 4-6 वर्षों तक चलता रहता है। इस क्षेत्र में वन्य केले के पत्तों का कोई अभाव नहीं है इसी का उपयोग स्थानीय छप्पर बनाने में करते हैं। सोलुंग परिवार के इस छोटे से घर में कुल दस लोग रहते थे।

वे ताशे *(एरेंगा वेस्टरहौटी)* के पिथ से निकाले गये मंड का अद्‌भुत खाद्य बनाते हैं। मंड में गर्म पानी मिलाकर उसे लगातार चलाते रहने से ये गाढ़ा हो जाता है। उन्होंने हमें भी इसे बाँस के कोंपल के खमीर-कढी के साथ खाने के लिए दिया। पहली बार इस खाद्य को खाने के कारण हमें खमीर की गंध बहुत ही तीक्ष्ण लग रही थी।

अब हमारी अगली मंजील मिली गांव थी। संकरे रास्ते कीचड़ और फिसलन से और भी ज्यादा दुर्गम हो गये थे। आखिर दोपहर के बाद हम भारत-चीन की सीमा पर बसे कुरंग-कुमये जिले के आखिरी गांव मिली पहुँच गये। 1538 मी० की ऊँचाई पर बसे इस गांव के निकट हमने इस क्षेत्र में पहली बार *रोडोडेन्ड्रॉन अर्बोरियम* का पेड़ देखा। धान के नमी-युक्त खेतों से घिरे इस गाँव में लगभग दस घर थे। झरनों से यहाँ प्रचुर मात्रा में जल उपलब्ध था। पालतू पशुओं में अर्धपालतू मिथुनों (*बोस फ्रोंटेलिस*) की संख्या अधिक होने के कारण इस गांव के लोगों को सम्पन्न माना जाता है। जिसके पास मिथुन नामक यह हिमालयी पशु नहीं होता उसका विवाह होना भी मुश्किल होता है। इस गाँव में बहुविवाह की प्रथा देखने को मिलती है। यहां के लोग बड़ी संख्या में बकरी पालन भी करते हैं, जिसे देखकर हमारे समूह के लोगों को मांस खाने की इच्छा हुई, हमें यह जानकार आश्चर्य हुआ कि वे लोग बकरे का मांस नहीं खाते हैं। वे इसे सरली या कोलोरियांग बाजार में जाकर बेच देते हैं।

बांस के जंगलों का एक दृश्य

हमने बांज और जयपत्र की बहुलता वाले सदाबहार वन में *क्वेरकस, केस्टेनोप्सिस, एल्नस, प्रूनस बेटुला, सिमा* भी देखे। इस अंचल को *एंजेलहार्टिया-केस्टोनोप्सिस-नेमा-बेटुला* का सुन्दर समागम कहा जा सकता है। अधिक ऊँचाई पर *एक्टनोडफ्ने ओबोवेटा, एफेनेमिक्सिस पोलिस्टेक्या, सिनेमोमम बेजोलघोटा, इलियोकार्पस, वेरुनुआ, एंजेलहर्टिया स्पिकेटा, स्टिरिओस्पर्मम चेलोन्वाइडिस, केस्टोनोप्सिस पपुरिल्ला* उगते हैं। नीचे शाकीय

पौधे *एनेफेलिस एडनेटा, बेगोनिआ जा., चिरिटा आब्लेंगिफोलिआ, डेस्मोडियम* इत्यादि भी पाये जाते हैं ।

दिनांक 31.7.2010 को हमारा गंतव्य वडसे था। हम पर चढ़े, फिर उतरकर कोलोबुंग नदी के तट पर थोडा विश्राम किया। कोलोबुंग नदी के अत्यंत स्वच्छ जल में बहुत सारी मछलियां थी ।

कोलोबुंग नदी तट से आगे वडसे की ओर सिर्फ आखेटक ही जाते हैं और आखिर हम भी तो वानस्पतिक आखेट करने ही आये थे। उन्हीं का अनुसरण करते हुए हम वडसे की ओर निकल पड़े, हमें पहले पड़ाव (2810 मीटर) तक बांस और बेंत के दुर्गम वन से गुजरना था। रास्ते भर जल का नितान्त अभाव बना रहा। दिन भर की कठिन चढाई में साथ लाए कुछ बिस्कुट और मिठाइयां ही हमारे सम्बल थे। साढ़े चार बजे हम अपने पड़ाव पहुँचे, जो एक विशाल शिला के नीचे था। यहाँ गुफा से जो पानी की बूंदे टपक रही थी हमारे समूह के लोगों ने उसी से अपनी दिनभर की प्यास बुझाई और कुछ पानी संग्रह कर लिया। समूह के पोर्टरों ने इसी पानी से जैसे-तैसे नाश्ता बनाया। खाना भी इसी तरह बनाना पड़ा जिसमें कम पानी लगे। जंगली किटों की परेशानी झेलने की मजबूरी के साथ हमने इसी तलहटी में रात्री विश्राम किया।

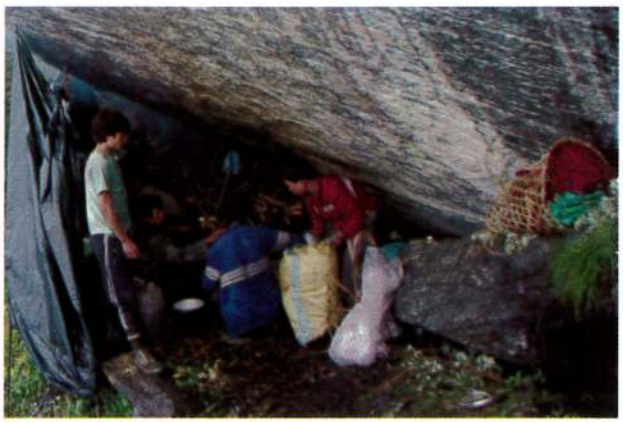

4200 मीटर की ऊँचाई पर शिला के नीचे दल के सदस्य

कुरूंगकुमे जनपद के उच्च हिमालयी क्षेत्र का दृश्य

इस अंचल के ऊँचाई वाले स्थानों पर फेगेसी एवं इरिकेसी, विशेषत: *रोडोडेन्ड्रॉन* की जातियों का बाहुल्य है। मध्यम ऊँचाई पर छोटे-बड़े पेड़ एवं झाडियां जैसे, *लायोनिया ओववेलिफोलिया, बर्बेरिस वालिची, डब्रेजिसिया लोंगफोलिआ, वैक्सिनिअम स्प्रेंजेली, स्पीरेइआ अर्कएटा, सिमप्लोकोस रेसिमोसम* एवं *रोडोडेन्ड्रॉन* की जातियां थी । अगले सुबह हमने *रोडोडेन्ड्रॉन नेरिफालिअम रोडोडेन्ड्रॉन मैडेनी, रोडोडेन्ड्रॉन सिनोग्रैंड, रोडोडेन्ड्रॉन फाल्कोनेरी, रोडोडेन्ड्रॉन लिंडल्यी* (अधिपादप) एवं *रोडोडेन्ड्रॉन वेक्सीनिओडिस* के कुछ पौधे देखे और संग्रहित किये।

वड्से की पहाड़ियों पर शंकुधारियों की वृक्ष रेखा का दृश्य

इस दौरान अचानक हुई भारी वर्षा ने हमें पहाड़ों पर पड़ने वाली चटक गर्मी से राहत दिलाई। 3200 मी० की ऊँचाई तक *रोडोडेन्ड्रॉन सिनोग्रैंड* एवं *रोडोडेन्ड्रॉन मैडेनी* की उपजातियां भी विद्यमान थी। इससे ऊपर शंकुधारी वनों की श्रृंखला थी, ऐसे वनों के निम्न तल पर *एबिज डेन्सा* जैसे मिश्रित शंकुधारी वृक्षों का वर्चस्व होता है, जो यहाँ हमें देखने को मिला। इनके साथ *सुगा डुमोसा, टैक्सस वालिचिआना* एवं कहीं-कहीं *रोडोडेन्ड्रॉन* की चौड़े पत्तों वाली जातियां *फोटिना, बैटुला, इलेक्स* के साथ *रोडोडेन्ड्रॉन, जुनिपेरस, बर्बेरिस, सेलिक्स, कोटोनिस्टर लोनिसेरा* की झाड़ीनुमा जातियां भी देखने को मिली। *ऐनिमोन, एकोनिटम, केसिओप, प्राइमुला डेंटिकुलेटा, प्राइमुला केपिटेटा, पोटेंटिला पेडकुलेरिस, मेकोनोप्सिस* की शाकीय जातियों के लिए यह ऊँचाई अनुकूल होती है, ऐसा कुछ अन्य वृक्ष, बाँस *(एरुंडिनेरिआ रेसिमोसा)* के साथ भी है। इसी उत्तरी ढलान में अधिक ऊँचाई पर *गॉल्थेरिआ फ्रैग्रेंटिस्सिमा* एवं *स्कीमिआ अर्बोरिसेंस* के क्षुप भी उगते है।

3500 मी. से अधिक ऊँचाई पर वृक्ष नहीं, क्षुपवन एवं बाँस होते हैं। हमारा अगला पडाव 3720 मी० की ऊँचाई पर विशाल शिला के नीचे था । यहाँ अगणित *रोडोडेन्ड्रॉन* के फूल खिल रहे थे। दिन भर भारी वर्षा होती रही और हम लोग भीगकर कडाके की ठंड में भी वानस्पतिक आखेट का आन्नद लेते रहे।

आखिर यहाँ दो आखेटकों से मुलाकात हो ही गई, उन्होंने जिस चुल्हे पर खाना बनाया था, हमने उसका लाभ उठाया। हमारे साथ आये पोर्टर और ये आखेटक एक ही जगह के निवासी होने के फलस्वरूप एक दूसरे को जानते थे, सो हमें अच्छा भोजन समय पर उपलब्ध हो पाया। आखेटक कस्तूरी मृग (*मोस्कस क्राइजोगेस्टर*) के आखेट में आए थे। इन लोगों के कुछ सगे-संबंधी चीन में भी होते हैं। हमें यहाँ आग और पानी की सुविधा बहुत सुखद लगी।

अगले दिन भी वर्षा हो रही थी, परन्तु हमें आगे बढ़ना था। चढ़ाई बहुत कठिन नही तो सरल भी नहीं थी। इस ऊंचाई पर पहाड़ी ढ़लानों के ऊँचे पेड़ हमारा साथ छोड़ रहे थे और खुले चारागाह में क्षुपवन एवं शाकीय पौधे उनकी जगह ले रहे थे। ऐसी ही एक जगह पर लगभग 0.5 मी० ऊँचाई वाले बौने *रोडोडेन्ड्रॉन* ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो सर झुकाये हमारा स्वागत कर रहे हों। झाबर भूमि (मौरलैण्ड) की पारिस्थितिकी का प्रभाव वनस्पति पर देखते हुए और आखेटकों के बनाये खतरनाक रास्तों का अनुसरण करते हुये हम 4000 मी० की ऊँचाई पर पहुँच गये। यहाँ बड़ी संख्या में *जेंसिएना कुर्रु* फैला देखकर हम अचम्भित हो गये, पश्चिमी हिमालय में इस औषधीय पौधे का बहुत अधिक दोहन होता है और ये विरल होता जा रहा है।

काफी दिनों तक साथ देने वाली कैमरे की बैटरी भी अब जवाब दे रही थी, इसलिये इसका उपयोग सावधानी से हो रहा था। हमारे पड़ाव के आसपास फैले *एलियम हूकरी* एवं *रोडोडेन्ड्रॉन सिलिएटम* की छटा मनभावन थी। खुले स्थानों पर *जेंसिएनस, पेडिकुलेरिस, पोलिगोनम* के फूल दूर तक सजे हुये थे। सारे दिन हमने पहाड़ी ढलानों पर वानस्पतिक गवेषणा की, कोई नया पौधा तो नहीं मिल सका किन्तु इस यात्रा ने हमें कुरुंग-कुमये जिले की पहाड़ियों पर विद्यमान अतुलनीय वानस्पतिक विविधता से परिचित करवाया। अगले दो दिनों में हम मिली गाँव वापस आ गये, जाते समय जिस घर में ठहरे थे वहीं ठहरे और आखिरकार आठ दिनों के बाद जमकर स्नान किया। इस तरह सरली शहर, पार्लो गाँव होते हुए दिनांक 9.8.2010 को हम इटानगर वापस आ गये और एक पखवाड़े का वानस्पतिक आखेट सुखद अनुभव एवं सकुशलता के साथ सम्पन्न हुआ ।

———

प्रकृति को बुरा-भला न कहो,
उसने अपना कर्त्तव्य पूरा किया
तुम अपना करो।

वनस्पति वाणी अंक 22 : 126-128(2013)

पत्थर पौधे : प्रकृति के अनमोल रत्न

परमजीत सिंह एवं नितिषा श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

प्रकृति से वनस्पतियों का संबंध अटूट है। प्रकृति वनस्पतियों को ही नहीं अपितु समस्त जीवधारियों को वास-स्थान प्रदान करती है। प्रकृति में व्याप्त जीवधारियों की विविधता असीमित है। सूक्ष्मतम से लेकर विशालतम शारीरिक संरचना वाले विभिन्न जीवधारियों का वासस्थान है हमारी पृथ्वी। जीवन की उत्पत्ति के आरंभ से लेकर वर्तमान तक अगणित वनस्पतियों की उत्पत्ति हुई और अगणित ही विलुप्त हो गयीं। किसी जीवधारी का किसी स्थान पर पाये जाना उसका उस स्थान के प्रति अनुकूलन दर्शाता है। जैविक विविधताओं की तरह पर्यावरणीय दशाओं में भी विषमता और विविधता व्याप्त है। अत: अलग-अलग पर्यावरणीय दशाओं के लिए अनुकूलित वनस्पतियों के वासस्थान की पर्यावरणीय दशाएँ भी भिन्न-भिन्न हैं। डार्विन के प्राकृतिक-वरण के सिद्धांत के अनुसार प्रकृति अनुकूलतम जीवधारी का वरण करती है। अनुकूलतम जीवधारी के वरण से यहाँ तात्पर्य यह है कि, प्रकृति जीवधारियों में व्याप्त प्राकृतिक विभिन्नताओं में से ऐसे लक्षणों अथवा गुणों वाले जीवधारियों का वरण करती है, जो उस पर्यावरणीय दशा के लिए सबसे ज्यादा अनुकूलित हों। ऐसी ही उच्चतम श्रेणी के अनुकूलन का उदाहरण है, दक्षिण अफ्रीका में पाये जाने वाले पत्थर पौधे। इनकी पत्थरों या कंकणों से समदर्शिता के कारण इन्हें पत्थर पौधों (स्टोन प्लांट्स) की संज्ञा दी गई है। पत्थर पौधों के अतिरिक्त इन्हें कंकण पौधे, सजीव पत्थर अथवा पत्थर फूल के नाम से भी जाना जाता है। इनकी शारीरिक संरचना वास्तव में आश्चर्यचकित कर देने वाली है, क्योंकि यह बिल्कुल निर्जीव पत्थर की भांति दिखते हैं।

विश्व मानचित्र में वितरण -पत्थर पौधे प्राकृतिक रूप से दक्षिण अफ्रीका एवं नामीबिया के अति सूखे क्षेत्रों मे पाये जाते हैं। इसके साथ ही ये बोटस्वाना से सीमावर्ती क्षेत्रों से भी ज्ञात हैं। हालांकि जर्मनी, जापान, यू० के० और यू० एस० ए० ने इन्हें नियंत्रित वातावरणीय दशाओं में उगाना शुरू कर दिया है।

वातावरण एवं अनुकूलन- पत्थर पौधे समान्यत: अति-शुष्क क्षेत्रों में पाए जाते हैं। पत्थर पौधों की अलग-अलग जातियाँ विशेष प्रकार के पत्थरों के बीच पाए जाने के लिए अनुकूलित होती हैं, अत: पत्थरों को देखकर इनमें पाए जाने वाले पत्थर पौधों का अनुमान लगाया जा सकता है। पत्थर पौधों की अधिकतर जातियाँ 500 मि.मी. प्रति वर्ष से भी कम वर्षा वाले क्षेत्रों में पायी जाती हैं तथा कुछ जातियाँ 100 मि.मी. प्रति वर्ष से लेकर शून्य वर्षा वाले क्षेत्रों में भी पायी जाती हैं। इनकी न्यूनतम एवं अधिकतम ताप सहनशीलता में वृहद अंतराल देखने को मिलता है। गर्मियों मे ये 45° से० से भी अधिक तापमान सहन कर सकते हैं तथा सर्दियों में -5° से० तापमान तक जीवित रह सकते हैं। ये समान्यत: लाइम्स्टोन, सैंडस्टोन, आयरनस्टोन, ग्रेनाइट, क्वार्ट्जग्रिट, शेल में तथा इनके मिश्रणों में समुद्रतल से 2400 मी० की ऊंचाई तक आसानी से पाए जा सकते हैं। पत्थर पौधे सामान्यत: अन्य सामान्य वनस्पतियों के आस-पास नहीं पाए जाते हैं।

पत्थर पौधों में दो मुख्य अनुकूलन देखने को मिलते हैं, जो इनके अतिसूखे में पाये जाने के लिए उत्तरदायी है। पहला इनकी मांसल शारीरिक संरचना तथा दूसरा प्रकाश संश्लेषण की CO_4 क्रियाविधि। पत्थर पौधों की सभी जातियों की पत्तियों की बाह्य त्वचा की कोशाओं मे टैनिन पाया जाता है, जो इन्हें एक विशिष्ट रंग प्रदान करता है। यद्यपि इनके कार्य का भली-भांति ज्ञान अभी तक नहीं हो पाया है।

विवरण- पत्थर पौधों को सर्वप्रथम विलियम जॉन बुरचेल ने 1811 में एक वानस्पतिक दौरे के समय देखा तथा इन्हें अन्य पत्थरों के समान समझा परंतु बाद में अध्ययन के पश्चात् उन्हें पता चला कि, ये पत्थर के समान संरचना वाले पौधे हैं। सन् 1922 में वनस्पतिज्ञ एन. ई. ब्राउन ने इन्हें लिथोप्स नाम दिया था। पत्थर पौधे मध्यम आकार के सरस (सेक्यूलेन्ट) पौधें हैं, जो पादप कुल आईजोएसी से संबन्धित हैं। कुछ वनस्पतिज्ञ इन्हें मीसेमब्राईऐन्थिमेसी कुल का मानते हैं।

वर्गीकरण-

जगत (किंगडम)	-	प्लांटी
संघ (फाइलम)	-	एंजिओस्पर्मी
वर्ग (क्लास)	-	डाइकाटलीडनी
गण (आर्डर)	-	कैरियोफाईलिडी
उपगण (सब-आर्डर)	-	कैरियोफाईलेल्स
कुल (फैमली)	-	आइजोएसी
वंश (जीनस)	-	*लिथोप्स*

पत्थर पौधों का शरीर सामान्यत: एक जोड़ी संयुक्त पत्तियों से मिलकर बना होता है, जो एक बहुत ही छोटे या लगभग अदृश्य तने से घिरा होता है। ये अधिकतर या आंशिक रूप से मिट्टी में धँसे रहते हैं। इनकी पत्तियाँ रसीली व मांसल होती हैं तथा इन पत्तियों की ऊपरी सतह खिड़की की भांति कार्य करती है और पौधे के आंतरिक हिस्सों में प्रकाश का प्रवेश सुनिश्चित करती हैं। इन पौधों की पत्तियों की ऊपरी सतह धारीयुक्त या चितकबरी होती है, जो एक विशेष स्वरूप का प्रदर्शन करती है। इनकी पत्तियों के विशिष्ट स्वरूपों तथा इनके पुष्पों का रंग सामान्यत: इनके आस पास पाए जाने वाले पत्थरों के समान ही होता है, जिसके कारण दूर से इनमें और पत्थरों में विभेद कर पाना अत्यधिक कठिन होता है। उदाहरणार्थ- यदि ये नारंगी- भूरे रंग के पत्थरों के बीच पाये जा रहे हैं, तो इनका रंग भी नारंगी और भूरा ही होगा। इनके इसी विशिष्ट गुण के कारण जब तक इन पौधों में पुष्प न निकले, इनकी उपस्थिति का अनुमान लगाना अत्यंत कठिन होता है। जब ये सुसुप्तावस्था में होते हैं तो इनकी उपस्थिति का अनुमान लगाना लगभग असंभव होता है क्योंकि इस दौरान ये पूर्णत: मृदा तल में धंस जाते हैं। पत्थर पौधों के पुष्पों का रंग सफेद या पीला होता है तथा किसी एक जाति के सभी सदस्यों के पुष्पों का रंग समान ही होता है। पत्थर पौधों के पुष्प दोपहर की तीव्र धूप में ही खुलते हैं। इन पौधों में पुष्पन के पश्चात इनकी पत्तियाँ मुरझाने व सूखने लगती हैं तथा इनका स्थान एक जोड़ी नयी पत्तियाँ ले लेती हैं। नयीं पत्तियों के निकलने के पश्चात पुरानी पत्तियाँ तथा पुष्प सूखकर झड़ जाते हैं। एक जोड़ी पत्तियों के बीच में पाए जाने वाला विभाज्योतक ऊतक नई पत्तियों तथा पुष्प के निर्माण हेतु उत्तरदायी होता है।

इन पौधों मे हर नये वर्ष में एक जोड़ी नई पत्तियाँ निकलती हैं। पत्थर पौधे सामान्य रूप से 25 वर्ष तक जीवित रहते हैं। इन पौधों मे प्रत्येक वर्ष एक जोड़ी नई पत्तियाँ निकलती हैं, किन्तु पुष्प प्रत्येक वर्ष नहीं निकलते हैं। अतिशुष्क मौसम मे इनकी कुछ जातियों के पौधों का पूरा शरीर ही मिट्टी मे धंस जाता है तथा इस कार्य में इनकी सिकुड़ने वाली जड़ें अत्यधिक सहायक होती हैं। मिट्टी मे धँसे होने के उपरांत भी इनकी पत्तियों की ऊपरी सतह बाहरी वातावरण के संपर्क में रहती हैं तथा प्रकाश एवं गैसों के आवागमन को सुनिश्चित करती हैं। पत्थर पौधों में प्रकाश-संश्लेषणी उत्तकों का वितरण बहुत ही विशिष्ट होता हैं। जब ये पोधें पूर्णतया: मिट्टी में धँसे होते हैं तो प्रकाश के पत्तियों के अंदर प्रवेश पाना बहुत अधिक कठिन हो जाता है इसीलिए इनमें विशिष्ट प्रकार के खिड़की की भांति कार्य करने वाले पारभासी उत्तकों का विकास हुआ। इन पारभासी क्षेत्रों के नीचे की कोशाएँ बहुत बड़ी, जल से भरी हुई तथा रंगविहीन होती हैं। इन पारभासी क्षेत्रों से हो कर जाने वाला प्रकाश इनके नीचे की जल से युक्त कोशाओं में पहुँचकर इनके द्वारा प्रसारित होकर प्रकाशसंश्लेषणी उत्तकों तक पहुँच जाता है। प्रकाश संश्लेषणी ऊत्तकों तक पहुँचने वाले प्रकाश की मात्रा पारभासी क्षेत्र के क्षेत्रफल तथा इनकी पारदर्शिता के ऊपर निर्भर करती हैं। इसके अतिरिक्त इन पौधों की पत्तियों मे कुछ विशिष्ट प्रकार की कोशाएँ जैसे आइडियोब्लास्ट तथा प्लूसिड डॉटस भी पाए जाते हैं जो संभवत: प्रकाश के आंतरिक प्रसार में सहायता करती हैं।

पत्थर पौधों की 100 से भी अधिक जातियों का वर्णन उपलब्ध है किन्तु इनमें से लगभग 40 ही मुख्य हैं। पत्थर पौधों की कुछ मुख्य जातियाँ निम्नवत हैं- *लिथोप्स लेस्ली (Lithops lesliei), लिथोप्स ब्रोम्फील्डी (L. bromfieldii), लिथोप्स कोंपटोनी (L. comptonii), लिथोप्स डींटेरी (L.dinteri), लिथोप्स डाइवेर्जेंस (L. divergens), लिथोप्स डोरोथी (L. dorothae), लिथोप्स फ्रांसीसी (L. francisci), लिथोप्स फुल्विसेप्स (L. fulviceps), लिथोप्स हेली (L. hallii), लिथोप्स जुली (L. julii)।*

पत्थर पौधों की रोपण विधि- पत्थर पौधों की विचित्रता ही इनकी मांग एवं व्यापारीकरण का मुख्य कारण हैं। इन्हें इनके प्राकृतिक क्षेत्रों के अलावा अन्य स्थानों पर भी नियंत्रित वातावरणीय दशाओं में आसानी से उगाया जा सकता हैं। ये बालू तथा कंकड़पत्थर के मिश्रण में आसानी से उगाये जा सकते हैं। इन्हे बहुत कम पोषण की आवश्यकता होती हैं अर्थात वर्ष मे मात्र 2 या 3 बार। अक्टूबर माह से लेकर मार्च माह तक इन्हे पानी देने की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि इस दौरान पुरानी एक जोड़ी पत्तियाँ सूखती हैं तथा इनका स्थान एक जोड़ी नयीं पत्तियाँ ले लेती हैं। इन पौधों में कभी भी एक जोड़ी से अधिक पत्तियाँ देखने को नहीं मिलती। यदि ऐसा होता है तो इसका तात्पर्य यह हैं कि पौधे को आवश्यकता से अधिक पानी मिल रहा है तथा इस दशा में पौधे के सड़ने का खतरा बना रहता है। इन्हें केवल मार्च से लेकर सितम्बर महीने तक पानी देने की आवश्यकता होती है और वह भी एक हफ्ते मे केवल एक या दो बार। पत्थर पौधों को इनके बीजो या कटिंग्स से आसानी से उगाया जा सकता हैं। कटिंग्स की अपेक्षा इन्हे इनके बीजों से उगाना अधिक आसान होता है। इनके बीजो को अंकुरण हेतु अधिक तापमान की आवश्यकता होती है अत: ये प्राय: गर्मियों में ही अंकुरित किए जाते हैं। इन पौधों की कुछ जातियों को रिजनल प्लांट रिसोर्स सेंटर (आर० पी० आर० सी०), भुवनेश्वर, ओडिशा, ने संग्रहित किया है जो कि निम्नवत हैं:- *लिथोप्स ब्रोम्फील्डी (Lithops bromfieldii), लिथोप्स हेली (L. hallii), लिथोप्स करस्मोंतेनम (L. karasmontanum), लिथोप्स ओप्टिका (L. optica), लिथोप्स शवंतेसाई (L. schwantesii)*

आचार्य जगदीश चन्द्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान, भारतीय गणराज्य वनस्पति उद्यान (बी० जी० आई० आर०) नोएडा तथा भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शुष्क क्षेत्रीय केंद्र, जोधपुर में भी इन्हे स्थापित करने के प्रयास जारी हैं।

पेड़ लगाओ, पेड़ बचाओ।
मानव का अस्तित्व बचाओ।।
ऐसी उन्नति से क्या लाभ?
जीवन हो जाये अभिशाप।।

वनस्पति वाणी अंक 22 : 129-130(2013)

रीठा साहिब के मीठे रीठे

कुमार अम्बरीष
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

रीठा (सेपिन्डस प्रजाति) सेपिन्डेसी कुल का एक पर्णपाती औषधीय वृक्ष है, जिसकी विश्व में 13 एवं भारत में 5 प्रजातियां पायी जाती हैं। इसे भारत के विभिन्न प्रांतों में रिष्टक, फेनिल, सोपनट, सरिष्ठा, हरिष्ठा आदि नामों से जाना जाता है। यह वृक्ष उत्तराखण्ड में शिवालिक एवं तराई वाले क्षेत्रों के मिश्रित वनों में पाया जाता है। 15-25 फीट की ऊंचाई वाले इस वृक्ष में अगस्त माह में पुष्पन की प्रक्रिया शुरू होती है, जो सितम्बर-अक्टूबर में फलों में रूपान्तरित हो जाती है। इसके फल गोलाकार एवं एकल बीजी होते हैं, जो प्राय: स्वाद में कड़वे लेकिन औषधीय गुणों से भरपूर होते हैं। फलों में सेपोनिन एवं अन्य एल्केलॉयड्स की मात्रा अधिक होने के कारण इनका उपयोग स्थानीय लोग शैम्पू की तरह बालों एवं ऊनी कपड़ों को धोने, माइग्रेन, मिर्गी, एग्जीमा, सोरोसिस इत्यादि व्याधियों के उपचार हेतु प्रयोग करते हैं। हाल ही में उत्तराखण्ड के चम्पावत जिले के पादप सर्वेक्षण के दौरान लेखक को एक ऐसे रीठे की जानकारी प्राप्त हुयी है, जो स्वाद में छुआरे की तरह मीठे होते हैं। यह प्रजाति चम्पावत जिले में स्थित रीठा साहिब गुरूद्वारे में स्थित है, जिसे दर्शनार्थियों को प्रसाद के रूप में वितरित किया जाता है। इस विलक्षणीय मीठे रीठे के कारण ही इस स्थान का नाम "**रीठा साहिब**" पड़ा है। इस रोचक तथ्य का सम्पूर्ण वृत्तांत कुछ इस प्रकार है।

उत्तराखंड में चम्पावत जिले से 72 कि.मी. एवं टनकपुर से 160 कि.मी. की दूरी पर स्थित पवित्र गुरूद्वारा श्री रीठा साहिब, लोधिया एवं रेतिया नदियों के किनारे 29°17.464′ उत्तरी एवं 79°52.721″ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित एक सुदूरवर्ती क्षेत्र है । जो समुद्रतल से 3150 फीट की ऊंचाई पर स्थित है। सिक्ख धर्म के अनुयाइयों के इस पवित्र गुरूद्वारे का निर्माण सन् 1960 में पटियाला के राजा भूपेन्द्र सिंह के वंशजों ने इसे दूयूरी गांव के समीप करवाया जिसका क्षेत्रफल लगभग 3 वर्ग कि.मी. है। गुरूद्वारे के मुख्य ग्रंथी के अनुसार कार्तिक पूर्णिमा के दिन सन् 1508 ई0 में श्री गुरूनानक देव जी इस स्थान पर घूमने के लिये आये थे। यहां की अनुपम प्राकृतिक छटा से मोहित होकर ही गुरू जी ने रात्रि विश्राम का मन बनाया था। उनके साथ संत शिष्य भाई मरदाना भी थे। यहां पर रीठे के वृक्ष के नीचे गोरखपंथी सिद्धों का डेरा भी था। इसी वृक्ष के नीचे दांयी ओर गुरूजी बैठ गये एवं सिद्धों से वार्तालाप करने लगे। शाम ढलने लगी तो उनके शिष्य मरदाना को भूख लगने लगी। गुरूनानक जी ने मरदाना से कहा कि हम तो यहां मेहमान हैं, इन सिद्धों से भोजन की मांग करो। गुरूजी के आदेश पर मरदाना ने सिद्धों से भोजन की मांग की। सिद्धों ने कहा कि आपके गुरूजी तो ईश्वर के अवतार हैं, फिर आपको बैठे बिठाये भोजन क्यों नहीं करवा सकते? यह सुनकर गुरूनानक जी ने मरदाना से कहा कि वृक्ष पर चढ़कर फल खा लो। सिद्ध मुसकुराने लगे और कहा कि रीठे तो कड़वे हैं, इनको कोई कैसे खा सकता है? मरदाने ने गुरूजी के आदेश के अनुसार रीठे खाने शुरू कर दिये, जिसका स्वाद मीठा एवं छुआरे (सूखे खजूर) की भांति था। यह देखकर सिद्धों ने अपनी बार्यी ओर से रीठे खाने शुरू किये तो वे कड़वे थे। गुस्से में सिद्धों ने मरदाना के ऊपर एक जहरीला सांप फेंक दिया, लेकिन गुरूजी की कृपा से वह पत्थर का हो गया। यह देख कर सिद्धों ने गुरूजी के चरण पकड़ लिये और क्षमा याचना करने लगे। तभी से यहां के वृक्षों में लगे रीठे के फल आधे कड़वे और आधे मीठे होते हैं। गुरूनानक जी की कृपा ने कड़वे रीठों को मीठे रीठे में परिवर्तित कर दिया है ऐसी आस्था यहां सर्वविदित है।

यहां पर गुरूद्वारा कमेटी ने रीठे के लगभग 20 वृक्ष लगाये हैं। परिसर के समीप 2 हेक्टेयर क्षेत्र में रीठे के अन्य वृक्षों का रोपण भी किया गया है, जिसे "नानक बगीची" के नाम से पुकारा जाता है। यहां पर सिक्खों के अतिरिक्त अन्य धर्मों के लोग भी दर्शन के लिये साल भर आते रहते हैं। प्रत्येक वर्ष माह जून की 2, 3 एवं 4 तिथियों को यहां पर विशाल मेले का अयोजन होता है, साथ ही धार्मिक संगत भजन कीर्तन करती हैं, इन्हीं मीठे रीठों को प्रसाद स्वरूप वितरित किया जाता है।

विभागीय सर्वेक्षण कार्यक्रम के दौरान हमने दिनांक 29.10.2012 से 31.10.2012 तक रीठा साहिब एवं समीपवर्ती क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया, जिसमें भिंगराना, दयूरी, पदमपुर आदि ग्रामीण क्षेत्र सम्मिलित थे। लेकिन यहां के अलावा इस क्षेत्र में कही भी रीठे के

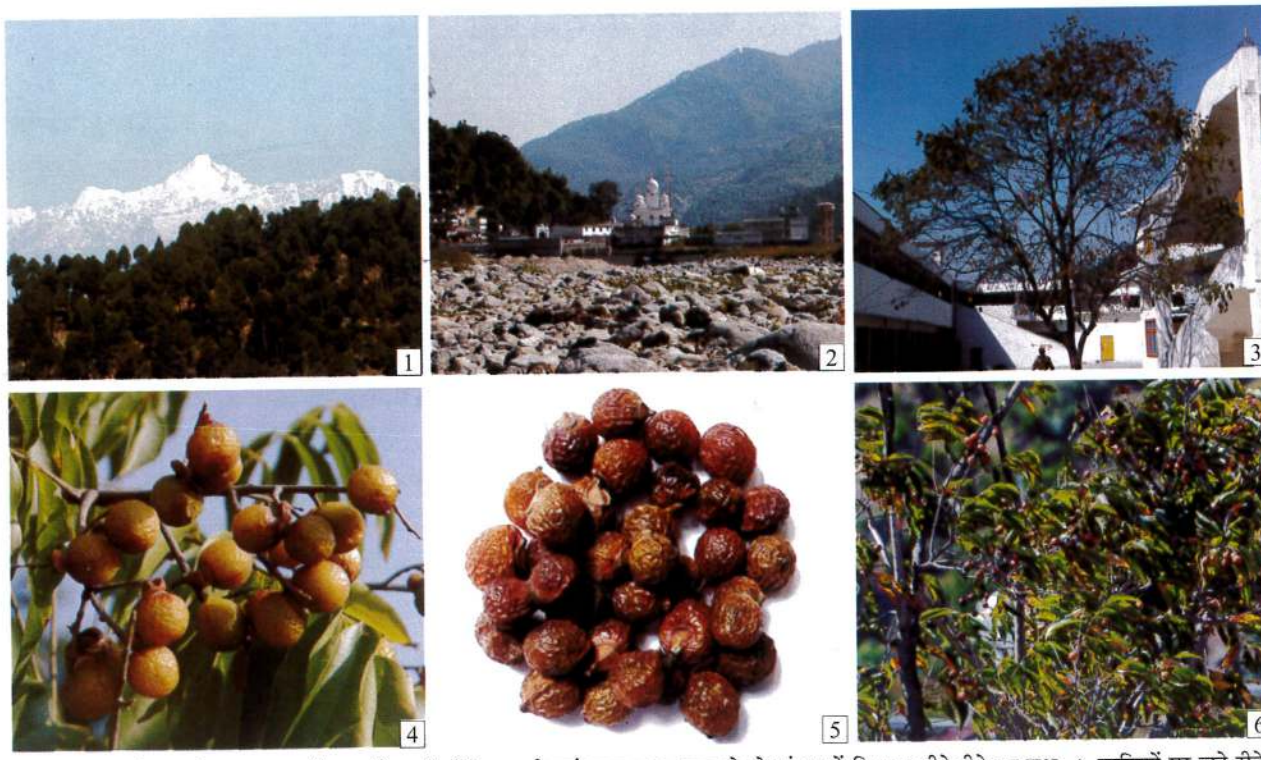

1. चम्पावत की प्राकृतिक छटा, 2. रीठा साहिब की लोधिया नदी एवं गुरूद्वारा 3. गुरूद्वारे के प्रांगण में विशाल मीठे रीठे का वृक्ष, 4. डालियों पर लदे रीठे के फल, 5. प्रसाद स्वरूप बंटने वाले सूखे मीठे रीठे, 6. "नानक बगीची" में रीठे के वृक्ष

वृक्षों को नही पाया गया। गुरूद्वारा कमेटी की अनुमति के बाद मीठे रीठे के वृक्ष से पादपालय हेतु नमूने एकत्र किये गये, साथ ही फलों को भी प्रायोगिक उद्यान हेतु एकत्रित किया गया। अध्ययन के उपरान्त पता चला कि इस वृक्ष का वानस्पतिक नाम *सेपिन्डस मुकुरोसी* गार्टन (*Sapindus mukorossi* Gaertn.) है। यह प्रजाति भारत, चीन एवं जापान के उष्ण कटिबंधीय एवं उपोष्ण कटिबंधिय पर्णपाती मिश्रित वनों में 200 मीटर से 1800 मीटर की ऊंचाई पर पायी जाती है। उत्तराखण्ड में यह गंगा के तटीय क्षेत्रों, शिवालिक एवं तराई की पहाड़ियों में व्याप्त है। परन्तु अन्य पौधों की भांति ही, इसके वासस्थलों पर बढ़ते मानवीय दबाव से यह प्रजाति वनों से लुप्तप्राय: होती जा रही हैं। हाल ही के सर्वेक्षणों में यह प्रतीत होता है कि, यदि इस प्रजाती के संरक्षण पर कार्य नहीं किया गया तो वह दिन दूर नहीं होगा जब रीठा जंगलों से गायब हो जायेगा और हम इस बेशकीमती वृक्ष को खो देंगे। अत: संरक्षण के दृष्टिकोण से वन विभाग को इसक पौधे को बहुतायत में रोपित करना चाहिये। कुछ प्रांतों में विभिन्न प्रयोगों एवं औषधीय गुणों के कारण यह सफलतापूर्वक उत्पादित भी किया जा रहा है, जो एक सकारात्मक कदम है। आवश्यकता इस बात की भी है कि ''रीठा सहिब'' में स्थित ''नानक बगीची'' को पावन उपवन (Sacred Groves) की श्रेणी में लाया जाये, क्योंकि इन वृक्षों का संरक्षण धार्मिक आस्था से जुड़ा हुआ है, एवं अन्य ऐसे क्षेत्र जहां पर ''रीठा'' प्राकृतिक रूप में विद्यमान है, उनको भी संरक्षित किया जाना चाहिये।

———

वनस्पति वाणी अंक 22 : 131-132(2013)

उत्तराखण्ड की पादप जैव विविधता पर घातक खरपतवारों का ऐलीलोपैथिक प्रभाव

गिरिराज सिंह पंवार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

उत्तराखण्ड राज्य का निर्माण 9 नवम्बर सन् 2000 को तत्कालीन राज्य उत्तर-प्रदेश के पर्वतीय भागों को पृथक कर किया गया था, हिमालयी राज्य उत्तराखण्ड अपनी प्राकृतिक सुन्दरता एवं अद्वितीय प्रचुर जैव विविधता के लिए विश्व-विख्यात है । पावन देवभूमि सदियों से कई तीर्थ स्थलों का निवास है, जिनके दर्शनों हेतु देश विदेश से प्रत्येक वर्ष करोड़ों यात्री यहाँ दर्शन करने आते हैं, उत्तराखण्ड राज्य कई प्रमुख नदियों का भी उद्गम स्थल है, जिनमें से सदानीरा गंगा और यमुना अपने पवित्र जल के लिये जानी जाती हैं।

उत्तराखण्ड राज्य में, लगभग 4700 पुष्पीय पादप जातियां पायी जाती हैं, जो देश की कुल पादप जातियों का 27 प्रतिशत है, एक अध्ययन से पता चला है कि, उत्तराखण्ड की कुल पादप जातियों में से 116 पादप जातियां स्थानिक (Endemic) हैं और इनका वितरण केवल उत्तराखण्ड तक ही सीमित है। सन् 2000 में पृथक उत्तराखण्ड राज्य बनने के बाद स्थानीय लोगों की अपेक्षाओं को देखते हुये पर्वतीय क्षेत्रों को पर्यटन नगरों में विकसित करने के लिये यहाँ पर विकास की लहर दौड पड़ी है। पर्यटन यहाँ के लोगों की आजीविका का मुख्य साधन है, पर्वतीय क्षेत्रों में बढ़ते हुए मानव क्रियाकलापों एवं प्रकृति से छेड़छाड़ के कारण यह देवभूमि आज अपनी जैव सम्पदा को खोने की कगार पर है, जिसके मुख्य कारणों में प्राकृतिक एवं मानव जनित आपदायें, प्राकृतवास विखण्डन, अतिदोहन एवं विदेशी जातियों का आक्रमण है।

ऐलीलोपैथी- ऐलीलोपैथी पादपों द्वारा प्रदर्शित वह प्रक्रिया है, जिसमें पेड़-पौधे अपने गौण उपापचयिक रसायनों को अपनी आस-पास के वातावरण में उत्सर्जित करते हैं और इस प्रक्रिया से अपने आस-पास के प्रतिद्वन्दी पेड़-पौधों की विकास दर को कम करने के साथ ही धीरे-धीरे उन्हें वहाँ से समाप्त कर देते हैं।

ऐलीलोपैथी शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम मौलिस्च ने 1937 में किया था, यह प्रक्रिया पेड़ पौधों एवं फसलों में व्यापक रूप से विकसित होती है और इसकी सहायता से पेड़-पौधे अपने आस-पास के प्रतिद्वन्दी पादपों से जीवित रहने के लिये प्रतिस्पर्धा करते हैं तथा अपनी वृद्धि के लिए उपर्युक्त स्थान एवं वातावरण का निर्माण करते हैं, इस प्रक्रिया में पौधे विभिन्न प्रकार के रसायनों का निर्माण करते हैं, जिन्हें ऐलीलो-रसायन कहते हैं। ऐलीलो-रसायन मुख्यतया गौण उपापचयी रसायन हैं, जिनका संभवत: पौधों की वृद्धि में कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं है, ये रसायन पेड़-पौधों को उनकी उचित वृद्धि के लिये अनुकूल वातावरनण प्रदान करते हैं। विभिन्न पादप प्रजातियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के रसायन उत्पन्न करती हैं, जिनमें मुख्यत: फीनोलिक्स, ऐल्केलॉइड्स, टरपीनोइड्स आदि हैं।

विदेशी घातक खरपतवारों की प्रजातियाँ इन्हीं गौण उपापचयी रसायनों को उत्सर्जित कर अपने आस-पास के वातावरण को अपने लिये अनुकूल बना लेती हैं तथा यहाँ की मूल प्रजातियों के लिए प्रतिकूल वातावरण बनाकर पहले उनकी वृद्धि कम कर अंतत: उनको वहाँ से समाप्त कर देती हैं।

भारत में उगने वाली खरपतवार की प्रजातियाँ- भारत में कई प्रकार की विदेशी खरपतवारों की प्रजातियाँ प्रकृति में उग रही हैं और यहां की मूल प्रजातियों के विकास एवं वितरण को प्रभावित कर रही हैं, भारत में लगभग 173 घातक खरपतवारों की विदेशी प्रजातियां पायी जाती हैं, जिनमें से स्थलीय खरपतवार हैं *ऐजीरेटम कोनीजोइडिस* एल., *क्रोमोलाइना ओडोरेटा* एल., *ऐजीरेटिना ऐडिनोफोरा, लैण्टाना कैमारा* एल., *मिकेनिया माइक्रेन्था* कुंथ, *माइमोसा इनवाइसा* (मार्ट) सोलम्स, *पारथेनियम हिस्टेरोफोरस* एल. *तथा प्रोसोपिस जूलिफ्लोरा* (एस.डब्ल्यू.) डीसी इत्यादि और *इकोराहिना क्रैसिप्स* (मार्ट) सोलम्स तथा *पिस्टिया स्ट्रटिओल्स* एल. जलीय खरपतवारें हैं।

उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में उगने वाली घातक खरपतवारों की प्रजातियाँ- जैसा सर्वविदित है कि, पर्वतीय क्षेत्र सदैव से औषधियों एवं रोजमर्रा की जरूरतों के पौधों का भण्डार रहा है, किन्तु कुछ विदेशी घातक खरपतवारों की प्रजातियों के प्रभाव से यहां की मूल पादप जातियों के अस्तित्व पर गहन संकट गहरा गया है, जिसके फलस्वरूप यहाँ की पादप जैव सम्पदा सिमट कर रह गयी है, और हमारे चारों तरफ केवल लैन्टाना, पारथेनियम, ऐजीरेटम एवं ऐजीरेटीना की विस्तृत झाड़ियां दिखाई दे रही हैं, उत्तराखण्ड

के पर्वतीय क्षेत्रों से पलायन ने इस स्थिति को और भी गम्भीर बना दिया है, ये प्रजातियाँ अब कृषि भूमि में भी व्यापक स्तर पर फैलने लगी हैं।

खरपतवार का नाम	**गौण उपापचयिक रसायन (एलीलोकैमिकल्स)**
पारथेनियम हिस्टेरोफोरस	पारथेनिन, क्रोनोपाइलिन, लैक्टोन्स
लैण्टाना कैमारा	सेस्क्वीटरपीन्स, जरमेक्रीन डी, जरमेक्रीम बी, कैरियोफिलिन
ऐजीरेटम कोनीजोइडिस	ऐजीरेटोक्रोमीन, कैरियाफिलीन, ह्यमुलीन
ऐजीरेटीना एडिनोफोरा	ऐमौरफीन, 3-एसीओक्सी एमोर्फा

लैण्टाना कैमारा - यह अमेरिका की उष्णकटिबन्धीय झाड़ीनुमा एक वर्षीय विदेशी प्रजाति है और यह विश्व के समस्त भागों में फैली हुयी है, इसकी कुल 150 प्रजातियाँ हैं और विभिन्न देशों में इसे एक सजावटी वृक्ष के रूप में लाया गया था। लैण्टाना को भारत में भी सन् 1809 में एक सजावटी वृक्ष के रूप में सर्वप्रथम भारतीय वनस्पति उद्यान कोलकाता में लाया गया था। जैसा कि उत्तराखण्ड की टिहरी रियासत के बारे में कहा जाता है कि, तत्कालीन राजा ने इसे अपनी प्रजा को हैजे से बचाने के लिए कहीं बाहर से मंगवाया था, किन्तु आज यह प्रजाति उत्तराखण्ड के समस्त भागों में तीव्र गति से फैल रही है और यहाँ की प्राकृतिक पादप सम्पदा एवं कृषि के लिए एक खतरा बन चुकी है। *लैण्टाना कैमारा* विभिन्न प्रकार के रसायन उत्सर्जित कर अपने आस-पास के पादपों की वृद्धि को प्रभावित करती है। *लैण्टाना* की पत्तियों में एक पेंटासाइक्लिक टारपिनॉयड रसायन पाया जाता है, जिसे खाने से पशुओं के यकृत में विषाक्तता उत्पन्न हो जाती है।

पारथेनियम हिस्टेरोफोरस - यह अमेरिकन मूल की एक वर्षीय शाकीय खरपतवार प्रजाति है और ऐस्टरेसी कुल की सदस्य है। इसे सामान्यत: गाजर घास या कोंग्रेस घास के नाम से भी जाना जाता है, यह अत्यंत विध्वंसक खरपतवार है और अपने ऐलीलोपैथिक प्रभाव से यहाँ की मूल पादप जातियों के बीजों के अंकुरण एवं वृद्धि को प्रभावित कर यह उत्तराखण्ड के सभी भागों में लगातार फैल रही है। *पारथेनियम* द्वारा उत्सर्जित पारथेनिन एवं अन्य रसायन पादपों की वृद्धि के लिए हानिकारक है ही किन्तु यह रसायन मानवों में भी त्वचा एवं श्वांस सम्बन्धी रोग पैदा करते हैं।

ऐजीरेटम कोनीजोइडिस - यह अमेरिकन मूल की एक उष्णकटिबन्धीय प्रजाति है, जो कम्पोजिटी कुल की सदस्य है, यह प्रजाति उत्तराखण्ड के पर्वतीय इलाकों में तीव्र गति से फैल रही है, और यहाँ की कृषि युक्त भूमि के लिए संकट का विषय बनी हुयी है, इस प्रजाति के व्यापक फैलाव से यहाँ की पादप जैव विविधता तो प्रभावित हुयी है, साथ ही कृषि की उत्पादकता को भी बड़ी क्षति पहुंची है। *ऐजीरेटम कोनीजोइडिस* द्वारा उत्सर्जित पाइरोलिजिडीन ऐलकेलाइडस मानुष्यों में यकृत सम्बन्धी रोग पैदा करता है।

ऐजीरेटीना एडिनोफोरा - यह मैक्सिको मूल की बारहमासी शाकीय प्रजाति है और एस्टरेसी कुल की सदस्य है, उत्तराखण्ड में यह प्रजाति नम एवं छायादार स्थानों पर बहुतायत में मिलती है, इसकी सघन झाड़ियों की वजह से इनके नीचे उगने वाली छोटी-छोटी शाकीय प्रजातियाँ धीरे-धीरे लुप्त होने लगी हैं। इसके अधिक सेवन से पशुओं में पल्मोनरी विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

पादप जैव विविधता का संरक्षण - उत्तराखण्ड में बढ़ती हुयी खरपतवारों की संख्या यहाँ की मूल प्रजातियों के लिये एक चुनौती बन गयी है, अगर इनकी वृद्धि इसी गति से चलती रही तो वो दिन दूर नहीं जब समस्त उत्तराखण्ड में केवल खरपतवारों की ही प्रजातियाँ उग रही होगी, जो न ही केवल यहाँ की पादप-विविधता के लिए एक संकट का विषय है, अपितु मानव जाति के लिए भी बड़ा खतरा है, क्योंकि इन खरपतवारों की प्रजातियों से तरह-तरह की बीमारियां उत्पन्न हो रही हैं जैसे-अस्थमा, एलर्जी, कैंसर, आदि।

अब यह नितान्त आवश्यक हो गया है कि, बृहद स्तर पर सरकार एवं नागरिकों को इनके उन्मूलन के लिए कोई विशेष रणनीति तय कर यहाँ की प्राकृतिक धरोहरों, पादप जैव विविधता को संरक्षित करना होगा, खरपतवार नियंत्रण कार्यक्रम चलाकर यहाँ की जनता को इसके दुष्परिणामों से अवगत कराकर इनके विस्तार को नियंत्रित किया जा सकता है। जैव विविधता संरक्षण के नैतिक तर्क का सम्बन्ध पृथ्वी ग्रह पर उपस्थित उन लाखों जन्तुओं, वनस्पतियों, सूक्ष्मजीवों की जातियों से है, जिनके साथ हम रहते हैं और जिनके बिना हमारा अस्तित्व संभव ही नहीं है, प्रत्येक जाति का अपना नैज मूल्य (Intrinsic value) होता है, भले ही इसका हमारे लिये कोई आर्थिक मूल्य न हो, किन्तु यह हमारी नैतिक जिम्मेदारी भी बनती है कि, हम उनकी देखरेख करें और इस जैविक धरोहर को आने वाली पीढ़ी के लिए अच्छी हालत में रखें।

वनस्पति वाणी अंक 22 : 133-134(2013)

वनस्पति विकास में खास है ''आभास''

प्रशान्त केशव पुसालकर एवं संजय उनियाल
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

विकास जीवन का मूलभूत आधार है। जैव विविधता से भरे इस विश्व में किसी भी प्रजाति को अपने आप को बनाए रखना तथा उसका विस्तार करने की क्षमता ही उसके ''यशस्वी'' होने का मापदंण्ड होती है। ऐसा करने में असमर्थ प्रजातियां जीवन-चक्र से विलुप्त हो जाती है। हर वनस्पति अपने पर्यावरण के अनुसार अपने आप को ढ़ालने की कोशिश करती है, तथा उपलब्ध सूक्ष्म-पर्यावरणीय घटकों के अनुरूप कुछ बदलाव करती है। यही बदलाव कालांतर में जैव विकास की उपलब्धियां बन जाते हैं, तथा उन्हें शारीरिक, रासायनिक बदलाव एवं परागण, प्रजनन, प्रसार, आदि क्रियाओं में देखा जा सकता है।

स्थान परिवर्तन में असमर्थ वनस्पतियों को अपने परागण एवं बीज प्रसार के लिए हवा, पानी, कीट, पंछी, प्राणी आदि घटकों पर निर्भर रहना पड़ता है। ऐसे घटकों को आकर्षित करना एक बड़ी चुनौती होती है और इसके लिये वनस्पतियां कुछ शारीरिक एवं रासायनिक बदलावों को अंजाम देती हैं। इस अद्‌भुत एवं विलक्षण वनस्पति जगत में ऐसी अनेक वनस्पतियां हैं जिनकी पत्तियां, फूल एवं फल के आकार, रंग तथा गंध में ऐसे बदलाव देखे जा सकते है जो कीट, प्राणी या पंछीयों को भक्ष्य की तरह प्रतीत होते हैं और उनको अपनी तरफ आकर्षित करते हैं। जहां अधिकतर वनस्पतियां ऐसे आकर्षित प्राणियों के लिए शहद, फल, बीज आदि से भोजन की उपलब्धता कराती है, वहीं कुछ जगहों पर इस आभास के शिकार घटकों को खाली हाथ वापस लौटना पड़ता है। दोनों ही तरीकों से वनस्पति अपना परागण एवं प्रसार सुनिश्चित करती है। इस तरह का आभास या भ्रम प्रकृति में निम्न उल्लेखित विभिन्न रूपों में देखा जा सकता है।

पत्तियां -वनस्पतिजगत में पत्तियों के विभिन्न आकार पाए जाते हैं और अनेकतम प्रजातियों में पत्ते का आकार उसकी पहचान होती है। पीपल, कमल, शीशम, नारियल, चिनार जैसी वनस्पतियों की पत्तियों के आकार से ही वह एक दृष्टि में आसानी से पहचानी जाती हैं। आक्जालिस गण की प्रजातियों में तिकोने आकार की पत्तियां और इनमें बनी धारियां एवं रंग बिरंगे धब्बे इसको तितली के पंखों जैसा रूप देते हैं। समूह में यह वनस्पति, तितली के झुंड का भ्रम पैदा कर परागण करने वाले घटकों को आकर्षित करने में सक्षम होती है।

पुष्प - जैव विकास में पुष्प रचना एवं पुष्पक्रम सरंचना में सबसे अधिक विभिन्नता पायी जाती है। पुष्प एवं पुष्पक्रम हर वनस्पति को अपनी अलग पहचान प्रदान करते हैं। परागण एवं प्रसरण करने वाले घटकों को भ्रमित करने के लिए किये जाने वाले अधिकतर बदलाव वनस्पति के इन्हीं अंगों में पाये जाते हैं। बाल्सम एवं बॉहिनिया की प्रजातियों में फैले रंगीन पुष्पदल और लंबे पुंकेसरों से सजे पुष्प तितलियों का आभास कराते हैं। मटर कुल की कुछ प्रजातियों में बाह्य पुष्पदल रोयेंदार होते हैं जो बालों से आच्छादित कीटकों के पैरों की तरह प्रतीत होते हैं। बदलाव विकास की नई उंचाई आर्किड की कुछ प्रजातियों में देखी जा सकती है, जहां पर फूलों का आकार परागण करने वाले मादा कीटक की तरह होता है जो नर कीटक को मिलन के लिये आकर्षित कर परागण को अंजाम देता है। इसी तरह द्रवबिन्दू जैसे दिखने वाले स्रावों का निर्माण कर ''ड्रोसेरा'' नामक कीटभक्षी वनस्पतियां आहार ग्रहण करती हैं।

फल - इस तरह के आभासीय बदलावों को फलों में भी देखा जा सकता है। ''जंगली जलेबी'' के नाम से विख्यात ''*पिथेसोलेबियम डल्सी*'' नामक वृक्ष प्रजाति में लाल रंग की पकी हुई घुमावदार फलियां और उससे निकलने वाला सफेद अंर्तभाग एवं काले बीज किसी कीड़े की तरह दिखते हैं और पंछियों को खाने के लिये आकर्षित करते हैं। मलबेरी के लाल-काले फल रसीले कीड़े का आभास पैदा करते हैं। ''मरोड़ फली'' (*हेलिक्टेरेस आइजोरा*) की घुमावदार फलियां दिखनें में कीड़े की तरह प्रतीत होती हैं। ऐसे आभासिय बदलाव जो किसी भक्ष्य की तरह प्रतीत होते हैं और पंछियों को आकर्षित करते हैं वह बीज प्रसार में महत्वपूर्ण

होते हैं। पंखुड़ियों से सज्जील मेपेल के फलों का गुच्छा ड्रेगन फ्लाई के झुंड की तरह दिखता है। उस पर झपटने वाले पंछियों के जोर से गिरने के कारण बीजों का प्रसार होता है। ''तुंगा'' नामक हिमालयन वनस्पति (*कोटीनस कोगाइग्रीया)* में बहुशाकीय पतले एवं लचीले पुष्पक्रम वृंत एवं पुष्पवृंत जो की रोयेंदार होते है वह दूर से मकड़ी के जाले की तरह दिखते है तथा उसके फल जाले में फंसे कीटकों की तरह प्रतीत होते हैं। अनेक पंछी ऐसे भ्रमित करने वाले रंगीन जालीनुमा फलक्रम की तरफ आकर्षित होकर उसके बीज प्रसार में मदद करते हैं।

इस तरह का ''आभास'' या ''भ्रम'' सिर्फ रंग-रूप तक ही सिमित नहीं है, बल्कि इसका सर्वोच्च विकास गंध एवं रासायनिक स्राव में दिखता है, वह चाहे विश्व का सबसे बड़ा पुष्प *रेफ्लेशिया अरनोन्डी* हो या भारत का सेप्रिया हिमालयाना, दोनों ही वनस्पतियां ऐसे रासायनिक स्राव का निर्माण करती है, जो सड़े हुए मांस की गंध का आभास कराते है, और मक्खियों को अपनी तरफ आकर्षित कर परागण को अंजाम देते हैं।

इसी तरह परजीवी कवकों की कुछ प्रजातियों में कवक बीजाणु एवं कवकजाल पोषीता वनस्पति के परागकण एवं परागनलिका की तरह दिखते हैं। यही नहीं बल्कि उसका रासायनिक स्राव भी पोषिता वनस्पति को भ्रमित करने वाला होता है। इस ''आभासीय'' अवस्था में वह पुष्प के स्त्रीकेसरों द्वारा बिजाणुधानी में प्रवेश कर परजीवी जीवन की शुरूआत कराती है।

''आभासीय रूपांतरण'' हमेशा ही परागण या प्रसरण से जुड़ा नहीं होता। कुछ वनस्पतियों में यह देखा गया है कि, अनचाहे जीवों को डराने या उनसे दूरी बनाए रखने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है। ''सर्पपुष्प'' या ''स्नेक लिली'' के नाम से विख्यात ''एरिजीमा'' वंश की प्रजातियों में पुष्पक्रम को ढकने वाला सह-पुष्पपत्र नाग के फन की तरह दिखता है और अनचाहे प्राणियों/पंछियों से फूलों की रक्षा कर छोटे कीटों एवं चीटीयों को परागण के लिए उपलब्धता कराता है। फल विकास के बाद यह सहपुष्पक्रम झड़ या सड़ जाता है और ऐसे में आसानी से दिखने वाले लाल फल बीज प्रसार के लिए पंछियों को उपलब्ध होते हैं।

हिमालय में पाए जाने वाले ''बेलेनोफोरा'' वंश की प्रजातियों में पुष्पक्रम जहरीले रंगीन कवक की तरह दिखता है और इस वजह से पंछी एवं प्राणी उससे दूरी बनाये रखते हैं। वही छोटे कीट एवं घोंघे उसकी तरह आकर्षित होकर परागण में उसकी मदद करते हैं।

बचाव की यह रणनीति कवकों में भी दिखाई देती है जहां कवकों की कुछ प्रजातियां चटकीले रंगीत केंचुओं की तरह होती है, तो कुछ विशिष्ठ संरचना का निर्माण कर अपनी रक्षा करती हैं।

दुनिया की सबसे छोटी परजीवी पुष्पीय वनस्पति ''*आर्स्युथोबियम माइन्युटिसिमम*'' के पुष्प पोषिता वनस्पति ''*पाइनस वालिचियाना*'' के शाखाओं पर चलने वाले छोटे कीड़ों के झुंड का आभास कराते हैं। ''बर्ड ऑफ पैराडाइज'' के नाम से विख्यात वनस्पति के पुष्प ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे कोई रंग बिरंगी चिड़िया बैठी हो।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रकृति ने वनस्पति जगत में फल, फूल व पत्तियों को विभिन्न रंग रूप देकर या ऐसी आभासीय संरचना प्रदान कर अपने प्रसारण एवं परागण में स्वयं एक भूमिका निभाने का अवसर दिया है तथा मानव जगत को भी अपनी ओर आकर्षित किया है, और यह सोचने और कहने पर विवश कर दिया कि प्रकृति तेरे रूप निराले।

————

वनस्पति वाणी अंक 22 : 135-136(2013)

ड्रैसेना ड्रैको (एस्परैगेसी)-एक रोचक व बहु-उपयोगी पौधा

रसानन्द कर, भावना जोशी व ए. ए. अंसारी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

एक पुरानी गाथा के अनुसार सोलोमन द्वीपों पर समुद्री दैत्य पाउ टंगालू की मृत्यु के बाद उसकी कब्र पर उगा यह वह पहला वृक्ष था, जिसका स्वरूप एकदम ड्रैगेन जैसा था। इस ड्रैगेन सदृश वृक्ष का वानस्पतिक नाम "*ड्रैसेना ड्रैको*" है, जो एस्परेगेसी कुल का सदस्य है। कनारी द्वीप-समूह के वैज्ञानिक "बेटिअर" ने सर्वप्रथम वर्ष 1402 में इस वृक्ष की खोज की थी। इसको ग्रीक में "ड्रैकैनिआ" कहते हैं, जिसका अर्थ महिला ड्रैगेन है। यह वृक्ष कनारी द्वीप का विशेष क्षेत्रीय पौधा है। इसकी अनेक जातियां विश्व के कई देशों में वितरित हैं, लेकिन भारत में इस जाति का अभी तक वितरण का कोई भी रिकार्ड उपलब्ध नहीं है। यह पौधा अत्यधिक औषधीय, व्यापारिक, व्यवहारिक व अन्य रोचक गुणों की विशेषता रखता है। इसकी जानकारी निम्न प्रकार प्रस्तुत की जा रही है।

प्राप्ति स्थान- यह एक उष्णकटिबंधीय वृक्ष है, जो सामान्यत: सोलोमन और कनारी द्वीपों में पाया जाता है। यह वृक्ष अपनी सुन्दर आकृति के कारण उद्यानों तथा बगीचों की शोभा बढ़ाने के लिए भी लगाया जाता है। स्पेन में इसके एक वृक्ष की उम्र को लगभग 6000 वर्ष बताया गया जिसे वर्ष 1868 के एक भंयकर तूफान ने उखाड़ दिया। वर्तमान स्थिति का जायजा लेने पर यह निष्कर्ष निकला कि आज यह वृक्ष एक दुर्लभ व सीमित क्षेत्रीय वृक्ष बन कर रह गया है। स्पेन में साउथ-सी द्वीप समूहों में इस पौधे को आज भी एक जादुई पौधा समझा जाता है।

वर्णन- *ड्रैसेना ड्रैको* एक बड़े आकार का लम्बी उम्र वाला सदाहरित वृक्ष है। इस वृक्ष की छाल प्रारम्भ में तो कोमल व धूसर होती है, किन्तु समय के साथ पुरानी होने पर यह धीरे-धीरे पपड़ीदार बन जाती है। इसकी पत्तियां लम्बी, समान्तर, लचीली व बहुसंख्या में शाखाओं के अग्रभाग से निकलती हैं। इसका डण्ठल लगभग 5 से.मी. लम्बा होता है। पत्तियाँ हमेशा गुच्छों में ही लगती हैं। पत्तियों की लम्बाई 30 से.मी. व चौड़ाई 2-3 से.मी. तक होती है, इनका अग्रभाग तीक्ष्ण अनीदार व धूसर-हरित होता है। इसके तने के अग्रिम भाग से पुष्पक्रम निकलता है, जो लगभग 50-70 से.मी. तक लम्बा होता है। इसके फूल छोटे, घण्टीनुमा, हल्के पीले/सफेद रंग के होते हैं। इसके बीज छोटे व काले होते है। बीजों की संख्या अधिक होती है पर बीज अंकुरित होने में समय अधिक लेते हैं।

पुष्पन एवं फलन- अप्रैल से जून तक ।

अद्‌भुत स्वरुप- यह प्राचीनकाल से ही अत्यन्त सुन्दर व मनोहर वृक्ष के रूप में जाना जाता है। नीली, लम्बी, गुच्छों में पत्तियाँ बहुत सुन्दर लगती है। इसका तना छोटा होता है तथा साथ ही मूँगिया जड़ पायी जाती है। किसी अन्य एकबीजपत्री पौधे की तरह इसमें भी वार्षिक या वृद्धि चक्र नहीं मिलता है, अत: इस पौधे की उम्र का अनुमान इसके ऊपरी भाग से निकलने वाली अनुमानित शाखन बिन्दु की संख्याओं से लगाया जाता है। इस वृक्ष के शल्कों के आखरी भाग से एक बड़ा पत्तियों का गुच्छा रोज़ैट रूप में निकलता है जो कि नुकीला व चर्मिल होता है। इस तरह इसकी आकृति ड्रैगेन के सिर जैसी दिखती है। इस वृक्ष की पत्तियों, शल्कों तथा चेरी की आकृति वाले फलों से एक गहरा लाल लीसा (रेजिन) निकलता है जिसे "ड्रैगन ब्लड" कहते हैं। कुछ वैज्ञानिकों के कथनानुसार, यह पौधा वास्तव में एक वृक्ष नहीं अपितु यह एक जाइंट लिली है।

व्यापारिक व व्यवहारिक महत्व-

1. ड्रैगेन्स-ब्लड से निकलने वाला लीसा गहरा लाल व भूरे रंग का, अपारदर्शी भंगुर होता है। जिसमें कठोर छिलके जैसी पपड़ियां होती हैं। गरम करने पर इससे बेन्जोइक अम्ल निकलता है जो प्रयोगशालाओं के साथ साथ दवाईयों के कारखाने में भी बहुत काम आता है।

2. आजकल यह लाल लीसा रंग-रोगन तथा फोटो ग्रेविंग के काम में आ रहा है। अधिकांशत: इसकी खपत चीन में होती है, जहाँ कागज के कारखाने में कागज को लाली देने के साथ ही विज्ञापन लिखने वाले कागज, शादी के निमंत्रण एवं नव वर्ष के कार्ड में रजंक के रूप में भी उपयोग किया जाता है।
3. कनारी द्वीपों के लोग ड्रैसेना की छाल को मधुमक्खी की पेटिका बनाने में उपयोग करते हैं।
4. लोक-वाद्य यंत्र बनाने हेतु ड्रैगन ब्लड की छाल का उपयोग किया जाता है।
5. ड्रैगेन ब्लड का उपयोग मुख्यत: रंजक तथा वायलिन व फर्नीचर आदि को रंगने में इसका लीसा प्रयोग किया जाता हैं।

लोक औषधीय महत्व-

1. ड्रैगेन ब्लड के लीसे को शरीर के बाहरी भागों में घाव भरने तथा रक्त स्त्राव को बन्द करने के लिए उपयोग किया जाता है।
2. इसके लीसे को मासिक धर्म के अनियमित होने व सीने में दर्द को ठीक करने के लिए उपयोग करते हैं।
3. बुखार को कम करने में तथा अमतिसार समस्या को दूर करने में भी ड्रैगन ब्लड का उपयोग होता है।
4. चर्म रोग तथा एक्ज़िमा को नाश करने हेतु ड्रैगन ब्लड के लीसे को लेप के रुप में उपयोग करते हैं।
5. दाँतों को मज़बूत करने हेतु ड्रैगन ब्लड को दंत मंजन के रुप में उपयोग करते हैं।
6. यूरोप में अपने कामोत्तेजक गुणों के कारण किसी समय यह लीसा मूल्यवान दवा के रुप में उपयोग होता था।

संरक्षण प्राथमिकता- ड्रैगेन ब्लड ट्री की विभिन्न उपयोगिता तथा पारम्परिक औषधि गुणों के कारण इसका अत्यधिक दोहन होने से आज यह पौधा संकटग्रस्त हो चुका है। निरन्तर दोहन होने से वह दिन दूर नहीं है, जब यह पौधा दुनिया से विलुप्त हो जायेगा। प्राकृतवास में संरक्षण, उद्यान में पारम्परिक तरीकों से प्रवर्धन व बचाव आदि के साथ -साथ इसके संरक्षण में ऊतक संर्वधन तकनीक का प्रयोग एक अहम भूमिका निभा सकता है।

जन-जन का हो एक ही नारा
प्रदूषण मुक्त हो पर्यावरण हमारा ।

शहद में परागकणों की भूमिका

महेन्द्र कुमार सिंघाड़िया, एस.के. श्रीवास्तव एवं संदीप कुमार सिरावत*
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून
*भारतीय प्राणी सर्वेक्षण, देहरादून

प्राचीन काल से ही मानव जाति को शहद की उपयोगिता के बारे में ज्ञान रहा है। वह शहद यानि मधु के औषधीय गुणों से पहले से ही भली-भांति परिचित था और इसे देवताओं के अमृत की संज्ञा दी गई थी। विश्व के प्रमुख धर्मो में शहद को पवित्रता, प्रसन्नता व यश का प्रतीक माना गया है और विभिन्न शुभ मंगल कार्यों में इसका उपयोग होता रहा है, जैसे शिशु को सर्वप्रथम आहार के रूप में शहद चटाये जाने की प्रथा, विवाह में नव वधू का स्वागत, उसके द्वार पर पहला कदम रखते ही शहद से भरे प्याले को भेंट स्वरूप देना और पिरामिडों में शव को खराब होने से बचाने के लिए भी शहद का ही उपयोग किया जाता है।

यूनानी दार्शनिक 'सुकरात' ने शहद के महत्वपूर्ण गुणों के कारण इसे "स्वर्ग का फरिश्ता" कहा था। मधुमक्खियां मकरन्द व परागकणों को विभिन्न प्रकार के पुष्पों से इकठ्ठा करती हैं। उसे 500 ग्राम शहद बनाने हेतु 50 लाख फूलों का रस चूसना पड़ता है। ये श्रमिक मधुमक्खियां अपनी पिछली टांगों में बनी संरचनाओं में इन भिन्न-भिन्न पुष्पों के परागकणों को भरकर लाती हैं। और फिर अपने छत्तों में बने विशेष कक्षों में उन्हें भर देती हैं, जो उनके परिवार के भरण-पोषण में खर्च होते रहते हैं।

शहद मुख्यत: पुष्परस होता है, जिसमें मकरन्द व परागकण मिले होते हैं। यह पुष्परस मधुमक्खियों की लार की सहायता से रासायनिक विघटन द्वारा शर्करा में परिवर्तित हो जाता है तथा मधुमक्खियां इस तरल को मधुकोषों में उडेल देती हैं। इसमें एन्जाइम व प्रचुर मात्रा में शर्करा होने की वजह से शहद में बैक्टीरिया या फफूंद नहीं पनपते हैं। शहद को गाढ़ा करने हेतु मधुमक्खियां अपने पंखों से इस तरल को वाष्पीकृत करती हैं व पूर्णतया गाढ़ा हो जाने के बाद इसे मोम के वायुरोधी ढक्कन द्वारा मधुकोषों में बन्द कर देती हैं। मधुमक्खियां परागकणों को भोजन के रूप में उपयोग करती है तथा भोजन ग्रहण करने के बाद परागकणों की बाहरी परत को अवशिष्ट के रूप में बाहर वातावरण में छिटका देती हैं जिसे "येलो रेन" (परागकणों की पीली वर्षा) कहा जाता है। ये परागकण छत्तों के आस पास पीली चिपचिपी छोटी-छोटी बूंदों के रूप में भी देखे जा सकते है।

इसके अलावा परागकणों में कई ऐसे विशिष्ट लक्षण होते हैं जिनका शहद में बहुत उपयोग होता है जैसे- परागकणों की बाहरी परत (एक्साइन) अत्यधिक सशक्त (स्पोरोपोलेनिन) रासायनिक तत्वों की बनी होती हैं जिससे ये परागकण हजारों वर्षो तक अपरिवर्तित अवस्था में किसी भी माध्यम में सुरक्षित रह सकते हैं, मधुमक्खियां अपने परिवार के भरण-पोषण हेतु इन परागकणों का उपयोग करती हैं, यदि इन परागकणों में कमी हो जाये तो मधुमक्खियों में एक प्रकार का पक्षाघात हो सकता है, जो कि हानिकारक होता है, शहद की शुद्धता की जांच करने में परागकणों की अहम भूमिका होती हैं, क्योंकि छत्तों से शहद निकालते समय अप्रयुक्त अनुपयोगी परागकण भी साथ में मिल जाते हैं, जिससे शहद में निहित इन परागकणों की पहचान करके शहद बनाने के लिए उपयोग में लाये गये मकरन्द स्रोतों (पुष्पों) की जानकारी प्राप्त कर लेते है, यदि शहद की एक बूंद का सूक्ष्मदर्शी द्वारा अध्ययन किया जाये तो इस नमूने (बूंद) में उपस्थित परागकणों द्वारा निम्न जानकारी मिलती है-

- अगर शहद की एक बूंद में परागकणों की संख्या अपर्याप्त है, तो वह शहद मिलावटी होता है। अर्थात वह अशुद्ध है।
- मधुमक्खी ने मकरन्द व परागकणों को इकठ्ठा करने के लिए किन-किन पौधों का रस चूसा है, किस मौसम में तैयार किया गया है, यह किस भौगोलिक क्षेत्र का है इसकी जानकारी भी परागकणों द्वारा आसानी से लग जाती है।

शहद में प्रयुक्त परागकणों की मात्रा (संख्या) के आधार पर शहद को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है- (1) उत्तम श्रेणी (2) मध्यम (3) व निम्न श्रेणी। प्रत्येक शहद के नमूने में परागकणों की संख्या व प्रारूप भिन्न-भिन्न होते हैं। नमूने में परागकणों की मात्रा ज्ञात करने के लिए "हीमोसाइटोमीटर" का उपयोग किया जाता है, यदि नमूने (शहद की बूंद) में परागकणों की संख्या, एक निश्चित मानक संख्या से अधिक पायी जाती है, तो वह शहद 'उत्तम किस्म' का तथा बहुत अधिक स्वादिष्ट होता है, अत: परागकणों का उपयोग शहद की शुद्धता/अशुद्धता की जाँच करने में भी किया जाता हैं।

———

वनस्पति वाणी अंक 22 : 138-140(2013)

सोमुरीरी झील - लद्दाख का एक हिमाद्रि रामसर स्थल

अच्युता नन्द शुक्ला, देवराज अग्रवाल एवं **सुनील कुमार श्रीवास्तव**
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

सोमुरीरी झील - लद्दाख

नम भूमि क्षेत्र जहाँ विश्व के सर्वाधिक उत्पादक क्षेत्रों में से एक हैं, वहीं ये जैव विविधता के पोषक हैं। ये अपने अन्दर वनस्पतियों एवं जीव-जन्तुओं को संजोये उनका संरक्षण करते हैं, खाद्य श्रृंखलाओं को स्थायित्व प्रदान करने के अतिरिक्त बाढ़ नियंत्रण, भू-जल शुद्धिकरण एवं निर्गमन, पोषक तथा संघनन, व्यर्थ जल एवं प्राकृतिक शोधन, कृषि, उद्योग एवं पेय जल स्रोतों जैसे पारितंत्रों द्वारा हमें लाभान्वित करते हैं। इसके अतिरिक्त नम भूमि हमारे पर्यटन के विकास का भी अभिन्न अंग हैं। ये हमें जलीय परिवहन भी प्रदान करते हैं। भारत में अनेकों नम भूमि क्षेत्रों में हर वर्ष पर्याप्त संख्या में प्रवासी पक्षी आते हैं, जो पर्यटन के माध्यम से विदेशी मुद्रा अर्जित करने में सहायक हैं।

नम भूमि पर अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन वर्ष 1971 में ईरान के रामसर में सम्पन्न हुआ था, जिसमें पक्षी प्राकृतवास को भी नम भूमि चिन्हित करने का अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का मापदण्ड माना गया। भारत में वर्ष 1990 तक छः रामसर स्थल स्थापित किये गये। वर्तमान में कुल 25 रामसर स्थल चिन्हित किये जा चुके हैं। समय-समय पर रामसर अधिवेशन होता है तथा नये रामसर स्थल को अनेकों मापदण्डों के आधार पर चिन्हित एवं घोषित किया जाता है।

नम भूमि हमारे जलीय पारितंत्रों में अनेकों रूप से सहायक होती है, जो कार्बन भण्डारण, बाढ़ नियंत्रण, जैव विविधता का रखरखाव एवं मत्स्य-पालन आदि में भी सहायक होती है।

ये झीलें विभिन्न वनस्पति प्रजातियों का संरक्षण भी करती हैं। इनसे विभिन्न जल स्रोत एवं नदियां निकलती हैं। इनके आस-पास निवास करने वाले मानव समुदाय को इनसे जलापूर्ति होती है एवं झीलों की वनस्पतियों से उनके मवेशियों को चारा मिलता है।

भारत में मिलने वाली 25 रामसर नम भूमि में चार नम भूमि जैसे वूलर, सोमुरीरी, होकेरा एवं सुरिन्सार-मानसर झील जम्मू एवं कश्मीर राज्य में हैं। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्रीय केन्द्र के वैज्ञानिकों ने लद्दाख के पादप सर्वेक्षण के दौरान सोमुरीरी झील का सर्वेक्षण किया।

सोमुरीरी झील (32°07' उत्तर - 32°50' उत्तर और 78°03' पूर्वी - 78°20' पूर्वी) लद्दाख के पूर्व में चांगथांग के खुले एवं बंजर पहाड़ों के बीच लगभग 4650 मी. की ऊंचाई पर स्थित है। इसका पानी बहुत ही खारा है, जिसके कारण यहां जलीय जीव जन्तु एवं पादप जातियाँ न के बराबर हैं। यह शीत काल में पूरी तरह जम जाती है। सन् 2002 में इस झील को रामसर स्थल का दर्जा दिया गया तथा इसे विश्व की सबसे ऊंचाई पर पायी जाने वाली झील एवं रामसर स्थल का गौरव भी प्राप्त है।

इसका सम्पूर्ण क्षेत्रफल लगभग 120 वर्ग कि.मी. एवं गहराई 40 मी. के आसपास है। हिमालय क्षेत्र की झीलों की पारिस्थिति की हिमालीय पारितंत्र का अनोखा स्वरूप हैं। इन झीलों पर मैदानी क्षेत्रों में स्थित नम भूमि क्षेत्रों की अपेक्षा कम अनुसंधान किया गया है। ये झील सुदूर क्षेत्रों में स्थित हैं एवं पूरे वर्षकाल में 6 माह अत्यधिक कम तापमान के कारण जमी रहती है। झील के चारों तरफ का क्षेत्र बेहद ही शुष्क एवं ठंडा है। इस झील में प्रवासी पक्षियों का आगमन अप्रैल महीने में होता है, जो अपना प्रजनन चक्र पूरा कर अक्टूबर महीने में झील से चले जाते हैं।

विश्व प्रसिद्ध एवं संकटापन्न काले गर्दन वाले सारस, चीन के बाद सोमुरीरी झील में ही प्रजनन को आते हैं, जहां ये पक्षी अपना प्रजनन चक्र पूरा करते हैं। काले गर्दन वाली सारस के अलावा यहां बहुत से पक्षियों जैसे *एन्सर इण्डिकस, लारस ब्रूनीसीफेलेस, पेडीसेप्स क्रिस्टेटस* इत्यादि अपने प्रजनन के लिये सोमुरीरी झील आते हैं।

झील का पादप सर्वेक्षण एवं विविधता - झील के आस पास का पूरा क्षेत्र तीव्र गति से चलती हवाओं, वर्षा की अत्यधिक कमी तथा तापमान के अत्यधिक उतार-चढ़ाव से प्रभावित रहता है। यहां की जलवायु की इस विशेषता के कारण जो पौधे हिमालय के अन्य क्षेत्रों में पाये जाते हैं, अधिकांशत: यहां नहीं होते हैं। अधिकतर पौधे इस क्षेत्र की विशेष जलवायु के अनुसार स्वयं को विशेष रूप में ढालकर जीवित रहते हैं। यहां की वनस्पतियों की अपनी एक अलग पहचान एवं विशेषता है।

सोमुरीरी रामसर स्थल का पादप सर्वेक्षण भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून के द्वारा 2011 एवं 2012 में किया गया। आंशिक रूप से खारा जल होने के कारण जलाशय के अन्दर बहुत ही कम वनस्पतियां देखने को मिलती हैं, जबकि झील के चारों किनारों पर विभिन्न दलदली वनस्पतियां पायी जाती हैं। इसके किनारे पर कुछ झाड़ीनुमा पौधे भी मिलते हैं जैसे *कैरेगाना पिग्मिया, आर्टीमीसिया* प्रजाति इत्यादि। झील के आसपास मिलने वाली वनस्पति प्रजातियां मुख्यत: शुष्क मरूस्थलीय क्षेत्र की होती हैं, जिनमें अनेकों परिवर्तन देखने को मिलते हैं। ये प्रजातियाँ यहां की की-स्टोन प्रजातियाँ मानी गयी हैं।

इसमें *अरेनेरिया ब्रायोफिला, एन्ड्रोसैसी सारमेन्टोसा,* इत्यादि शामिल है। यहां पायी जाने वाली घासों की प्रजातियों मे *कैरेक्स, कोबरेसिया, सिरपस* इत्यादि मुख्य है। इसके अतिरिक्त नमी वाले स्थानों पर *रेननकुलस, पोलीगोनम, पोटेन्टिला, जेन्श्यिाना* आदि प्रजातियां मिलती हैं। झील के पूर्वी छोर पर कुछ जलीय वनस्पतियां जैसे *पोटैमोजीटान पेक्टीनेटस, पोटैमोजीटान परफोलिएटस, जैनीचेलिआ, पालुस्ट्रिस और रेननकुलस* आदि मिलती हैं।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून के लद्दाख पादप सर्वेक्षण के दौरान सोमुरीरी से कुछ महत्वपूर्ण रोचक पादप प्रजातियों को एकत्र किया गया हैं जैसे- *एस्टागैलस कानफर्टस, ड्रैकोसिफेलम हेटेरोफिल्लम, पेडीकुलेरिस पेक्टिनेटा, चीनोपोडियम ग्लॉकम, डेल्फीनियम नारडेग्नी, पोटैन्टिला अनसेरिना, पॉलीगोनम डेलीकेटुलम, पोआ लाहुलेन्सिस, ड्राबा एल्पिना,* इत्यादि।

जन्तु विविधता- सोमुरीरी झील चांगथांग अभयारण्य क्षेत्र में स्थित हैं। यह क्षेत्र जंगली जानवरों के लिए पूरी तरह से संरक्षित है। इस अभयारण्य का दुर्गम क्षेत्र में होने के कारण यहां पायी जाने वाले जंगली जीव-जन्तु हर प्रकार से सुरक्षित रहते हैं। झील के आस-पास के क्षेत्र में पाये जाने वाले कुछ प्रमुख जन्तुओं की प्रजातियों में - *ग्रूस निगारिकॉलिस* (काली गर्दन वाली सारस): संकटग्रस्त *एन्सर इण्डिकस* (बार-हेडेड गीज): प्रजनन का स्थान केवल भारत, *लारस ब्रूनिसेफेलस* (भूरे गर्दन वाली गल्स): दुर्लभ, *पॉडीसेप्स निगरिकॉलिस* (काली गर्दन वाली ग्रीब): दुर्लभ, *पॉडीसेप्स क्रिस्टेटस* (ग्रेट क्रेस्टेड ग्रीब): दुर्लभ, *प्रोकाप्रा पिक्टीकाडेटा* (तिब्बतन गेजेल): संकटग्रस्त, *ओबिस अमान* (अरगाली), जंगली तिब्बतन गधा (क्यांग), *स्यूडोइस नयापुर* (भरल): हिमालयन ब्लू शीप, *मैरमेट हिमालयाना* (मेरमट), *अनसिया अनसिआल* (स्नो लैपर्ड), *कैनीलुवस चान्कू* (भूरा भेड़िया)।

1. *पेडीकुलेरिस लोंगिफोलिया* रूडोल्फ 2. *फाइसोक्लाइना* पैरीयाल्टा (डैक्ने.) मिर्यस 3. *माइक्रोला तिब्बेटिका* बैंथ. 4. सोमुरीरी झील के निकट तिब्बती जनजाति के लोग 5. सोमुरीरी झील के निकट पर्यटक शिविर का दृश्य

झील का संकट- विश्व में सबसे ऊंचाई पर स्थित यह नम भूमि क्षेत्र एक बहुत महत्वपूर्ण जलीय पारितंत्र है। अत्यन्त शुष्क एवं ठण्डी जगह में होने के कारण इसे भंगुर पारितंत्र में रखा जाता है। क्योंकि ये नम भूमि अभयारण्य क्षेत्र में है तथा इसके चारों ओर कुछ महत्त्वपूर्ण एवं अतिदुर्लभ जीव-जन्तु पाये जाते हैं जो यहां के पारितंत्र के अभिन्न अंग हैं। ऐसे जीव-जन्तुओं एवं पौधों के संरक्षण हेतु इस झील के प्राकृतिक स्वरूप एवं पारिस्थितिकी को सन्तुलित रखना अत्यन्त आवश्यक है। प्रतिवर्ष सैंकड़ो की संख्या में देशी व विदेशी सैलानियों का इस क्षेत्र में आवागमन बना रहता है। संरक्षित क्षेत्र होने के बावजूद यहां अनेकों समस्यायें देखने को मिलती हैं, जिसका प्रभाव इस झील पर कालान्तर में पड़ेगा।

1. निरन्तर सैलानियों की संख्या में वृद्धि।
2. झील तक पहुंचने के लिये सड़क का निर्माण।
3. झील के चारों ओर के क्षेत्रों में भेड़ों के चारागाह में बढ़ोत्तरी।
4. झील के आस-पास कूड़े का उचित निस्तारण न किया जाना।
5. वहां के खानाबदोश लोगों के पालतू कुत्तों द्वारा झील के सारस एवं उनके अण्डों को नष्ट किया जाना।
6. सैलानियों द्वारा प्रयोग किये जा रहे वाहन से वहां विशेष जंगली गधे (कियांग) की प्रजाति के प्रजनन स्थल को नुकसान पहुंचना।

झील का संरक्षण- नम भूमि के संरक्षण के लिए सर्वप्रथम इसके चारों तरफ होने वाले सड़क निर्माण को नियंत्रित कर तथा सैलानियों के रूकने की व्यवस्था को झील से दूर रखने की कवायद करनी होगी। जिससे वहां पर उग रही वनस्पतियों का अस्तित्व बना रहे। इस क्षेत्र में चरवाई पूर्ण रूप से बन्द करनी होगी तभी इस प्राकृतिक हिमाद्रि झील को सुरक्षित एवं संरक्षित रखा जा सकता है।

———

एम.एस. रंधावा : शैवालविद् एवं कुशल प्रशासक

आर.के. गुप्ता एवं **संगीता कुमारी**
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हाबड़ा

एम० एस० रंधावा
(1909- 1986)

डा0 मोहिन्दर सिंह रंधावा का जन्म 2 फरवरी 1909 जिरा, जिला-फिरोजपुर, पंजाब में हुआ था। उन्होंने 1924 ई0 में खालसा उच्च विद्यालय, मुक्तसर से उच्च माध्यमिक तथा 1929 ई0 में स्नातक की डिग्री लाहौर से प्राप्त की। तत्पश्चात् उन्हें 1930 ई0 में पंजाब विश्वविद्यालय के गवर्नमेंट कॉलेज लाहौर से स्नातकोत्तर तथा पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ से 1955 ई0 में डॉक्टरेट की उपाधि से सम्मानित किया गया।

उन्होंने 22 सितम्बर 1934 ई0 में भारतीय प्रशासनिक सेवा का पदभार ग्रहण किया और बहुत से महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्य किया जैसे सचिव, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली (1945-46) : उप-आयुक्त दिल्ली (1946-48), अतिरिक्त महानिदेशक पुनर्वास, पंजाब (1945-51), आयुक्त अंबाला विभाग (1951-53), विकास आयुक्त और आयुक्त पुनर्वास और संरक्षक, निष्क्रान्त संपत्ति, पंजाब (1953-55), विकास आयुक्त और आयुक्त पुनर्वास और संरक्षक, निष्क्रान्त संपत्ति, पंजाब (1953-55), उपाध्यक्ष भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, अतिरिक्त सचिव खाद्य एवं कृषि मंत्रालय, भारत सरकार (1955-60), सलाहकार प्राकृमितक संसाधन योजना आयोग (1961-64), विशेष सचिव खाद्य एवं कृषि मंत्रालय (1964-66), मुख्य आयुक्त, संघ शासित क्षेत्र चंडीगढ़ (1966-68), मुख्य आयुक्त, संघ शासित क्षेत्र चंडीगढ़ (1966-68) और कुलपति पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना (1968-76)।

वे एक कुशल प्रशासक एवं बहुमुखी प्रतिभा संपन्न व्यक्ति थे। इनके महत्त्वपूर्ण प्रयास से ही चंडीगढ़ शहर को योजनानुसार बसाया गया। इन्हें पंजाबी साहित्य एवं संस्कृति से बहुत ही लगाव था। इन्होंने किताबों तथा वैज्ञानिक पत्रिकाओं के माध्यम से कृषि, वनस्पति, जीव विज्ञान, शैवाल, कला, लोक संस्कृति एवं प्राकृतिक संपदा के ऊपर लेख प्रकाशित किया। इन्होंने हरित क्रांति में भी बहुमूल्य योगदान दिया। शैवाल के क्षेत्र में शुरू से ही इनका रूझान था उन्होंने आत्मकथा में लिखा है जब वे पहली बार 1926 में स्पाइरोगायरा के तंतु को सूक्ष्मदर्शी में देखा तो वे इसे देखकर अभिभूत हो उठे। इसकी संरचना, गहरे हरे रंग का सर्पिलाकार क्लोरोप्लास्ट तथा सीढ़ीनुमा संयुग्मित तंतु इनके मन-मस्तिष्क में बस गए। वे जब भी सरकारी दौर पर जाते तो उनके पास खाल नली, खाली दवात एवं सूक्ष्मदर्शी हुआ करते थे। उन्होंने पंजाब तथा उत्तर प्रदेश के मीठे पानी के शैवाल का संग्रह किया। जब भी वे सरकारी कामों से छुट्टी पाते शाम के समय शैवालों का अध्ययन किया करते थे। उन्होंने 38 मौलिक पत्रों का प्रकाशन देश तथ विदेश में किया।

डा0 रंधावा 1959 में जिगनिमेसी पर मोनोग्राफ लिखा, जिसे भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने प्रकाशित किया। इसमें 13 वंश तथा 580 जाति वर्णित है। यह मोनोग्राफ आज भी काफी प्रचलित है। 1934-1959 के मध्य इन्होंने पंजाब, उत्तरप्रदेश के जिगनिमेसी, जैथोफारसी, उडोगोनेल्स और यूलोट्राइकेल्स समूह के शैवाल पर काफी शोध किया तथा वंश 42 जाति की खोज की। सन् 1956 में एक संगोष्ठी का आयोजन भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् नई दिल्ली में किया गया जिसमें उन्होंने विशेष रूप से आयंगर, देसिकाचारी, सुंदरलिगम, फिलीपोस, गोनजालविस, रामानाथन, पाल, वेंकटरामन जैसे शैवालविद् को आमंत्रित किया और शैवाल के प्रत्येक समूह पर मोनोग्राफ लिखने का कार्यक्रम बनाया और उन्हीं के निर्देशन में कुछ मोनोग्राफ का प्रकाशन भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा किया गया, जो निम्नलिखित है :-

जिगनिमेसी - एम0एस0 रंधावा (1959), सायनोफाइटा - टी0वी0, देसिकाचारी (1959), वाउचेरिएसी - जी0एस0 वेंकटारामन (1961), कारोफाइटा - बी0पी0 पाल, बी0सी0कुण्डु, वी0 एस0 सुंदरलिंगम और जी0एस0 वेंकटारामन (1962), यूलोट्राइकेल्स के0आर0 रामानाथन (1964), क्लोरोकोकेल्स - एम0टी0 फिलिपोस (1967), उडोगोनिएल्स - इ0ए0 गोनजालविस (1981), वालवोकेल्स - एम0ओ0 पी0 आयंगर और देसिकाचारी (1981)।

उनकी मृत्यु 3 मार्च 1986 को हुई। आज भी उनके द्वारा संग्रह किए गए शैवाल, छायाचित्र, रेखाचित्र पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना में सुरक्षित है। इस महान विभूति के योगदान शोधकर्त्ताओं शिक्षकों और प्रकृतिविद् के लिए सदियों तक प्रेरणा स्रोत बने रहेंगे।

डा०एम०एस०रंधावा का शैवाल के विभिन्न वर्गों में दिया गया योगदान -

वर्ग : क्लोरोफाइसी, कुल माइक्रोस्पोरेसी

माइक्रोस्पोरा इंडिका रंधावा *Microspora indica* Randhawa

वर्ग : क्लोरोफाइसी, कुल सिलिंड्रोकैपसेसी

सिलिन्ड्रोकैप्सा ओडोगोनियोडिस रंधावा *Cylindrocapsa oedogonioides* Randhawa, *सिलिन्ड्रोकैप्सा किटोनिमोडिस* रंधावा *Cylindrocapsa scytonemoides* Randhawa

वर्ग : क्लोरोफाइसी, कुल उडोगोनिएसी

स्फैरीयोप्लीया एनूलिना एफ. *मल्टीसेरियेटा* रंधावा *Sphaeroplea annulina* f. *multiseriata* Randhawa

वर्ग : क्लोरोफाइसी, कुल जिगनिमेसी

ओडोक्लेडियम हिमालायेंसे रंधावा *Oedocladium himalayense* Randhawa, *ओडोक्लेडियम टेरिस्ट्रीस* रंधावा *Oedocladium terrestris* Randhawa

वर्ग : क्लोरोफाइसी, कुल जिगनिमेसी

ओडोक्लेडियम कैपीलिफार्मी प्रभेद *नेनुम* रंधावा *Oedogonium capilliforme* var. *nanum* Randhawa, *ओडोक्लेडियम फ्रैंक्लीयेनम* प्रभेद *पॉलिस्पोरा* रंधावा *Oedogonium franklinianum* var. *polyspora* Randhawa, *ओडोक्लेडियम इनर्मी* प्रभेद *पॉलिस्पोरा* रंधावा *Oedogonium inerme* var. *polyspora* Randhawa, *ओडोक्लेडियम रेव्यूलेरे* प्रभेद *नेनुम* रंधावा *Oedogonium rivulare* var. *nanum* Randhawa, *ओडोक्लेडियम टेरिस्ट्रीस* रंधावा *Oedogonium terrestris* Randhawa

वर्ग : क्लोरोफाइसी, कुल जिगनिमेसी

डिबारया कोस्टाटा रंधावा *Debarya costata* Randhawa

वर्ग : क्लोरोफाइसी, कुल जिगनिमेसी

स्पाइरोगाइरा एप्लानोस्पोरा रंधावा *Spirogyra aplanospora* Randhawa, *स्पाइरोगाइरा गाल्लिका* प्रभेद *बाईक्रोमैटोफोरा* रंधावा *Spirogyra gallica* var. *bichromatophora* Randhawa, *स्पाइरोगाइरा जाओयेंसिस* रंधावा *Spirogyra jaoensis* Randhawa, *स्पाइरोगाइरा करनालाई* रंधावा *Spirogyra karnalae* Randhawa, *स्पाइरोगाइरा मनोरमाई* रंधावा *Spirogyra manormae* Randhawa, *स्पाइरोगाइरा ओधूनेंसिस* रंधावा *Spirogyra oudhensis* Randhawa, *स्पाइरोगाइरा रेटिकुलेट्म* रंधावा *Spirogyra reticulatum* Randhawa, *स्पाइरोगाइरा रेटिकुलाईना* रंधावा *Spirogyra reticuliana* Randhawa, *स्पाइरोगाइरा रॉज्वायडिस* रंधावा *Spirogyra rhizoides* Randhawa, *स्पाइरोगाइरा साहानाई* रंधावा *Spirogyra sahnii* Randhawa, *स्पाइरोगाइरा कुजाई* रंधावा *Spirogyra skujae* Randhawa, *स्पाइरोगाइरा सबमैक्सिमा* प्रभेद *इंफ्लाटा* रंधावा *Spirogyra submaxima* var. *inflata* Randhawa, *स्पाइरोगाइरा टन्डाई* रंधावा *Spirogyra tandae* Randhawa, *स्पाइरोगाइरा उन्डूलीसेप्ट्म* रंधावा *Spirogyra unduliseptum* Randhawa.

वर्ग : जैन्थोफाइसी, कुल बॉटररिडिएसी

ओट्राईडियम प्रभेद *क्लेविफॉर्मिस* रंधावा *otrydium granulatum* var. *clavaeformis* Randhawa

इसके अतिरिक्त क्लोरोफॉइसी वर्ग में कई नवीन जातियों के अन्वेषण के द्वारा डा० रंधावा के द्वारा भारतीय शैवाल वर्गीकरण में अद्वितीय योगदान दिया गया ।

———

वनस्पति वाणी अंक 22 : 143-144(2013)

प्रो. करतार सिंह थिंड- एक कवक विज्ञानी

मनोज ईमानुएल हेम्ब्रम एवं **अरविंद परिहार***
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा
*भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

पंजाब की धरती ने देश की दिशा निर्धारित करने वाले उच्च कोटि के कई प्रतिभाशाली वैज्ञानिक देश को दिये जिनके कंधो पर खड़ा होकर वर्तमान विज्ञान गर्व करता है। प्रस्तुत आलेख उन्हीं रत्नों में से एक प्रो. के. एस. थिंड के जीवनवृत पर प्रकाश डालता है।

सरदार भाग सिंह के सुपुत्र करतार सिंह थिंड का स्थान सात बच्चों के मध्य पाचवाँ था। इस अतुलनीय शोधकर्ता का जन्म थिंड, राजपूत घराने में दिनांक 30 अक्टूबर सन् 1917 को पंजाब प्रांत के कपूरथला जिले के अंतर्गत सुल्तानपुर लोधी तहसील के सैदपुर गाँव में हुआ था। उनका परिवार पंजाब के सामान्य ग्रामीण कृषक परिवार के समान ही था, अत: उनका लालन-पालन भी सामान्य पंजाबी बालक की तरह ग्रामीण पृष्ठभूमि में हुआ। मीलों दूर तक सरसों और गेंहू की फसलों के बीच खेलते- कूद्ते एवं प्रकृति के साथ घनिष्ठ लगाव रखते हुए वे बड़े हुए। शायद विधाता के इसी अवसर को उपहार की तरह स्वीकार करते हुए उन्होनें अपने आपको कवकों के अध्ययन में समर्पित कर दिया तथा भारतीय वनस्पति विज्ञान के इतिहास में अमर हो गए। वृहद कवकों की रोचक कहानी डॉ. थिंड की चर्चा के बिना अधूरी ही मानी जायेगी।

बचपन से ही उन्होनें अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय देना शुरु कर दिया था। उन्होनें माध्यमिक परीक्षा परमजीत उच्च विद्यालय सुल्तानपुर लोधी से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। महाविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने के उद्देश्य से उन्होनें खालसा महाविद्यालय, अमृतसर में अपना नामांकन कराया। उन दिनों खालसा महाविद्यालय अविभाजित उत्तरी-भारत के शैक्षणिक संस्थानों में अग्रणी था। यहां से सन् 1939 में स्नातक (सम्मान) की उपाधि उन्हें प्राप्त हुई। उनका स्थान मेधा सूची में सर्वोच्च स्थान पर था। जिसके फलस्वरूप उन्हें ओमान पुरुस्कार से भी विभूषित किया गया। स्नातकोत्तर शिक्षा के दौरान एम.एस.सी. की उपाधि प्राप्त करने के लिये उन्होनें अपना अल्पकालीन शोध कार्य एवं शोध प्रबंध डॉ. एच. चौधरी, विभागाध्यक्ष एवं प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय ,लाहौर के दिशा निर्देशन में पूरा किया। स्नातकोत्तर की उपाधि प्रथम श्रेणी में प्राप्त करने के फलस्वरूप पंजाब विश्वविद्यालय ने उन्हें सन् 1942-1945 तक तीन वर्ष हेतु अल्फ्रेड पटियाला शोधवृत्ति भी प्रदान की। उनके जीवन में अब शोध-कार्यो के प्रति गहरा लगाव उत्पन्न हो चुका था, साथ ही साथ शैक्षणिक श्रेष्ठ्ता भी उन्हें यह सुअवसर प्रदान कर रही थी, कहते हैं कि ईश्वर भी उन्हीं की मदद करता है, जो निष्ठापूर्वक प्रयत्न में लगे रहते हैं।

भारत सरकार के समुद्री पार शोधवेत्ता के रुप में, पी.एच.डी कार्यक्रम के तहत उन्हें विस्कोंसिन विश्वविद्यालय मेडिसन, संयुक्त राज्य अमेरिका में एक सुप्रसिद्ध पादप-रोग विज्ञानी जार्ज. डब्ल्यू. केट के निर्देशन में कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। यहाँ शोधकार्य करते हुए उन्होनें अपना भविष्य शोधकार्यो के नाम कर दिया। पादप रोगों की ओर उनका झुकाव यहीं से प्रारम्भ हुआ।

डॉ. थिंड पी.एच.डी. की उपाधि ग्रहण करने के पश्चात् सन् 1949 में स्वदेश लौटे आये। यह काल भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। देश स्वाधीन हो चुका था, लेकिन साथ ही साथ अंग्रेजों की कुटिल नीतियों के कारण देश विभाजन तथा दंगो की त्रासदी भी झेल रहा था। विभाजन से सर्वाधिक प्रभावित राज्यों में पंजाब भी शामिल था। पंजाब विश्वविद्यालय भी इस त्रासदी से अछूता नहीं रहा, इसका मूल हिस्सा पाकिस्तान में चला गया था, भारत को नए सिरे से पंजाब विश्वविद्यालय की स्थापना करनी पड़ी थी। सन् 1949 में डॉ. थिंड ने अल्पकाल के लिये क्षेत्रीय आलू विकास पदाधिकारी के रूप में हिमाचल प्रदेश मे योगदान दिया, लेकिन शीघ्र ही उन्हें अमृतसर के खालसा महाविद्यालय में अस्थायी रूप से चलाये जा रहे नव-स्थापित पंजाब विश्वविद्यालय में सीमित संसाधनों सहित व्याख्याता के रूप में योगदान का अवसर प्राप्त हुआ। यह कार्य उनके मनोनुकूल था, क्योंकि पी.एच.डी की उपाधि के

दौरान उन्होनें कुछ इसी तरह का प्रशिक्षण प्राप्त किया था। कार्य शुरू करने के कुछ समय पश्चात ही उन्हें संसाधनों की कमी महसूस होने लगी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश आर्थिक संकट से भी गुजर रहा था अत: इसका असर देश की शिक्षा व्यवस्था पर भी पड़ना स्वाभाविक ही था। शोध-कार्यो के प्रति पूर्णत: समर्पित इस शोधकर्ता के कार्य संसाधनों के अभाव में प्रभावित होने लगे। ठीक इसी समय केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञानी ई.जे.एच, कार्नर ने सारे विषुवतीय क्षेत्रों से सम्बंधित सभी समूहों के वनस्पतिजात के अध्ययन हेतु एक कार्यक्रम शुरू किया और उन्हें भारत से भी कुशल वनस्पतिज्ञों की आवश्यकता पड़ रही थी। कार्नर महोदय के इस महान कार्य में योगदान के लिये भारत से प्रो. आर.एस. चोपडा. हरितोद्भिदों के अध्ययन हेतु एवं डॉ. थिंड कवकों के अध्ययन हेतु चयनित किये गये।

एक शोधार्थी -पी.एच.डी. की औपचारिक दीक्षा ग्रहण करने के दो दशकों के अंदर ही प्रो. थिंड ने भारतीय उपमहाद्वीप में अपने आपको जान-माने कवक विज्ञानी, पादप रोग विज्ञानी एवं कवक पोषण विज्ञानी के रूप में स्थापित कर लिया था। उत्तरी पश्चिमी हिमालय के कवकों पर 1952-1976 तक उन्होनें गहन सर्वेक्षण तथा अन्वेषण का कार्य किया। पूर्वी हिमालय पर उन्होनें लगभग दस साल तक 1977-1986 के मध्य कार्य किया। इस कार्य में उनके साथ कई कवकविदों ने अनुसंधान का कार्य किया, जो वर्तमान समय में देश के विभिन्न प्रतिष्ठित संस्थानों एवं महाविद्यालयों में कार्यरत हैं। शोध कार्यों में संसाधनों की पूर्ति हेतु उनके पास भारत सरकार एवं विदेशों की कई परियोजनाएं थी, जिसको उन्होनें सफलतापूर्वक संचालित किया। सन् 1966 से 1976 के मध्य पी. एल. 0-480 के तहत दो वैज्ञानिक परियोजनाओं तथा सन् 1977-1986 बीच विज्ञान एवं प्रोद्यौगिकी विभाग द्वारा वित्त पोषित दो परियोजनाओं का संचालन भी उनके द्वारा किया गया। प्रो. थिंड के अथक परिश्रम का फल है कि कवकों पर भरपूर शोधपत्रों का प्रकाशन हुआ । इस विस्तृत कवक सर्वेक्षण के पश्चात प्रो.थिंड को भारत हेतु कई नवोभिलेख एवं विज्ञान हेतु नए वंश एवं प्रजातियाँ प्राप्त हुई आंकडों की दृष्टि से यह संख्या शतक को पार कर जाती है।

डॉ. थिंड ने शिक्षक के रूप में भी राष्ट्र की सेवा की, सन् 1957 में डॉ. थिंड रीडर पद पर नियुक्त हुए। इस दौरान एक अच्छे शिक्षक के रूप में वे ख्याति प्राप्त कर चुके थे। कवकों की विविधता पर शोध कार्यों में अपनी संलग्नता के बावजूद उन्होनें विद्यार्थियों को पूरी तन्मयता से शैवाल, पादप कार्यिकी एवं परिस्थितिकी विषयों पर व्याख्यान दिये। उनका आत्मविश्वास और विषय के प्रति गहरा लगाव ही उन्हें एक हरफनमौला शिक्षक बनाता था। सन् 1962 में उन्हें वनस्पति विज्ञान के प्रोफेसर का पद प्राप्त हुआ। इस विभाग में वे कवक विज्ञान एवं पादप रोग विज्ञान के शिक्षक नियुक्त किये गये । 1976-1977 में वनस्पति विज्ञान विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए। सेवानिवृति के पश्चात् उनकी उप्लब्धियों को देखते हुए उन्हें पुन: प्रोफेसर के पद पर (1977-1980) नियुक्त किया गया।

कवक कार्यिकी एवं वर्गीकरण में योगदान - प्रो. थिंड के द्वारा बहुत सारे पौधों एवं जंतुओ में रोग उत्पन्न करने वाले कवकों के संवर्धन माध्यम हेतु सूक्ष्म एवं वृहद पोषण तत्वों का सम्मिश्रण तैयार किया गया। जिसके द्वारा कृत्रिम माध्यम में इन कवकों को वृद्धि करके प्रयोगशाला में अध्ययन किया जा सका। एफाइलोफोरेल्स, गैस्ट्रोमाईसिटीस एवं एस्कोमाईसिटीस के वर्गीकरण में ऊत्तकों की संरचना को वर्गीकरण लक्षण के रुप में प्रयोग करना भारतीय उपमहाद्वीप में पहली बार इन्होनें ही शुरू किया था, उनके पहले कवकविदों ने इस तथ्य को नकार दिया था। इस प्रकार उनके कार्यो में गैस्ट्रोमाईसिटीस के बेसिडियोफलन काय तथा जाएलेरियेसी कुल मे एस्कोफलनकाय में ऊत्तकीय लक्षणों को वर्गीकरण हेतु प्रयोग किया गया।

उपलब्धियाँ- प्रो. थिंड अपने सक्रिय कार्यकाल में लगभग 188 शोधपत्रों का प्रकाशन राष्ट्रीय एवं अंर्तराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त वैज्ञानिक पत्रिकाओं में किया। उन्हीं के अथक प्रयत्नों का परिणाम है कि, पंजाब विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग का नाम शोध एवं शिक्षण कार्यो में अग्रणी है। उन्होनें कई राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सभाओं तथा सेमीनार में हिस्सा लिया तथा उनकी अध्यक्षता भी की। प्रो. थिंड इंडियन अकादमी आफ साईस के फेलो रहे। वे इंडियन फाईटो-पैथौलौजी के आजीवन सदस्य के साथ-साथ अन्य कई संगठनो के भी सदस्य रहे। 17 दिसम्बर 1967 को उन्हे एफ. एन. ए. की उपाधि से सम्मानित किया गया। सन् 1979 मे उन्हे पंचानन माहेश्वरी मेडल से विभूषित किया गया। 03 दिसम्बर 1991 के दिन, 74 वर्ष की आयु में कवकों के इस महान वैज्ञानिक का शरीर पंचतत्व में विलीन हो गया। लेकिन उनके द्वारा किये गये शोधकार्य एवं शोधपत्र आज भी कवक शोधार्थियों के लिये पथप्रदर्शक का कार्य कर रहे हैं।

———

वनस्पति विज्ञान के जनक थिओफ्रेस्टस

नवीन चौधरी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

भारत में प्राकृतिक संसाधनों के गहन अध्ययन के आधार पर एक विशिष्ट चिकित्सा पद्धति विकसित हुई, जिसे आयुर्वेद कहा जाता है। इस चिकित्सा पद्धति के विकास में दो मनीषी अग्रगण्य है, चरक एवं सुश्रुत। इन दोनों की संहिताएं चिकित्सा पद्धति के अनमोल ग्रन्थ हैं। अन्य मनीषियों के योगदान से आयुर्वेद का महत्व आज भी व्यापक रुप से स्वीकृत है ।

ईसा पूर्व यूनान (ग्रीस) में प्राकृतिक संसाधनों के अध्ययन की परम्परा थी। उस युग के यूनानी विद्वानों द्वारा लिखित ग्रन्थों में इसके प्रमाण हैं। यूनानी चिन्तन धारा के तीन दिग्गज सुकरात,प्लेटो, अरस्तु,भी प्राकृतिक संसाधनों के महत्व के प्रति पूर्ण साकांक्ष थे। इन दिग्गजों के विद्यापीठ के एक मेधावी छात्र थे, थिओफ्रेस्टस (371–287 ईसा पूर्व)। अद्वितीय मेधा एवं ज्ञान–विज्ञान की शाखा–प्रशाखा में इनकी रुचि के कारण अरस्तु के बाद इन्हें विद्यापीठ का प्रधान आचार्य बनाया गया। 36 वर्षो तक इन्होंने उस महान विद्यापीठ का संचालन किया। इस अवधि में वे एथेंस के सबसे सम्मानित व्यक्तियों में से एक थे। देहावसान के बाद अंतिम महायात्रा में एथेंस के सभी लोग उनकी अर्थी के साथ चल रहे थे ।

यूनान के अनेक विद्वानों ने थिओफ्रेस्टस से पहले वनस्पति सहित प्राकृतिक संसाधन एवं अन्य विषयों के अध्ययन किये थे, पुस्तकें लिखी थी। थियोफ्रेस्टस ने भी अनेक विषयों पर पुस्तक–पुस्तिकाएं लिखी। अन्य विषयों पर लिखित पुस्तकों से वे महान लेखक या विद्वान के रुप में स्मरणीय होते हैं। पेड़–पौधों पर लिखित दो पुस्तकों ने उन्हें "वनस्पति विज्ञान का जनक" बना दिया।

पेड़–पौधों के अन्वेषण (इंक्वायरी इंटू प्लांट्स) तथा पेड़ पौधों के निमित (ऑन द कोजेज ऑफ प्लांट्स) संभवत: प्राचीन काल में वनस्पति विज्ञान पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं। पेड़–पौधों के अन्वेषण में प्रजनन, स्थानिकता, अकारिकी, उनकी उपयोगिताओं का विशद वर्णन है, पेड़–पौधों के लगाने के तरीके से लेकर उनके विभिन्न भागों के बारे में उनकी दी गई जानकारी विस्मयकारी है। गंध, स्वाद सहित विभिन्न गुणावगुण के क्रमबद्ध विवरण उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचायक है। पेड़–पौधों के औषधीय गुणों की अपेक्षा उन्होंने उनकी आर्थिक एवं अन्य उपयोगिताओं पर अधिक ध्यान दिया है।

पेड़–पौधों पर उनके सभी मंतव्य स्वीकार नहीं किये जा सकते किन्तु पेड़–पौधों के विकास में जलवायु और मिट्टी के महत्व पर उनके अवलोकन महत्वपूर्ण हैं। यूनान में उगने वाले पेड पौधों का उन्होंने प्रत्यक्ष रुप से अध्ययन किया। अन्य लोगों के ज्ञान का लाभ उठाने के लिए भी वे साकांक्ष रहते थे। जो लोग सिकन्दर के साथ गये थे और लौट कर आये उन्हें पश्चिम एशिया के पेड़–पौधों के बारे में जानकारी थी। उन लोगों से प्राप्त जानकारी के आधार पर कपास, बरगद, गोलमिर्च, दालचीनी, गंधरस (बोल), लोबान (सलई) आदि के वर्णन किये गये।

अनेक भाषाओं मे अनुवाद–ग्रीक में लैटिन, लैटिन से यूरोप की आधुनिक भाषाओं में अनुवाद के बाद आज जो संस्करण प्रचलित हैं उसमें कितनी मिलावट हुई यह कोई नहीं बता सकता। साढ़े तेइस सौ वर्ष पहले जब वे पेड़ पौधों के बारे मे लिख रहे थे तो शायद वे नहीं जानते थे कि उन्हें " वनस्पति विज्ञान का जनक" कहा जायेगा। चरक या सुश्रुत को यह उपाधि देने का विचार कभी किसी के मन में नही आया।

———

वनस्पति वाणी अंक 22 : 146-147(2013)

प्रोफेसर बीरबल साहनी - एक परिचय

ओंकारनाथ मौर्य
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावडा

प्रोफेसर बीरबल साहनी का जन्म पश्चिमी पंजाब के शाहपुर जिले जो अब पाकिस्तान में है, के बेहडा नामक स्थान पर 14 नवम्बर 1891 को हुआ था। इनके पिता प्रो. रुचिराम साहनी लाहौर के गवर्नमेंट कालेज में रसायन शास्त्र के प्राध्यापक थे।

बीरबल साहनी की शिक्षा पहले लाहौर के मिशन स्कूल तथा केन्द्रीय मॉडल स्कूल में एवं उसके बाद राजकीय कालेज लाहौर में हुई। 1911 में पंजाब विश्वविद्यालय से स्नातक की शिक्षा प्राप्त करने के बाद बीरबल साहनी आगे की शिक्षा के लिए इंग्लैंड गये और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में दाखिला लिया। बीरबल साहनी 1911 से लेकर 1919 तक इंग्लैंड में रहे, यहीं पर तत्कालीन विश्वविख्यात वनस्पतिशास्त्री सर अल्बर्ट सीवर्ड के सान्निध्य में आने और उनके प्रोत्साहन के फलस्वरुप बीरबल साहनी ने 'लाउसन्स टेक्सट बुक आफ बॉटनी' का परिमार्जन व परिवर्धन किया। अपने नौ वर्ष के प्रवास के दौरान 1914 में उन्हें कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से ट्राइपॉस (स्नातक) उपाधि मिली तथा 1919 में लंदन विश्वविद्यालय ने उन्हें डी.एस.सी. की उपाधि प्रदान की। बीरबल साहनी का विवाह 1920 में सावित्री साहनी से हुआ ।

बीरबल साहनी ने 1919 में लंदन से लौटने के पश्चात महामना मदन मोहन मालवीय के आग्रह पर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में वनस्पति विज्ञान विभाग में शिक्षण कार्य आरम्भ किया। एक वर्ष तक शिक्षण करने के बाद वे 1920-1921 के मध्य लाहौर विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग में आ गये। उन्हीं दिनों लखनऊ विश्वविद्यालय की स्थापना हुई और विश्वविद्यालय के नवीन वनस्पति विज्ञान विभाग को बनाने एवं समृद्ध करने का अवसर बीरबल साहनी को प्राप्त हुआ। 1921 में लखनऊ विश्वविद्यालय में वनस्पति विज्ञान विभाग के प्रथम प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष का उत्तरदायित्व संभालने के बाद उन्होनें कई आमूल-चूल परिवर्तन किये। आरम्भिक वर्षो में वनस्पति विज्ञान विभाग को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति दिलाने के लिए उन्होनें अपनी सारी ऊर्जा शोध कार्य में लगा दी और सन 1932 तक किसी शोध-छात्र का उत्तरदायित्व नहीं लिया। उनके शोध-कार्य को देखते हुए 1929 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय ने उन्हें एस.सी.डी. की उपाधि प्रदान की, जो सम्भवत: उनके पहले किसी भारतीय वैज्ञानिक को नहीं मिली थी। 1936 में उन्हें रॉयल सोसाइटी ऑफ लंदन ने अपना फेलो चुना। 1943 में लखनऊ विश्वविद्यालय में जब भूगर्भ विज्ञान विभाग की स्थापना हुई तो प्रोफेसर बीरबल साहनी ने वनस्पति विज्ञान विभाग के साथ-साथ भूगर्भ विज्ञान विभाग के विभागाध्यक्ष का उत्तरदायित्व भी संभाला। विश्वविद्यालय में प्रोफेसर साहनी अपनी कक्षाओं में दोनों हाथों से ड्राइगंबोर्ड बनाने के लिए मशहूर थे।

बीरबल साहनी का पहला शोध-पत्र काफी चर्चित हुआ, जिसमें उन्होने गिंक्गो पौधे की बीजाणुधानी में विदेशी परागकणों की उपस्थिति दर्शायी थी और जीवाश्म अध्ययन में इसके महत्त्व की चर्चा की थी। इनके अद्वितीय कार्यो में *नेफ्रोलेपिस, नीफोलोबस, टैक्सस, साइलोटम, मेसीप्टेरिस* तथा *एक्मोपाइल* हैं, जिनके अध्ययन से विकास की प्रवृत्तियों, भौगोलिक वितरण, उनकी संरचना तथा उनके सह-संबंधियों के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है ।

उन्होने *नेफ्रोलेपिस वोल्यूविलिस* नामक एक विशेष प्रकार के फर्न की शरीर रचना का अध्ययन किया और जानकारी दी कि किस प्रकार के फर्न का प्रोटोस्टील पार्श्वीय तनों में डिक्टियोस्टील में परिवर्तित हो जाता है। उनके द्वारा कार्डइट्लस, टेरिडोस्पर्मस तथा कोनीफर वर्ग के पौधों के अंतर संबंधों के विषय में व्यक्त विचारों को बहुत महत्त्व दिया जाता है ।

अपनी विदेश यात्राओं के दौरान वे विभिन्न संग्रहालयों का भ्रमण कर वहां रखे पादप जीवाश्मों ,उनकी स्लाइडों का अध्ययन कर अपने शोध कार्यों के लिए प्रमाण एकत्र करते थे। पादप जीवाश्मों के अध्ययन के लिए ऐसा करना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि विरले ही किसी एक पादप से संबंधित सभी प्रभाग एक स्थान पर परिरक्षित मिले हों। 1936 में प्रो. साहनी ने कश्मीर के करेवा चानों पर पाये जाने वाले सिंघाड़े के पादप जीवाश्मों का अध्ययन कर यह मत व्यक्त किया था कि, उक्त चट्टानें प्लाइस्टोसीन युग में इन ऊँचाइयों पर आयी थी क्योंकि सिंघाड़ा समतल मैदान के पोखरों में पाया जाने वाला फल है, और इस प्रकार हिमालय के ऊपर उठने की अवधारणा की पुष्टि होती है।

वर्तमान झारखंड की राजमहल पहाड़ियों में स्थित निपानिया नामक गाँव से प्रो. साहनी ने अनेक पादप-जीवाश्मों को खोज निकाला और उनका गहन अध्ययन किया। यहीं के पादप जीवाश्मों में उन्होंने पौधों का एक विशेष नवी॰ वर्ग खोज निकाला जिसे पेन्टोजाइली कहा जाता है। यहां पाये गये पादप जीवाश्मों को जोड़कर उन्होंने एक पादप की पुनर्रचना की और अपने गुरु के नाम पर इस पादप का नाम *विलियमसोनिया सीवर्डियाना* रखा। प्रो. साहनी ने भारत के अतिरिक्त न्यू-साउथ वेल्स, क्वींसलैंड, विक्टोरिया, न्यू-कासल, दक्षिण अफ्रिका, आदि स्थानों के पादप जीवाश्मों का भी बृहद अध्ययन किया ।

गोंडवाना भूमि की वनस्पति जीवाश्मों में उनकी विशेषज्ञता को देखते हुए भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण ने उन्हें अपना सलाहकार पुरावनस्पतिज्ञ नियुक्त किया ।

प्रो. साहनी ने प्राचीन भारतीय इतिहास और विशेष रुप से मुद्राशास्त्र में भी एक महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अपनी एक यात्रा में खोकराकोट, रोहतक के एक टीले से उन्हें सिक्के ढालने के कुछ सांचे मिले। भारत के अनेक संग्रहालयों में ऐसे बहुत से सांचे पड़े हुए थे, जिनका गहन अध्ययन करने के बाद उन्होंने "दि टेकनीक आफ कास्टिंग आफ क्वाएंस इन एशिएंट इंडिया" नाम से एक मोनोग्राफ प्रस्तुत किया। उनके इस कार्य के लिए भारतीय मुद्रा परिषद ने उन्हें 1945 मे "नेल्सन राइट" पदक से सम्मानित किया।

प्रो. साहनी ने सितम्बर 1939 में भारत में कार्यरत पुरावनस्पतिज्ञों की एक समिति बनाई। इस समिति को एक विधिवत रुप देने के लिए पेलियोबोटेनिकल सोसाइटी का गठन 19 मई 1946 में किया गया। पेलियोबोटेनिकल सोसाइटी के अन्तर्गत इसकी कार्यकारिणी ने 10 सितम्बर 1946 को एक प्रस्ताव पारित करके "पुरावनस्पति विज्ञान संस्थान" के गठन का निर्णय लिया। इस संस्थान ने शुरु में लखनऊ विश्वविद्यालय में कार्य करना प्रारम्भ किया । नवोदित संस्थान के लिए नये भवन की जरुरत थी। नये संस्थान की आधारशिला 3 अप्रैल 1949 को रखी गई। आधारशिला रखे जाने के मात्र एक सप्ताह बाद ही 10 अप्रैल 1949 को भारत का यह सपूत एक जबर्दस्त दिल के दौरे के कारण काल कवालित हो गया।

उनके कार्यों के लिए एक सच्ची श्रद्धांजलि के रुप में अक्तूबर 1049 में पेलियोबोटेनिकल सोसाइटी ने नवोदित संस्थान का नाम बदलकर बीरबल साहनी पुरावनस्पति विज्ञान संस्थान रखा, जो आज न केवल देश अपितु सारे विश्व में अकेला ऐसा केन्द्र है, जो पुरावनस्पति विज्ञान को समर्पित है ।

जल का अपव्यय, मरूस्थल को आमन्त्रण।
आप जल को बचाएं वह आपको बचायेगा।।

बुरांश *(रोडोडेन्ड्रॉन)*

संजय कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

मधुर यौवन से संवर उठतीं हैं, नदियां भी .....
पहाड़ों पर जब खिल उठता है बुरांश ।
जीवन में महक जाती है सुगंध नई सी तब...
पहाड़ों पर जब खिल उठता है, बुरांश ।

अलंकृत हो खुशियाँ मनाती है धरा भी,
पहाड़ों पर जब खिल उठता है, बुरांश ।
कितने ही रंगों से सज जाती हैं हिम-श्रृंखलायें.....
प्राणी जात को लुभातीं हैं, उपवन की भंगिमायें,
और अनुभूति होती है, निश्छल प्रेम आनंद की तब.....
पहाड़ों पर जब खिल उठता है, बुरांश ।

सूखे दरख्तों से लिपटी सुर्ख कोमल लताओं पर,
इठलाती है बसंत आकर,
और फिर कराती है, एहसास सृजन का तब....
पहाड़ों पर जब खिल उठता है, बुरांश ।
एकान्त वन में नर्तकी बन पर्णिलों में विचरण करें.....
कुछ ऐसी मंत्रमुग्ध हो जाती है, यह प्रकृति तब.....
पहाड़ों पर जब खिल उठता है, बुरांश ।

कितने ही शब्दों से तेरे इस सौन्दर्य का वर्णन करें.....
संकुचित हो जातीं हैं, सारी सीमायें हमारे शब्दकोशों की तब....
पहाड़ों पर जब खिल उठता है, बुरांश ।
पहाड़ों पर जब खिल उठता है, बुरांश ।

———

जिगर के टुकड़े सब्ज

(दो दिवसीय प्रहरिता संगोष्ठी 22-02-2013 को जम्मू में प्रस्तुत)

ओ.पी. शर्मा 'विद्यार्थी'

जिगर तो जिगर है,
जिगर का टुकड़ा जिगर
हाथ जिगर पे रखकर देखो
जिगर के टुकड़े सब्ज ।
निकले कभी अकेले
छोड़ा जलमंडल
करने धरती पर मंगल
उठाये जिगरी कदम
सहे नंगी धरा के सितम
बाहिर पानी के
जिंदगी के तलख मोड़
जिगर सी काया
जख्म जिगर मानव के सहलाये
तभी लिवरवर्टस कहलाये
साथ साथ निकले
पल्लवी बंधु
तैल थैलियां लिये
नम चट्टानों से
कुछ निकले लिये रुप श्रृंगी
बहुधा केशों सी काईयां
अपना ली गीली खाईयां
दूर दूर फैली सल्तनत
धरा की हुई सब्ज शान ओ शौकत
खुले द्वार
प्रजातियां हजार
पत्थरों से पनपी मृदा
छायी हर सू हरियाली
लिवरवर्टस, हार्नवर्टस, मासिज
तीनों की तिकड़ी
राह अलबेली पकड़ी
आये फिर पादप पर्णांग
शंकुधारी व पुष्पीय पौधे
सब हुये इनके आभारी
कुछ दीवाने, परवाने
आये सुनाने अफसाने चमत्कारी
खोजते वन, उपवन, अटियारी
चर्चित होते
शिवराम कश्यप, पाण्डे,
भारद्वाज, रामुदार, श्रीवास्तव
साथ एस.के., डी.के. सिंह बंधु
विरेंद्रनाथ लखनवी, उनियाल देहलवी
याद करें ऋण इनका
रहस्य खोलें मन का
दिल खोलें जन का
प्रकृति के नियम तोलें
उन्माद में डूबें, सब बोलें
चलो आज करें
दीदार सब मिलके
अफसाने सुनें इनके
मत समझना मात्र तिनके
आखिर हैं जिगर के टुकड़े
धरा ने प्रेम से जकड़े
इनकी भूमिका विचित्र
जाने पारिस्थितिकीय तंत्र ।

जीवन संचारक प्राण है जल

भोलानाथ
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

ब्रह्माण्ड में केवल धरती ग्रह पर, जीवन संचारक प्राण है जल ।
इति जैव विविधता, पारितंत्र की, भौतिक छवि निर्माण है जल ।।

धरती के सात महाद्वीपों पर, जल अगणित, अद्‌भुत चित्र रचा ।
नदियां, पर्वत, प्रपात, गुफायें, वन, पादप, जीवन विचित्र रचा ।।
उत्तर, दक्षिण का ध्रुवीय क्षेत्र, हिम शैलों का ढला पहाड़ है जल ।
इति जैव विविधता, पारितंत्र की, भौतिक छवि निर्माण है जल ।।

सर्वविदित है, सागरों पर निर्भर, गतिशील प्रकृति भूमण्डल की ।
वाष्पन, संघनन, मेघ, जल वर्षण, जीवन आवृति जल, थल की ।।
कहीं बना बवंडर, बाढ़, सुनामी, करे नभ में घनघोर दहाड़ है जल ।
इति जैव विविधता, पारितंत्र की, भौतिक छवि निर्माण है जल ।।

द्रव, ठोस, गैस प्रारूपों में जल, जग जीवन का संचारक है ।
मृग तृष्णा, क्षुधा विमोचक है जल, धरती का ताप निवारक है ।।
कभी ओले, ओस, कुहासे बनता, मौसम से करे खिलवाड़ है जल ।
इति जैव विविधता, पारितंत्र की, भौतिक छवि निर्माण है जल ।।

प्राकृतिक तत्व, शीतल, मृदु जल पर, जैव तंत्रों ने अधिकार किया ।
अंडज, पिंडज, उखमज, स्थावर, प्रजातियों ने निज आकार लिया ।।
वैज्ञानिक करें शोध, अन्वेषण, हर काया में साक्ष्य प्रमाण है जल ।
इति जैव विविधता, पारितंत्र की, भौतिक छवि निर्माण है जल ।।

जल संचय के प्राकृतिक स्रोत, बहु नदियां हैं, मगर समर्थ नहीं ।
जब बांध बनें, जलधार रुके तब, सागर में मिले जल व्यर्थ नहीं ।।
सागर का क्षारीय, लवण, अम्ल, मिल करता महा प्रयाण है जल ।
इति जैव विविधता, पारितंत्र की, भौतिक छवि निर्माण है जल ।।

भूमण्डल की आधी धरती पर, यों निर्जल, निष्ठुर रेगिस्तान बना ।
जग-जन आबादी के घनत्व पर, जल संकट गहरा पहचान बना ।।
सर्वेक्षण, संग्रह, संरक्षण विधियों से, सुरक्षित भविष्य परिमाण है जल ।
इति जैव विविधता, पारितंत्र की, भौतिक छवि निर्माण है जल ।।

जल संचय प्रति बनें अधिक संसाधन, परंपरागत विधियां पर्याप्त नहीं ।
कृषि, उद्योग, पेय जल संकट, विविध प्रदूषण विकार है व्याप्त वहीं ।।
पर्यावरणीय, वन, जन, जीव समस्या, प्रबन्धन बिना प्रगाढ़ है जल ।
इति जैव विविधता, पारितंत्र की, भौतिक छवि निर्माण है जल ।।

———

एक वृक्ष

आर. के. गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

हम सबों का एक नारा हो,
कम से कम एक वृक्ष तो हमारा हो।
सौ करोड़ की आबादी में,
कुछ तो हमारा अपना हो।
सब कार्य दूसरों पर ना छोड़े,
कुछ तो कर्त्तव्य हमारा हो।
कल-कल करके देख लिया,
कुछ तो आज हमारा हो।
अब भी कुछ नहीं बिगड़ा,
कुछ तो सुधार हमारा हो।
आओ इन्हीं हाथों से,
एक-एक वृक्ष लगा डालें।
जो गलतियाँ की हमने,
उस पर कुछ तो मिट्टी डालें।
सौ करोड़ के इन्हीं हाथों से।
तैंतीस प्रतिशत के लक्ष्य पा डालें।
सरल नहीं यह कार्य इतना,
फिर भी मन में इतना ठानें।
हरी-भरी हो यह वसुंधरा,
ऊपर खुला हो नील गगन।
शुद्ध-शुद्ध हो वातावरण,
हर घर आँगन हो उपवन।
बस हमारा एक नारा हो,
एक वृक्ष तो हमारा हो।

———

वन बचाओ

महेन्द्र कुमार सिंघाड़िया
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

मृदा, पानी, वायु, वन आदि सब हमारे
जीवन जगत के सभी मित्र ये, जीवन देते सारे,
इन सबसे अपना सम्बन्ध जोड़ो, इनको अपना दोस्त बनाओ ।
वन बचाओ।

जब तक जीवन है जगत में, तब तक है जग में पानी
तब तक हवा शुद्ध रहेगी, सोंधी मिट्टी रानी,
तब तक मानव का जीवन है, यह सभी को समझाओ ।
वन बचाओ।

सौन्दर्य की गरिमा समझो, वृक्षों को पहचानो
ये वन्यजीव के जीवन दाता, इनको अपना मानो,
एक वृक्ष यदि कट जाये तो, सैकड़ों वृक्ष लगाओ ।
वन बचाओ।

जीवन जगत की रक्षा करना, अब नैतिक कर्त्तव्य हमारा
मिट्टी और पानी का संकट, दूर करेंगे सारा,
एक वृक्ष यदि हम नित रोपेंगे, आज शपथ ये खाओ ।
वन बचाओ।

———

लक्ष्य

आर. के. गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

पर्यावरण संरक्षण की जब बातें चलती,
हर गली नुक्कड़ से ये आवाजें आती।
वृक्ष लगाओ पर्यावरण बचाओ,
वृक्ष लगाओ जंगल बढ़ाओ।
पर जब हकीकत सामने आती,
मेरी आँखें नम हो जाती,
हर तरफ कटे दरख्तों का ढेर है,
वह कुछ नहीं शीशम का पेड़ है।
उजड़ा चिड़ियों का आशियाना,
जो था कभी उसका ठिकाना।
घटते वन ने दिए हमें गम,
वहीं मिजाज मौसम के गर्म।
बढ़ते तापक्रम का जोर है,
मची त्रासदी चारों ओर हैं।
मौसम भी अब हुआ बेगाना,
कब यह बदले नहीं इसका ठिकाना।
अब भी संभल जा ऐ इंसान,
वक्त की नजाकत को तू पहचान
इसे महज मत नारा समझो।
इसकी कीमत को अब समझो।
अब यह शपथ उठाना है,
प्रत्येक को एक वृक्ष लगाना है।
स्वयं से यह वादा करना है,
तैंतीस के लक्ष्य को पाना है।

पर्यावरण समाचार

संजीव कुमार एवं **संजय कुमार**
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

1. इस वर्ष विश्व पर्यावरण दिवस 2013 मंगोलिया में मनाया गया। प्राकृतिक संपदा से समृद्ध यह देश पर्यावरणीय चुनौतियों से जुझ रहा है। विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर संयुक्त राष्ट्र संघ का नारा रहा- सोच समझ कर खाओ, खाना बर्बाद मत करो। हम लोग देखते है कि विवाह, जन्म दिन व अनेक धार्मिक अवसरों पर लोग खाना बर्बाद करते हैं। इससे खाद्यान की बर्बादी के साथ-साथ प्रदूषण भी फैलता है। विश्व में प्रत्येक वर्ष एक बिलियन खाद्यान बर्बाद होता है। (स्रोत-दैनिक जागरण)
2. फ्रांस के वैज्ञानिकों द्वारा किए गए अनुसंधान के अनुसार पेड़-पौधे आवश्यकता पड़ने पर अल्ट्रासोनिक शब्दों/ध्वनियों के माध्यम से ये अनुभव करा देते है कि, उनकी जड़ों को जल की आवश्यकता है। (स्रोत-नैशनल जियोग्राफी)
3. ट्यूलिप पेड़-पौधों का वंश आंकडा (जेनेटिक डाटा) वर्षो तक अपरिवर्तित रहता है। क्योंकि ट्यूलिप का अनुवांशिकीय अनुपरिवर्तन (जिनोमिक चेंज) मानव की अपेक्षा 2000 गुणा धीमा है। इसलिए इनके जीवाश्म हजारों वर्ष तक सुरक्षित रहते हैं।
(स्रोत-बी.बी.सी. नेचर न्यूज)
4. जेनेटिक इंजीनियरिंग एप्रूवल कमेटी (जीईएसी) के द्वारा आनुवांशिक संशोधित (जीएम) फसलों के क्षेत्रीय परीक्षण करने की अनुमति जून 2013 मे प्रदान की गई। भारत में कार्यरत अनुसंधान संस्थानों के द्वारा आनुवांशिक रूप से परिष्कृत कपास, मक्का, अरंडी, गेहूं व चावल की किस्मों के परीक्षणों को केरल, ओडिसा, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र एवं राजस्थान में किया जायेगा।
5 सिक्किम राज्य सरकार ने मेएनम वन्य-जीव अभयारण्य में 22 कि.मी. का रोप- वे बनाने की मंजूरी दे दी है । यह रोप- वे भाल्ली दुंगा के दो छोरों के मध्य बनाया जाएगा, जो भारत का प्रथम आकाशीय मार्ग (स्काई वे) कहलाएगा।
6. योजना आयोग के अनुसार उत्तराखंड राज्य वर्ष 2013 में पर्यावरणीय मानदंड अनुपालन करने के मामले में प्रथम स्थान पर रहा ।
7. पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने राष्ट्रीय पक्षी मोर के संरक्षण के लिए, मोर पंख के व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। यह एक अच्छा कदम है । पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने अंडमान व निकोबार द्वीप समूह में नौ सेना द्वारा मिसाइल परीक्षण करने के प्रस्ताव को पर्यावरणीय कारणों से अस्वीकृत कर दिया है । (स्रोत-जागरण जोश)
8. सुप्रीम कोर्ट ने गुजरात के गिर वन से शेरों को मध्य प्रदेश के आरक्षित जंगलों में पुनर्वास हेतु मध्य प्रदेश सरकार को इजाजत दे दी है ।
10. भारत के केन्द्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के द्वारा शार्क मछली को बचाने के लिये "फिन्स नैचुरली अटैच्ड" संरक्षण नीति की घोषणा की गई जिसके अनुसार मत्स्य पालन करने वाले व्यक्तियों/संस्थाओं के द्वारा शार्कों को बिना उनके पंखों (फिन्स) को नुकसान पहुंचाये समुद्रतटीय क्षेत्रों में छोडा जाना है। इस नीति के माध्यम से शार्कों के पंखों को काटे जाने की बढ़ती घटनाओं पर अकुंश लगाने में मदद मिलेगी। भारत में प्रकाशित एक रिर्पोट के अनुसार शार्कों के मारे जाने वाले देशो की श्रेणी मे भारत दूसरे स्थान पर है। (स्रोत-जागरण जोश)
11. मधु मक्खियों की गिरती संख्या पर नियत्रंण पाने के लिए यूरोप के देशों ने कुछ कीटनाशक दवाइयों पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। क्योंकि ये कीटनाशक दवायें मधुमक्खियों की वंश वृद्धि को प्रभावित करती हैं। (स्रोत-जागरण जोश)
12. थाइलैंड में बाघों के लिए खुला चिड़ियाघर है। थाइलैंड में इस खुले चिडियाघर को "टाइगर टैम्पल" कहा जाता है । इस समय टाइगर टैम्पल में 100 बाघ है । बौद्ध धर्म अनुयायी इस चिड़ियाघर की देखभाल करते हैं । (स्रोत-जागरण जोश)

———

लेखकों के लिए निर्देश

सभी लेखक प्रकाशन हेतु रचनायें भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें-

- रचना वनस्पति विज्ञान की किसी महत्वपूर्ण सूचना/अनुसंधान/उपयोग/महत्व इत्यादि से संबंधित एवं मौलिक होनी चाहिये तथा रचना की विषय वस्तु विगत वर्षों में प्रकाशित रचनाओं से भिन्न हो। रचनायें ए-4 आकार के कागज पर 12 FONT SIZE एवं द्विपंक्ति अन्तर (Double Space) में टंकित अथवा सुपाठ्य एवं स्पष्ट रूप से हस्तलिखित होनी चाहिये । वर्तनी एवं व्याकरण पर विशेष ध्यान दें । प्रयास करें कि लेख की पांडुलिपि 10 टंकित पृष्ठों से अधिक न हो तथा छायाचित्रों की अधिकतम दो प्लेटें हो ।
- कवितायें प्रस्तुत करते समय ध्यान रखें कि कविता का मूल भाव स्पष्ट रहे एवं कविता तुकान्त हो ।
- वर्गीकरण शब्दावली का प्रयोग : Class- वर्ग, Order-गण, Family-कुल, Genus-वंश, Species-जाति, Sub-species-उपजाति, Variety- प्रभेद, Forma-रूप से करें तथा टंकित रचनाओं में वंश एवं जाति का नाम तिरछे (italics)में एवं हस्तलिखित रचनाओं में रेखांकित (Underline) करें ।
- वनस्पतियों का नाम लिखते समय ध्यान रखें कि, सबसे पहले वनस्पति का प्रचलित नाम तत्पश्चात् यदि आवश्यक हो तो कोष्ठक में उस वनस्पति का वानस्पतिक नाम अंग्रेजी अक्षरों में लिखें। यदि आवश्यक हो तो वनस्पतियों के क्षेत्रीय नामों का प्रयोग प्रचलित नाम के बाद किया जाये।
- एक ही लेख में एक ही तथ्य की बार-बार पुनरावृत्ति से बचें ।
- औषधीय उपयोग के पौधों से संबंधित लेखों में रोगों के प्रचलित हिंदी नामों का प्रयोग करें । अंग्रेजी नामों को अपरिहार्य स्थिति में देवनागरी लिपि में लिखें ।
- जहां तक संभव हो लेख को सहज एवं सरल रुप में प्रस्तुत करें, जिससे सभी पाठक सुगमता से समझ सकें ।
- लेख में आभार एवं संदर्भो का प्रयोग नहीं करें ।
- लेख में सम्मिलित फोटो-प्लेट्स के साथ इसमें उपयोग किये गये छायाचित्रों की अलग जेपेग(JPEG)फाइल भेजें ।
- इन्टरनेट से लिये गये चित्रों का प्रयोग कदापि न करें तथा कापीराइट नियमों का उल्लंघन नहीं करें ।
- रचनाओं में दिये गये तथ्यों एवं सूचनाओं के लिये लेखक स्वयं ही उत्तरदायी होंगे । अत: तथ्यपूर्ण एवं वैज्ञानिक रचनायें ही भेजें।

———

राजभाषा कार्यान्वयन में उल्लेखनीय बिन्दु

सितम्बर 2012: विभाग के सभी कार्यालयों ने अपनी सुविधानुसार निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार हिंदी दिवस/सप्ताह/पखवाड़ा के आयोजन में प्रतियोगिताओं में श्रेष्ठ निष्पादन करने वाले प्रतिभागियों को पुरस्कार प्रदान किया।

मुख्यालय, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में वनस्पति वाणी 2012 का विमोचन किया गया।

28-30 जनवरी 2013 : आचार्य जगदीश चन्द्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान, हावडा द्वारा आयोजित पुष्प प्रदर्शनी का उदघाटन पश्चिम बंगाल के राज्यपाल महा महिम श्री एम. के. नारायणन ने किया।

22 मई 2013: विभाग के सभी कार्यालयों में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय जैव विविधता समारोह में जैव विविधता से संबंधित अन्य कार्यक्रमों के साथ बच्चों के लिए चित्रांकण प्रतियोगिता आयोजित की गई।

5 जून 2013: विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर श्रीमती जयंती नटराजन, माननीया राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने "वनस्पति अन्वेषण 2012" का विमोचन किया।

विभाग के सभी कार्यालयों ने पर्यावरण के महत्व के प्रति जनजागरुकता के प्रसार हेतु विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किए ।

निरीक्षण: विभाग के निम्नलिखित कार्यालयों में राजभाषा कार्यान्वयन से संबंधित निरीक्षण किए गए।

दि. 25.3.2013 : अंडमान निकोबार क्षेत्रीय केन्द्र, पोर्टब्लेयर

दि. 05.07.2013: उत्तरी क्षेत्रीय केन्द्र, देहरादून

दि. 05.07.2013: दक्षिणी क्षेत्रीय केन्द्र, कोयम्बटूर

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति-

क. अंडमान निकोबार क्षेत्रीय केन्द्र, पोर्ट ब्लेयर ने राजभाषा कार्यान्वयन समिति, पोर्ट ब्लेयर द्वारा वर्ष 2013 में राजभाषा नीति के श्रेष्ठ निष्पादन के लिए प्रथम स्थान प्राप्ति हेतु प्रशस्ति पत्र दिया गया।

ख. नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, कोलकाता की वार्षिक पत्रिका "स्वर्णिमा 2013" में प्रकाशित रचना "पूर्वोत्तर सीमान्त की वानस्पतिक यात्रा" के लेखक डॉ. सुधांशु शेखर दाश, वैज्ञानिक-सी को प्रथम पुरस्कार प्रदान किया गया।

---

1. कॉन्फ्रेंस ऑफ पार्टीज (कोप-11) सम्मेलन के दौरान 15 अक्टूबर, 2012 को पुस्तक *ट्रीज ऑफ हैदराबाद* का विमोचन करते हुए श्री एन. किरण कुमार रेड्डी, माननीय मुख्य मंत्री, आन्ध्र प्रदेश 2. कोप-11 के अवसर पर भारतीय वनस्पतियों एवं भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के क्रियाकलापों की जानकारी लेते हुए स्कूली बच्चे **3.** कोप प्रदर्शनी के दौरान विभिन्न विद्यालयों के स्कूली बच्चे 4. कोप सम्मेलन के वैज्ञानिक सत्र के दौरान डॉ. पी. सिंह, निदेशक, भा.व.स. एवं अन्य 5. भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के द्वारा प्रदर्शित छाया चित्रों का एक दृश्य।

1. ए.जे.सी. बोस भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा में 28 जनवरी 2013 को पुष्प प्रदर्शनी के उद्घाटन समारोह के दौरान पश्चिम बंगाल के महामहिम राज्यपाल श्री एम.के. नारायणन् को स्मृति चित्र (जल कुमुदिनी) भेंट करते हुये डॉ. पी. सिंह, निदेशक, भा.व.स. एवं डॉ. एच.एस. देवनाथ, उद्यान प्रभारी 2. अंतर्राष्ट्रीय जैव विविधता दिवस, 22 मई, 2013 को ए.जे.सी. बोस भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा में आयोजित चित्रकला प्रतियोगिता में प्रतिभाग करते स्कूली बच्चे 3. चित्रकला प्रदर्शनी का निरीक्षण करते डॉ. ध्रुव ज्योति घोष, विशेष सलाहकार, एग्रीकल्चर एण्ड इकोसिस्टम कमीशन आईयूसीएन 4. भारतीय गणराज्य वनस्पति उद्यान, नोएडा में अंतर्राष्ट्रीय जैव विविधता दिवस, 22 मई, 2013 को वृक्षारोपण करते स्कूली बच्चे।

नोट

नोट